जगन्मोहन द्वारा सम्पादित

उस्मान कृत

चित्रावली

(दिल्ली विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम [illegible])

व्याख्याकार

डॉ० माया अग्रवाल

वितरक

कला-मन्दिर

प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता

नई सड़क, दिल्ली-6

दूरभाष : 278828

मूल्य : 20.00 रु०
संस्करण : 1985-86

प्रकाशक :
अनीता प्रकाशन
उच्च साहित्यिक प्रकाशक
3696, चरखे वालान, दिल्ली-6

मुद्रक :
ममता प्रिंटिंग सर्विस
द्वारा रिषीराज प्रिंटर्स
शान्ती मोहल्ला, दिल्ली-32

विषय-प्रवेश

सूफ़ी प्रेमाख्यान हिन्दी साहित्य के मानक ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों का मूल प्रयोजन सूफ़ी विचारधारा को भारतीय आलोक में प्रस्तुत करना है। फलतः सूफ़ी प्रेमाख्यानो में हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियो के समन्वय की विराट् चेष्टा विद्यमान है। सूफ़ी कवियों ने अपनी रचनाओ के अन्तर्गत विषयों का प्रतिपादन कर सूफ़ी प्रेम सन्देशो की सफल नियोजना की है। यही कारण है कि सूफ़ी प्रेम गाथाओं का साहित्यिक, सामाजिक, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक मूल्य भी निरन्तर बढ़ता चला गया है। इन ग्रंथों की विलक्षण विशेषता यह है कि दर्शन जैसे शुष्क एवं गम्भीर विषय का प्रतिपादन होते हुए भी, इनमें काव्य-तत्व निरन्तर प्रखर होते चले गए हैं। संक्षेप में सूफ़ी प्रेमाख्यान हिन्दी-साहित्य के वे अगाध सागर हैं, जिनके गहन जल में पैठकर कोई भी साधक नरजीवा अपनी भावनाओं के अनुरूप इनके धरातल से हीरे, मोती और माणिक्यों का चयन कर सकता है।

परम्परा की दृष्टि से प्रेमाख्यान काव्य-परम्परा भारतीय एवं इस्लामी दोनों ही साहित्यों मे समान रूप से प्रवाहित होती दृष्टिगोचर होती है। यह एक अन्य तथ्य है कि इस्लामी-साहित्य की प्रेम-कथाएँ पाच तक सीमित हैं तथा भारतीय-प्रेमकथाओं का विपुल भण्डार उपलब्ध है। भारतीय सूफ़ी कवियों ने भारतीय प्रेमकथाओं का आंचल पकड़कर उनमें सूफी प्रेम-संदेशो की सफल नियोजना की है। सारांशतः भारतीय भूमि पर आकर सूफ़ी विचारधारा अपना पुराना चोला छोड़कर भारतीय रंग की रंगीली चूनर ओढ़ लेती है। इस रूप में सूफ़ी विचारधारा जनसामान्य के लिए लोकप्रिय बनकर अत्यधिक पुष्पित एवं पल्लवित होती गई है।

सूफ़ी प्रेमाख्यान काव्य

सूफी-प्रेमाख्यानों के निर्धारक तत्वो के आधार पर उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत दोनो ही क्षेत्रों मे अनेकानेक सूफ़ी प्रेमाख्यान काव्यों की रचना हुई है। उत्तर भारत के सूफी प्रेमाख्यान लोकप्रियता एवं साहित्यिक सौंदर्य की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य के बहुचर्चित-ग्रंथ है। इन ग्रन्थों की भाषा अधिकाशत अवधी रही है। इन रचनाओं की उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि सूफी विचारधारा की अभिव्यक्ति होते हुए भी इनमे काव्य-तत्व उत्तरोत्तर प्रखर होते चले गये हैं। इस अर्थ मे उत्तर भारत के सूफी प्रेमाख्यान प्रथम उत्कृष्ट कोटि के काव्य तथा बाद मे सूफी विचारधारा की अभिव्यक्ति के उपयुक्त माध्यम है। उत्तर भारत मे रचित एवं उपलब्ध सूफी प्रेमाख्यान काल-क्रमानुसार निम्नलिखित है—

1. चान्दायन	मौलाना दाऊद	781 हि० = 1379 ई०
2 मृगावती	कुतबन	909 हि० = 1503 ई०
3 पद्मावत	मलिक मुहम्मद जायसी	947 हि० = 1540 ई०
4 मधुमालती	मझन	952 हि० = 1545 ई०
5. चित्रावली	शेख उस्मान	1022 हि० = 1613 ई०
6. ज्ञान दीप	शेखनबी	1026 हि० = 1619 ई०
7. हंसजवाहिर	कासिमशाह	1149 हि० = 1736 ई०
8. इन्द्रावती	नूर मुहम्मद	1157 हि० = 1744 ई०
9. अनुराग बाँसुरी	नूर मुहम्मद	1178 हि० = 1764 ई०
10. यूसुफ जुलेखा	शेख निसार	1205 हि० = 1790 ई०
11 नूरजहाँ	ख्वाजा अहमद	1312 हि० = 1905 ई०
12 भाषा प्रेम रस	शेख रहीम	1915 ई०
13. प्रेम दर्पण	कवि नसीर	1335 हि० = 1917 ई०

उपर्युक्त सूफ़ी प्रेमाख्यानो में से प्रथम चार ग्रंथो का पर्याप्त परिचय हिन्दी पाठकों से हो चुका है। लेकिन अन्य ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित हैं अथवा आलोचना का सौभाग्य प्राप्त नही कर सके है अत: प्रस्तुत ग्रंथ हिन्दी

साहित्य में उसी अभाव की पूर्ति का मेरा एक विनम्र प्रयास है। इसके अन्तर्गत 'उस्मान' कृत सूफी प्रेमाख्यान 'चित्रावली' का सांगोपाग विवेचन किया गया है। सूफ़ी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों के लिए यथास्थान सूफ़ी विचारधारा और दर्शन को आधार मानकर समग्र सूफी साहित्य के आलोक मे ग्रन्थ की सारगर्भित सूचनाएं एव विवेचन किया गया है तथा सूफ़ी साहित्य के विद्यार्थियो के लिए परीक्षात्मक विषयों पर आलोचनात्मक लेख तथा व्याख्या भाग को स्पष्ट कर दिया गया है। मुझे आशा ही नही अपितु दृढ विश्वास है कि प्रस्तुत ग्रन्थ सूफी प्रेमाख्यानों की आलोचनात्मक-परम्परा मे एक नये सोपान का आरोहण करने मे समर्थ सिद्ध होगा।

—माया अग्रवाल

विषय-सूची

1. कवि एव कृति-परिचय 1
2. चित्रावली : कथा-सगठन एवं सूफ़ी तत्त्व 17
3. चित्रावली मे सूफ़ी तत्त्व 22
4. चित्रावली मे प्रेम-दर्शन 27
5. चित्रावली में सौन्दर्य निरूपण 40
6. चित्रावली में विरह-वर्णन 50
7. चित्रावली के पात्र एवं चरित्र 63
8. चित्रावली मे दार्शनिक- चिन्तन 75
9. चित्रावली का काव्य-सौष्ठव 81
10. उस्मान की बहुज्ञता एवं मौलिकता 87

चित्रावली : मूलपाठ तथा व्याख्या

1. स्तुति खंड 1
2. कथा खंड 29
3. परेवा खंड 37
4 कौलावती खड 92
5. चित्रावली विरह खंड 114
6. अभिषेक खंड 119
7. चित्र देशान खंड

१

कवि एवं कृति-परिचय

कवि-परिचय

अन्तःसाक्ष्य के आधार पर सूफी कवि 'उस्मान' गाजीपुर (उ० प्र०) का रहनेवाला था।[1] अपने ग्रन्थ 'चित्रावली' मे उसने कई स्थानों पर अपना उपनाम 'मान' भी बताया है। इनके पिता का नाम 'शेख हुसैन' था। ग्रन्थकर्ता 'उस्मान' ने बताया है कि मेरे शेख अजीज, मानुल्लह, शेख फैजुल्लह और शेख हसन नाम के चार भाई और थे।'[2] 'उस्मान' के अनुसार हम पाँचो ही भाई अपने-अपने क्षेत्र मे अपना विशिष्ट स्थान रखते थे। 'शेख अजीज' शिक्षित, शीलवान और बुद्धिमान थे। 'मानुल्लह' ने मौनव्रत लेकर योग-साधना द्वारा अध्यात्म का मार्ग ग्रहण किया था। "शेख फैजुल्लह" हथियार के गुणी और पीर थे तथा 'शेख हसन' गायन विद्या का पंडित था। सूफी कवि-परम्परा मे 'उस्मान' पहला कवि है, जिसने अपने ग्रन्थ मे अपने परिवार का विस्तार से वर्णन किया है। सूफी कवि 'उस्मान' भी शिक्षित और गुणी कवि था। इस मायावी और नश्वर संसार मे अपने नाम की अमरता के लिए ही कवि ने 'चित्रावली' नाम के ग्रन्थ की रचना की थी।[3]

'उस्मान' ने अपने जन्म-स्थान गाजीपुर का वर्णन करते हुए, उसे उत्तम तथा देवस्थान बताया है। कवि के अनुसार यहाँ गंगा, यमुना और गोमती नामक नदियों का संगम हुआ है और यही कारण है कि द्वापर मे यहाँ देवता

---

1. उस्मान कृत चित्रावली (सं० जगन्मोहन वर्मा)—२७/१.
2. वही —२७/२-६
3. वही ३४/८-६

लोगों ने तप किया था। कलियुग मे आकर उसी स्थान पर आजकल आबादी हो गई है, जो कि अमरपुर के समान है। इस नगर की प्रशसा करते हुए कवि ने कहा है कि इस नगर मे सभी जातियो के लोग रहते हैं, जो अपने-अपने जातीय गुणो मे प्रशसनीय है।[1]

सम्प्रदाय एवं गुरु

सूफी कवि उस्मान 'चिश्तिया' सम्प्रदाय से सम्बद्ध था। भारत मे सूफ़ियो के विभिन्न सम्प्रदायो मे चिश्तिया सम्प्रदाय सर्वाधिक लोकप्रिय और महत्त्वपूर्ण रहा है। चिश्तिया सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक अबू इशाक शामी (मृ० ९४० ई०) थे, जो एशिया माइनर से आकर खुरासान मे हेरत के निकट 'चिश्त' नाम के गाँव मे बस गये थे। कुछ विद्वान् इस सम्प्रदाय के सस्थापको मे ख्वाजा अब अलदाद चिश्ती का नाम उद्धृत करते हैं। वास्तव मे अबू अलदाद चिश्ती अबू इशाक शामी के शिष्य थे। भारत से बाहर इस सम्प्रदाय मे ख्वाजा अबू अहमद (मृ० ९६६), ख्वाजा अबू मुहम्मद (मृ० १०२० ई०), ख्वाजा अबू यूसुफ (मृ १०६७ ई०) तथा ख्वाजा मवदूद (मृ० ११३३ ई०) नाम के प्रमुख सूफ़ी साधक हुए हैं।

भारतवर्ष मे चिश्तिया सम्प्रदाय के सस्थापक ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (११४१ ई० से १२३६ ई०) माने जाते है। ये सैय्यद गयासुद्दीन हुसैन के पुत्र थे तथा इनका जन्म सीस्तान के सजर नामक शहर मे हुआ था। पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद ११९२ ई० में ये भारत आये थे और लाहौर (पाकिस्तान), दिल्ली आदि स्थानो की यात्रा करते हुए, अन्त मे १२०६ ई० में स्थायी रूप मे अजमेर मे बस गये थे। इसी स्थान पर ९३ वर्ष की अवस्था मे १२३६ ई० मे इनकी मृत्यु हुई थी। भारत मे इस महान् सूफ़ी साधक का आगमन धर्म-प्रचार के लिए हुआ था।[2] इनमे धर्म प्रचार की भावना कम थी। अपनी उदारता और सत प्रवृत्ति के कारण यह भारत मे सभी वर्गों द्वारा सम्मान

---

1. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा) २४, २५, २६.
2. Dr. Zahur-ul Hassan Shaib—The life and teaching of Khwaja Moinuddin-Hassan Chishti, p. 39 (1956)

के अधिकारी बने थे ।[1] हिन्दुओं के निम्नवर्ग पर इनका अच्छा प्रभाव था ।[2]

इस सम्प्रदाय के दूसरे प्रमुख संत ख्वाजा बख्तियार काकी हैं। ये सैयद कमलुद्दीन अहमद मूसा के पुत्र थे, जो बगदाद से भारत आये थे और दिल्ली आकर रहने लगे थे। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने इन्हे अपना उत्तराधिकारी बनाया था। इनकी मृत्यु २७ नवम्बर, १२३६ ई० मे 'हाल' की अवस्था में हुई थी। ये दिल्ली के तत्कालीन शासक अल्तुमश द्वारा सम्मानित हुए थे तथा इन्होंने दिल्ली की मुस्लिम आबादी को अत्यधिक आकर्षित किया था। सूफी-साधना-परम्परा मे 'समा'[3] इनकी सबसे बड़ी देन है। सूफ़ी साधकों में संगीत, नृत्य और गायन की परंम्परा यहीं से प्रारम्भ होती है और आगे चलकर यह परम्परा अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लेती है।

ख्वाजा मईनुद्दीन चिश्ती के दूसरे प्रमुख शिष्य शेख हमीदुद्दीन थे। ये नागौर मे किसान के रूप में अपना जीवन व्यतीत करते थे। ख्वाजा बख्तियार काकी के प्रमुख शिष्यो मे शेख फरीदुद्दीन मसूद गंजे शकर अत्यधिक प्रमुख साधक थे। इन्होने अजोधन (पंजाब) मे अपना खानकाह बनाया था। चिश्तिया सम्प्रदाय को संगठित करने और उसे अखिल-भारतीय प्रसार देने वाले संतो मे इनका नाम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इनके शिष्यो मे निजामुद्दीन औलिया, बद्रूद्दीन इशाक, शेख जमीलुद्दीन, अली अहमद साबिर और शेख आरिफ थे। इसी सम्प्रदाय में शेख नसीरुद्दीन चिराग-ए-देहलवी तथा फतेहपुर सीकरी के शेख सलीम चिश्ती प्रमुख सूफी संत थे। फरीदी, औलिया तथा साबिरी इस सम्प्रदाय के उपसम्प्रदाय थे।

चिश्तिया सम्प्रदाय मे निजामुद्दीन औलिया (१२३८-१३२५ ई०) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने भारत के हिन्दू तथा मुस्लिम दोनो ही वर्गों को

---

1. Saiyid Athar Abbas Rizvi—Muslim Revivalist Movements in Northern India, p. 15 (1965)
2. डा० श्याम मनोहर पाण्डेय, मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० ६।
3. समा—संगीत, नृत्य एव गायन द्वारा व्यक्तित्व-विसर्जन कर परमसत्ता के ध्यान मे लीन होना ही समा का मन्तव्य है।

प्रभावित किया था। सूफ़ी लोग निजामुद्दीन औलिया को मानिकपुर कालपीवाली शिष्य-परम्परा से सम्बन्धित मानते हैं। इस परम्परा में आगे चलकर अनेक साधको और पीरो का उल्लेख पाया जाता है।

सूफ़ी कवि 'उस्मान' भी इसी सम्प्रदाय से सम्बद्ध था। उन्होंने अपने काव्य 'चित्रावली' मे शाह निजाम चिश्ती को अपना गुरु बताया है। उन्ही के शब्दों में :

"गहि भुज कीन्हे पार जे, बिनु साहस बिनु दाम।
चिश्ती सकल जहान के, चिश्ती शाह निजाम।'[1]

स्पष्ट है कि 'उस्मान' सूफियो के चिश्तिया सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे और निजामुद्दीन औलिया की शिष्य-परम्परा मे दीक्षित हुए थे। निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परम्परा की दो शाखाएँ—मानिकपुर-कालपी तथा जायस सुप्रसिद्ध हैं। जायसवाली शिष्य-परम्परा पर अभी अधिक प्रकाश नही पड सका है। लेकिन इतना स्पष्ट है कि इस परम्परा के सैयद अशरफ जहाँगीर सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी के गुरु थे। सूफ़ी कवि 'उस्मान' ने शाह निजाम को अपना पीर बताते हुए नारनौल (हरियाणा) मे उनका निवास-स्थान बताया है।[2] नारनौल मे आज भी उनकी खानकाह को जीर्ण-शीर्ण अवस्था मे देखा जा सकता है। सम्भव है कि जायसवाली शिष्य-परम्परा मे नारनौल के शाह निजाम प्रसिद्ध सूफ़ी साधक रहे हों और सैयद अशरफ जहाँगीर उन्ही की शिष्य-परम्परा में आते हो। सैयद अशरफ जहाँगीर की शिष्य-परम्परा मे शेख हाजी का नाम बडे सम्मान के साथ लिया जाता है। सूफ़ी कवि 'उस्मान' ने शेख हाजी की प्रशसा करते हुए लिखा है कि :

"बाबा हाजी पीर अपारा, सिद्ध देत जेहि लाग न बारा।
जे मुख देखा ते सुख पावा, परसि पाय तन पाप गँवावा।

---

1. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा), २१/८-९।
2. "शाह निजाम पीर सिधदाता, दिस्ट तेज जिमि रवि परभाता।
नारनौल भीतर अस्थाना, उदे अस्त लइ सब कोइ जाना।"
उस्मान कृत चित्रावली (सं० जगन्मोहन वर्मा) २१/१-२।

हिन्दू तुरक सबै कोइ जाना, निसदिन जाँचहि इछा दाना।
जो कोउ जिय निहचै करि आवै, श्रवन लागि तेहि ज्ञान चेतावै।
जासो वचन सिद्ध वै कहा, ते सब तजि विधि मारग गहा।"
मोहि माया कै एक दिन, श्रवन लाग गहि माथ।
गुरुमुख वचन सुनाय कै, कलि महँ कीन्ह सनाय"[1]

स्पष्ट है कि शेख हाजी पीर 'उस्मान' के गुरु थे और वे निजामुद्दीन औलिया की शिष्य-परम्परा मे दीक्षित थे। 'उस्मान' ने गाजीपुर निवासी सैयद शेख का नाम भी अपने गुरु के रूप मे स्मरण किया है।[2]

सूफियो के चिश्तिया सम्प्रदाय पर भारतीय योग एवं वेदान्त का पर्याप्त प्रभाव था। 'उस्मान' ने उसी परम्परा का उल्लेख करते हुए अपने गुरु से प्राप्त दीक्षा का साराश बताते हुए लिखा है कि :

'करम बात अब कहौं सुन तोही, जस कुछ गुरु सिखावा मोही।
ज्ञान डोर करु हिया मथानी, साँस लेत डोरी लपटानी।
उल्टी दृष्टि रहै टुक लाई, सजग रहै जेहि ततु न जाई।
तौ लहु मथै बैठि दे जीऊ, निसरै छाछ मही में घीऊ।
निजु सो मथनी एक दिन, मथत मथत कगा फूटि।
तत्वमसी पुनि तत्व मो, जाय नरक सब छूटि।[3]

कृति-परिचय

सूफी कवि 'उस्मान' ने अपने प्रेमकाव्य 'चित्रावली' की रचना १०२२ हि० अर्थात् १६१३ ई० मे की।[4] उस्मान ने अपने प्रेमकाव्य चित्रावली मे तत्कालीन शासक जहाँगीर की मुक्तकठ से प्रशसा की है। उस्मान के शब्दों में :—

1. उस्मान कृत चित्रावली (सं० जगनमोहन वर्मा) पृ० २२।
2. वही २४/६।
3. वही २३/४-९
4. "सन सहस्र बाइस जब अहै। तब हम वचन चारि एक कहै" वही-३३/१

"नुरुद्दीन महीपति भारी, जाकर आन मही मँह सारी ।"[1]

वास्तव मे उस्मान द्वारा वर्णित शाहेवक्त 'नूरुद्दीन महीपति' ही इतिहास का बहुचर्चित सम्राट जहाँगीर है। इसी का बचपन का नाम साहिस सलीम था। सिंहासनारूढ होनें से पूर्व जहाँगीर शाहजादा सलीम के नाम से प्रसिद्ध था।[2] 'उस्मान' ने जहाँगीर को 'नूरुद्दीन महापति' कहकर उसके स्वभाव, साम्राज्य और शक्ति का वर्णन करते हुए, उसे छत्रपति सम्राट के रूप मे विवेचित किया है। उन्ही के शब्दो मे :

'जहाँगीर के अदल पर, पूरि रहा जग चैन ।
सरवन सुना नौ सेरवाँ, साह सो देखा नैन ।"[3]

वास्तव मे उस्मान का वर्णन परम्परागत और अतिशयोक्तिपूर्ण है। उस्मान ने उसे समस्त वसुधातल का शासक बताया है, जबकि इतिहास इस बात का साक्षी है कि वह दक्षिण पर कभी विजय प्राप्त नही कर सका।[4] कवि ने जहाँगीर के क्रोधी स्वभाव का वर्णन भी इतिहास सम्मत ही किया है। जहाँगीर ने शाहजादे खुसरों को बगावत करने पर अन्धा करवाकर कारागार मे डलवा दिया था और उसके दोनो मित्रो-हुसेन बेग तथा अब्दुर रहीम को बैल और गधे की ताजी खाल मे सिलवा दिया था। उसने गुरु अर्जुन देव का भी नृशसता पूर्वक वध करवाया था।[5] उसकी विलास-प्रियता भी एक ऐतिहासिक सत्य है।[6] मद्यपान के अभ्यस्त जहाँगीर की विलास-प्रियता उसके हरम मे रखी हुई ८०० सुन्दरियो से स्वत: प्रमाणित है। जहाँगीर की न्यायप्रियता के सम्बन्ध में डॉ० आर० सी० मजूमदार ने लिखा है कि वह अमीरो की तो बात ही क्या

---

1. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा) १३/१
2. डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, मुगलकालीन-भारत, पृ० २९१
3. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा) पृ० १७/=९
4. डॉ० आर० सी० मजूमदार भारत का वृहद इतिहास, पृ० ५९३
5 डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव-मुगलकालीन भारत, पृ० २९८-२९९।
6. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा) १८/१०२

गये हैं"[1] भारत मे मीर अब्दुल वाहिद विलग्रामी (1566 ई०) कृत हकायके हिन्दी[2] तथा ईरान मे फैज मुशिन का शानी (17 वी शताब्दी) कृत रसायले मिशयाक[3] इसी प्रकार के ग्रन्थ हैं, जिनमें नख-शिख-वर्णन के प्रत्येक अंग-वर्णन का सांकेतिक अर्थ प्रस्तुत किया गया है।

नखशिख का साधनात्मक स्वरूप—'उस्मान' का नखशिख वर्णन वस्तुतः सौन्दर्य के प्रति सजगता का भाव है। इस सौन्दर्य विवेचन में जहां शारीरिक अंगों की अतिशय सौन्दर्य की कल्पना निहित है वहीं दूसरी ओर इनमें दर्शक या श्रोता के मन की विभिन्न प्रतिक्रियाएं भी विद्यमान हैं। इस सौन्दर्य को 'सुजान' चित्रा-वली' के चित्र मे देखकर परम सौन्दर्य का ज्ञान करता है और उसे पाने के लिए लालायित हो उठता है। यह सौन्दर्य 'सुजान' के हृदय मे प्रेम का बीजारोपण कर उसे सूफी साधना की ओर आकृष्ट करता है। 'उस्मान' की यह सौन्दर्य कल्पना सूफी-साधना क्षेत्र में प्रेम की पूर्व पीठिका है। इस सौन्दर्य का प्राप्त करने का सौभाग्य केवल उसी प्राणी को प्राप्त है, जो इसके लिए साधनात्मक प्रयास करता है। इस रूप में 'चित्रावली' को यही सौन्दर्य सूफी साधक 'सुजान के लिए साधना-मार्ग का अगम्य द्वार खोलने मे सफल सिद्ध होता है।

'चित्रावली' का अतिशय सौन्दर्य 'सुजान' के भावाकुल मन को शनैः-शनैः साधनात्मक प्रयास द्वारा पार्थिव सौन्दर्य से अपार्थिव सौन्दर्य तक ले जाता है। इस अर्थ में 'चित्रावली' परम सौन्दर्य स्वरूप परम तत्व भले ही न हो, किन्तु पूर्ण सौन्दर्य स्वरूप परमतत्व की उत्तम अनुकृति अवश्य है। सूफी कवि उस्मान ने 'चित्रावली' के सौन्दर्य के माध्यम से परम सौन्दर्य को आभास करते हुए उसे प्राप्त करने का एक सहज माध्यम बताया है। 'चित्रावली' का यही अतिशय सौन्दर्य सूफी साधक 'सुजान' के लिए अभिलाषा का केन्द्र बनता है और उसके लिए मृग-मरीचिका बनकर साधना के रूप में विरहजन्य कष्टों में तपाता हुआ, अन्त में चरम लक्ष्य तक ले जाता है। सूफी प्रेम-साधना का यही लक्ष्य परमानन्द का प्रतीक है।

निष्कर्षतः सूफी कवि 'उस्मान' ने अपने नखशिख वर्णन मे सूफी सिद्धान्त का विवेचन करते हुए, उसका सम्बन्ध परमसत्ता से जोडा है। 'उस्मान' का यह विवेचन परम्परागत सूफी शैली के अनुरूप है।

---

1. डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय, सूफ़ी काव्य-विमर्श, पृ० 43
2. मीर अब्दुल वाहिद विलग्रामी—हकायके हिन्दी (अनु० सैयद अतहर अब्बास रिजवी, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सम्वत 2014
3. A S. Arbery, Sufism, P. 113-114 (1956)

चित्रावली में विरह-वर्णन

नायक एवं नायिका मे जहा अनुराग की अति तीव्रता किन्तु प्रिय-समागम का अभाव रहता है, उसे वियोग कहा जाता है ।[1] प्रेम सयोग की अपेक्षा वियोग मे अधिक सम्पुष्ट होता है । यही कारण है कि साहित्य क्षेत्र मे सयोग की अपेक्षा वियोग अधिक मात्रा मे वर्णित हुआ है । के सूफी प्रेम-साधना मे वियोग को प्रेम की सम्पुष्टि के लिए अनिवार्य तत्व के रूप मे स्वीकार किया गया है । सूफी कवियो ने वियोग को साधनात्मक स्वरूप प्रदान कर, नायक एवं नायिका दोनों को ही समान रूप से वितरित किया है । इस सन्दर्भ मे विरह का आरम्भ एक दग्धकारी अग्नि तथा अवसान शान्ति-प्रदायक सागर है । सूफी प्रेमाख्यानो के नायक एवं नायिका दोनो ही अपने-अपने सन्दर्भों विरहाग्नि मे तप-तपकर प्रेम साधना को परिपक्व करते दिखाई देते हैं ।

सूफ़ी कवि 'उस्मान' अपने प्रेमाख्यान 'चित्रावली' की प्रस्तावना लिखते हुए कहते हैं कि "सौन्दर्य एव प्रेम दोनो मिलकर विरह उत्पन्न करते हैं । इसका अर्थ है जहां प्रेम होगा तहा विरह भी अनिवार्य है ।"[2] विरह को सृष्टि का खम्भ बताते हुए वे लिखते हैं कि—

"जेहि तन प्रेम आगि सुलगाई, विरह पौनि होइ दे सुलगाई ।
प्रेम अकूर जहां सिर काढा, विरह नीर सो दिन दिन वाढा ।
प्रेम दीप जह जोति दिखाई, विरह देह छिन-छिन उकसाई ।
प्रेम कुमर जह बदन उघारा, विरह झाइ तहं अंजन सारा ।
एहि विधि प्रेम विरह एक संगा, एकमतै भो मानहु रंगा ।
रूप प्रेम विरहा जगत, मूल सृष्टि के थम्भ ।
हो तीनहुं के भेद कहु, कथा करौ आरम्भ ।।[3]

---

1. साहित्य-दर्पण (विमला टीका) 3/187
2. उस्मान कृत चित्रावली (सं जगन्मोहन वर्मा) 3i/1-2
3 वही, 31/3-9

'उस्मान के अनुसार विरह का मूल कारण प्रेम और सौन्दर्य है तथा पूर्ण सौन्दर्य परमतत्व में विद्यमान है। अतः सच्चे प्रेम का अधिकारी भी परमतत्व है। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि विरह की समस्त कष्ट-साधनाएं भी परमतत्व को प्राप्त करने का साधन मात्र हैं। संक्षेप में सौन्दर्य, प्रेम एवं विरह का परस्पर प्रगाढ़ सम्बन्ध तथा वह एक दूसरे के निमित्त कारण हैं। कवि के अनुसार उस परम सौन्दर्य स्वरूप परमतत्व के हृदय में सर्वप्रथम प्रेम की पीर उत्पन्न हुई तथा उसी प्रेम के कारण उसने सृष्टि का निर्माण किया तथा सृष्टि में अपने ही एक अंश का नाम मुहम्मद रखा।[1] फलतः जैसे-जैसे सृष्टि का विकास होता गया, उसमे सौन्दर्य, प्रेम एवं विरह का भाव समाविष्ट होता चला गया। यही कारण है कि 'चित्रावली' कथा के समस्त प्रमुख पात्र सौन्दर्य की आभा से युक्त प्रेम पंथ के पथिक तथा इस सौन्दर्य एवं प्रेम के लिए विरहाग्नि मे सतप्त होते दृष्टिगोचर होते हैं। चित्रावली काव्य का नायक सुजान, प्रेयसी नायिका 'चित्रावली' तथा पत्नी नायिका 'कौलावती' तीनो ही अपनी-अपनी परिस्थितियों में प्रेम के कारण विरह की ज्वाला मे संतप्त होते हैं। यह एक अन्य तथ्य है कि इनमें प्रेम एवं विरह की परिस्थितियों मे अन्तर होने के कारण इनके विरह की मात्रा मे भी पर्याप्त अन्तर है। साहित्यकारों ने विरह का भार पुरुष की अपेक्षा नारियो पर अधिक सौंपा है, अतः सर्वप्रथम 'चित्रावली' और 'कौलावती के विरह-वर्णन पर विचार कर लेना अपेक्षित है।

'चित्रावली' का विरह-वर्णन—'चित्रावली' काव्य नायक सुजान की प्रेयसी नायिका है। 'चित्रावली' के हृदय में प्रेम का प्रादुर्भाव अपनी चित्रसारी मे बने रमणीय चित्र को देखकर होता है। 'चित्रावली' के हृदय मे विरह उद्दीप्त करने वाला यह प्रथम तत्व है। उसी के शब्दो मे—

"करहु खोज ताकर सखी, जेहिक चित्र यह आह
नाहिं तो मरिहौ बूढ़ि मैं, विरह समुद्र अगाह।"[2]

'चित्रावली' इस चित्र मे बने राजकुमार के सुन्दर चित्र पर विमोहित होकर उसकी खोज करने के लिए नपुंसक जाति के खोजियों को भेज देती है, लेकिन उसके विरह की व्यथा दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ती जाती है। 'चित्रावली' की विरह-पीड़ा का एक मार्मिक चित्र यहा प्रस्तुत है—

---

1 उस्मान कृत चित्रावली (सं० जगन्मोहन वर्मा) 10/2-4
2. वही, 6. 123/8-9

"नीद न परै प्रेम चित जागा; कछु न सोहाइ चित्र मन लागा।
कुसम सेज जानहु चित जोरी, देह लाइ लीन्ही जनु होरी।
जागत बरष एक दिन जाई, पलक उलटि सम पहर बिहाई।
चित अकुलाइ चलन कंह चाहा, लाज आइ पग सांकर बाहा।"[1]

इस अवस्था मे विरह-व्यथित 'चित्रावली' का मन केवल उस चित्र पर अटका हुआ है। वह चकोर बनकर उस चित्र रूपी चन्द्रमा पर अपनी आखे टिकाये हुए है।[2] कवि के शब्दो मे चित्रसारी मे बने चित्र को देखकर चित्रावली ने उसी प्रकार के विरह को सहा जैसा कि जानकी ने अशोक वृक्ष के नीचे बैठकर राम के लिए सहा था—

"निमि दुख देखा चित्रनी, सब निसि एक एक जाम।
जस अशोक तर जानकी, विरह सहा बिनु राम।"[3]

'चित्रावली' का विरह इतना अधिक उद्दीप्त हो गया कि वह उसके शारीरिक अगो पर स्पष्ट दिखाई देने लगा। वियोग मे उसका मुख पीला पड़ गया और शारीरिक अगो से तेज जाता रहा।[4] उसके इस रूप को देखकर उसकी मा हीरा शकित हो उठी और उसने इस रहस्य की जानकारी प्राप्त करनी चाही। 'चित्रावली' का विरह उसी के एक सेवक द्वारा उसकी मां के समक्ष प्रकट कर दिया गया। फलत 'चित्रावली' की मा 'हीरा' ने उस चित्र को एक कुटीचर द्वारा धुलवा दिया। इस चित्र के विनष्ट होने से चित्रावली का विरह और अधिक उद्दीप्त हो उठा। कवि के शब्दो मे—

"चित्र न देख अचक होइ रही, चाद सरूप गहन जनु गही।
अन्तक विरह आइ जिउ हरा, धर बिनु जीउ पुहुमि खसि परा।
सुनै न कहू कहै जो कोई, जनु मन खोइ भुअंगनि सोई।
कोइ सखि दसन खोलि जल नावै, कोउ गहै ना कि सासि जेहि आवै।

---

1. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा), 126/3-6
2. "टक टक रही चेत चित खोवा, मानहु चित्र-चित मुख जोवा।
एक टक लाइ रही मुख ओरा, चित्र चाद भा कुवर चकोरा।"
वही, 127/4-5
3. वही, 127/8-9
4. वही, 128/2-4

कोइ अंचल गहि पान डुलावै, कोइ करनल पातान गुहरावै।
कोइ चंदन घसि लावै काया, दरत अगनि जानो पिउ नाया।"[1]

इस रूप में 'चित्रावली' का विरह इतना अधिक उद्दीप्त हो गया कि उसे अपनी चित्रमारी काली भुजगनि सी दिखाई देने लगी। विरह की मारी हुई इस नायिका को कुछ नहीं सुहाता। उसके लिए फुलवारी के सब फूल अंगार बन गए हैं। आखो से पानी वर्षाऋतु के समान गिर रहा है तथा उसका शरीर विरह में इस प्रकार जल रहा है मानो किसी ने आग लगा दी हो। उसके गले के फूल हार जल जलकर अंगार हो गये हैं और वह टूट-टूटकर गिर रहे हैं।[2]

'चित्रावली' इस विरह का शमन करने के लिए अपने एक परेवा को चित्र मे निर्मित राजकुमार की खोज करने के लिए योगी वेश मे भेजती है तथा स्वयं विरह के अगाध सागर मे डुबकियां लगाती रहती है। राजकुमार के प्रथम दर्शन करने पर भी जब संयोग के क्षण इस नायिका को नहीं मिल पाते, तब इसका विरह पहले से भी अधिक उत्तेजित हो जाता है। कवि के ही शब्दो मे—

"विरह अगिन उर मंह बरै, एहि तन जानै सोइ।
सुलगै काठ त्रिलूत ज्यो, धुआ न परगट होइ।"[3]

विरह की इसी दयनीय अवस्था में 'चित्रावली' एक विरह की पाती लिखकर 'सुजान' के पास सागरगढ भेजती है। इस विरह सदेश के अन्तर्गत 'चित्रावली' स्वयं अपनी विरह-दर्शन को प्रकट करती है। उसी के शब्दो मे—

"पहिले लिख्यो परसि सिर पावा, तुम विदेश दुःख हम तन छावा।
विरह अनेक कटक दल साजा, हम उर पीर आइ भा राजा।
दु.ख दगध संताप मिलि, परा फाद कै आइ।
विरह अहेरी गुंजरत, तन दुरग कित जाइ।"[4]

इस विरह-सदेश मे 'चित्रावली' अपने दुःखो को निवेदित करती हुई, दिन एवं रात के अपने विरह की दशाएं वर्णित करती है। अपने विरह का प्रमाण प्रस्तुत करती वह कहती है कि—

---

1. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा) 133/2-
2. वही, 6. 138/2-6
3. वही, 6. 429।8-9
4. वही, 435/1-2, 8-9

"जौं न पसी जसि जिउ मोर माखी, पूछि देखु गिरि कानन साखी।
करैं पुकार मजोरन गोवा, कुहकि-कुहकि वन कोयल रोवा।
गयो सीख पपिहा मम बोला, अजहू घोरवत बन-बन डोला।
उडा परेवा सुनि मम बाता, अजहू चरन रकत सो राता।
हारिल दुःख सुन भयो बिपाऊ, अजहूं धरती धरै न पाऊं।
कियो झंकार विरह के आचा, वाएस भस्म होत तंह बाचा।
ककनू पखी जंहं बसै, तह प्रगटी यह पीर।
उठी आगि सुनि कै हिए, लगा सवारै चीर।"[1]

'चित्रावली' की विरह, सतप्त स्थिति को देखकर टेसू जलकर अंगार हो गए है, फरहद के सिर मे आग लग गई है, दाड़िम का हृदय फट गया है, घुघची दु खी होकर लाल रग की हो गई है। इस अवस्था मे 'चित्रावली' का शरीर पत्ते से भी अधिक क्षीण हो गया है और सास के साथ उसका शरीर हिंडौले के समान डोलने लगा है।"[2] इस विरहणी के दु ख से व्यथित होकर ही मधुप जलकर काला पड गया है और वह इधर-उधर भागा फिरता है। 'चित्रावली' अपने इस विरह को बारहमासा के रूप मे व्यक्त करती है।

सूफी कवि 'उसमान' ने चित्रावली' के विरह वर्णन को अपने काव्य के विविध प्रसंगो मे समयानुसार वर्णित किया है। कवि ने इस मार्मिक प्रसग के लिए अपने काव्य मे एक षड्ऋतु वर्णन और 'बारहमासा प्रस्तुत कर 'चित्रावली' के विरह को अधिक मार्मिक एव संवेदनशील बना दिया है।

"**षड्ऋतु में विरह वर्णन**—सूफी कवि 'उस्मान' ने 'चित्रावली' के विरह वर्णन की विशद्ता, व्यापकता और मार्मिकता दिखाने के लिए अपने काव्य-ग्रन्थ मे षड्ऋतु के रूप में विरह-वर्णन कर नवीन कल्पना की है। ज्योतिष शास्त्रियो के अनुसार सूर्य एक क्रान्त वृक्षाकार मार्ग पर गतिशील रहता है। इस वृक्षाकार मार्ग पर स्थित सूर्य जब 6 महीने पृथ्वी के निकट होता है तब उसे उत्तरायण तथा जब पृथ्वी से 6 महीने दूर रहता है तब उसे दक्षिणायन कहा जाता है। फलतः पृथ्वी पर गर्मी-सर्दी की घटती बढती मात्रा विभिन्न ऋतुओ का मूल कारण बनती है। सूर्य के उत्तरायण होने की अवस्था में शिशिर, बसन्त, ग्रीष्म तथा दक्षिणायन होने पर वर्षा, शीत एव हेमन्त ऋतु

1. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा) 6-440.
2. वही, 441

का आगमन होता है। इन समस्त ऋतुओं के बारह मास ज्योतिष की विभिन्न 12 राशियो के अनुसार होते हैं। इस सौर गणना में ऋतुओं का प्रारम्भ शिशिर से माना जाता है। सूफी कवि 'उस्मान' ने वसन्त ऋतु से 'चित्रावली' का विरह-वर्णन प्रारम्भ किया है। अतः विभिन्न ऋतुओं में 'चित्रावली' की विरह दशाओं पर विचार करना अपेक्षित है—

1. वसन्त ऋतु (चैत्र एवं वैसाख) राशि (मीन+मेष)—कवि के अनुसार वसन्त "ऋतु के आगमन पर वृक्षों पर नये पत्ते आ गए हैं और जहां-तहां भ्रमर गुंजार करने लगे हैं। इस अवस्था में कोकिला एवं पपीहा अपनी वाणी के वाण विरहणी के उर में मार रहे हैं। वसन्त निश्चित ही ऋतुओं का राजा है क्योंकि उसने कानन की समस्त देह को दलमली कर दिया है।[1] 'चित्रावली' इस ऋतु मे अपना विरह निवेदित करते हुए कहती है—

"आहि कहां सो मीर हमारा, जेहि विनु बसत वसंत उजारो।
राति बरन पुनि देखि न जाई, मानहुं दवा दहूं दिसि लाई।
दुहुं केहि बन बस सिह हमारा, कस न आइ जग विरह हकारा।
पहुप सरासन पनच अलि, मनमथ घरै चढ़ाव।
पचबान छिन छिन हनै, विरहन उर समुझाइ।।[2]

2. ग्रीष्म ऋतु (ज्येष्ठ एवं आषाढ), राशि (वृषभ+मिथुन)—ग्रीष्म ऋतु के आते ही सारे संसार में तप बढ़ गया है और कायर जीव छाया के लिए ललचा उठा है। इस अवस्था में विरहणी 'चित्रावली' की स्थिति और भी भयंकर हो उठी है। बाहर से सूर्य उसके सिर पर अग्नि बरसा रहा है तथा अन्दर से विरह उसकी देह को जला रहा है।[3]

3. पावस ऋतु (श्रावण एव भाद्रपद) राशि (कर्क+सिंह)—पावस ऋतु विरहणी नायिकाओं के लिए अत्यधिक दुःखदायी है। पृथ्वी पर मेघ बरस रहे हैं तथा चारों ओर बिजली चमक रही है। इस मोहक वातावरण में 'चित्रावली' अकेली विरह पीडा सह रही है। चित्रावली के ही शब्दों में—

"कासौं कहौं विथा जिउ केरी, काकी होउ पांव परि चेरी।
स्याम घटा औ सेज अकेली, जाग जाइ सब रैन दुहेली।

1. उस्मान कृत चित्रावली (सं० जगन्मोहन वर्मा), 244
2. वही
3. वही, 245

विरह स'मुद जानु अति बाढा, को गहि भुज बूढत काढा ।'[1]

4 शरद ऋतु (आश्विन एव कार्तिक) राशि (कन्या+तुला)—शरद ऋतु की रात्रि अत्यन्त निर्मल एवं शान्त है किन्तु इस वातावरण को देखकर विरहणी 'चित्रावली' की छाती धडकती है। चन्द्रमा रूपी पारधी ने किरणो के बाणों का संधान कर नायिका को चारो दिशाओ से घेर लिया है। इस अवस्था मे मन रूपी मृग का कही भागकर जाना भी असम्भव है क्योकि विरह की आग चारो ओर फैली हुई है।[2] चित्रावली के शब्दो मे—

"केतिक जाइ सकल निसि बीती, बरबस रहो बाध्य उर थीती।
झुकै नीद बरबस चखु झाई, आसु दरेर साथ बहि जाई।
गुपन मदन दौ पर जरै, प्रगट दहै दुजराज।
सखी प्रान घट बचो रहै, कत पियारे काजु ।।[3]

5. हेमन्त ऋतु (मार्ग शीर्ष एव पौष) राशि (वृश्चिक+धन)—हेमन्त ऋतु मे रात्रि मे तुषार पडता है लेकिन 'चित्रावली' सिसकी लेकर अपनी रात्रि व्यतीत करती है—

"परै तुषार विषम निसि सारी, सिसकी लेत रहो मैं नारी।
ते न फिरे जो गए बसीठी, बरै लागि उर मदन अगीठी।
विरह सराग करेज पिरोवा, चुइ-चुइ परै नैन जो रोवा।
उरध उसास पौन परचारा, धुक धुक पजर होइ अगारा।
बडी रैन जीवन सुठि थोरा, चेत न परै दिष्टि जनु मोरा।
पूस मास अति निसि अधिकाई, सो धन जान जो विरह जमाई।'[4]

6. शिशिर ऋतु (माघ एव फाल्गुन) राशि (मकर+कुम्भ)—इस ऋतु मे विरहिणी 'चित्रावली' का चित्र प्रस्तुत करते हुए कवि कहता है कि "ससार मे सभी लोग श्रीपचमी का त्यौहार मनाकर अपने आराध्य शिव की पूजा कर रहे हैं लेकिन नायिका कुल लज्जा के कारण अपने हृदय मे रुदन तथा अधरो पर

1. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा), 246
2-3. वही, 247
4 वही पृ०, 248

झूठी हमी सजोए हुए हैं। किर्मा के सिर पर गिरा हुआ गुलाल ही विरहणी के विरह का प्रगटन है।"[1]

सूफी कवि उस्मान' ने 'चित्रावली' विरह-वर्णन के लिए षड्ऋतु को अपना माध्यम बनाया है। इस वर्णन मे नायिका की विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक स्थिति को स्पष्ट करना ही कवि का उद्देश्य है। कवि बताना चाहता है कि इस नायिका ने विभिन्न ऋतुओ मे विरह की दावाग्नि को सहकर विभिन्न राशियो के अनुसार अपनी विरह-भावना को पूर्ण किया है। इस विरह वर्णन मे 'चित्रावली' की विडम्बना यह है कि गुप्त मे तो वह विरह में जलती है किन्तु अपने विरह के प्रगटन के लिए लोक लज्जा वश आखो से आंसू भी नही ढाल सकती।

'चित्रावली' में बारहमासा वर्णन—सूफ़ी कवि 'उस्मान' ने विरह की विशद्ता, व्यापकता और तीव्रता दिखाने के लिए अपनी काव्य-रचना मे बारहमासा का प्रयोग किया है। बारहमासा की परम्परा भारतीय साहित्य मे 13वीं शताब्दी से प्रारम्भ होती है। 'उस्मान' के पूर्व मुल्ला दाउद, कुतवन, जायसी और मझन अपनी रचनाओ मे इस परम्परा का प्रयोग कर चुके थे। फलतः 'उस्मान' ने इसी लोक प्रचलित परम्परा मे अपना स्वर मिलाते हुए विरह वर्णन के लिए बारहमासा की परम्परा को स्वीकार किया है। इस क्षेत्र मे 'उस्मान' के बारहमासा की सर्वप्रथम भिन्नता यह है कि उनका बारहमासा चैत्र से प्रारम्भ होता है और फालगुन पर समाप्त होता है, जबकि मुल्ला दाउद, कुतवन और मझन का बारहमासा श्रावण से आषाढ तथा जायसी का बारहमासा आषाढ़ से प्रारम्भ होता है। सूफी कवियो के अधिकाश बारहमासा पत्नी नायिकाओं के पक्ष मे प्रस्तुत किए गए हैं। मुल्ला दाउद ने 'मैना', कुतवन ने रूपमनि, और जायसी ने 'नागमती' के पक्ष मे अपने बारहमासा वर्णन किए है जबकि मंझन और 'उस्मान' के बारहमासा प्रेयसी नायिका के पक्ष मे—'मधुमालती' और 'चित्रावली' के सन्दर्भ में—वर्णित है। सूफ़ी कवियो ने बारहमासा की परम्परा भारतीय साहित्य और लोक परम्परा से ग्रहण की है। फारसी काव्यो में ऋतु वर्णन की परम्परा उपलब्ध नही होती। सूफ़ी कवियो ने की साहित्य की अपेक्षा लोक गीत-परम्परा का अधिक आश्रय लिया है। सूफ़ी कवियो के बारहमासा भारतीय नारी के निश्चल भावो को प्रत्यक्ष करने के लिए प्रस्तुत किए गए हैं।

सौर मान के अनुसार सूर्य के वृक्षाकार मार्ग के बारह भाग [illegible] हैं।

---

1. [illegible]मान कृत चित्रावली (सं० जगन्मो[illegible] 249

ज्योतिष-शास्त्र मे उन्हे बारह रागियो और लोक मे उन्हे बारहमास कहा जाता है। सूर्य गति के अतिरिक्त चन्द्रगति के अनुसार भी वर्ष और महीने की गणना की जाती है। चन्द्र-गणना मे वर्ष का आरम्भ चैत्र मे पड़ने वाली वसन्त ऋतु से तथा सौर गणना मे वर्ष का प्रारम्भ शिशिर ऋतु मे माना जाता है। सूफी कवि 'उस्मान' का बारहमासा चन्द्र गणना के अनुसार चैत्र से प्रारम्भ होता है। अतः इस बारहमासा मे विचार कर लेना अपेक्षित है—

चैत्र (मीन राशि) मे यद्यपि वियोग की सम्भावनाए कम है किन्तु 'सुजान' ऐसे समय मे 'चित्रावली' को अकेला छोड़ कर चला गया है। नायिका को विरह का आघात इसी प्रकार लगा है जैसे कि मरघट मे होली जल रही हो। वनो में नव पल्लव आ रहे है, स्थान-स्थान पर भ्रमर मधु का पान करते हुए घूम रहे हैं लेकिन 'चित्रावली' के शरीर के मास को कामदेव ने खा लिया है।[1] वैसाख (मेष राशि) के आते ही नायिका की आखों मे आंसू उमडने लगे हैं। उसका शरीर पान के चूने की तरह हो गया है।[2] ज्येष्ठ (वृष राशि) मे तपते हुए सूर्य की पीडा को वही नायिका जान सकती है, जिसका कि कन्त सेज पर नही है। इस भीषण गर्मी से 'चित्रावली' की आख के आसू सूख गए हैं।[3] आषाढ (मिथुन राशि) के आगमन पर आकाश मे मेघ घिरने लगे है। पशु-पक्षी सभी लोग वर्षा से बचाव के लिए अपना घर बना रहे है किन्तु विदेश गए प्रियतम का समाचार भी 'चित्रावली' के पास नही पहुंचा है। गृहस्थी लोगो को घर की चिन्ता है और सन्यासीयो योग मे लगे हुए है। कवि के ही शब्दो मे—

"गिरही एहि रितु घर तकै, साझ परै पुनि गांउ।
जोगहि जहवहि साझ मैं, सोई गाउ सोई ठाऊ॥"[4]

श्रावण (कर्क राशि) का आगमन विरह बढाने के लिए ही हुआ है। चारो ओर घटाएं घिर रही हैं, मेघ बरस रहे हैं। इस अवस्था मे 'चित्रावली' की दशा अत्यधिक दयनीय है—

"बरसन लाग मेघ अतुवानी घर आंगन सब भरिगा पानी।
की दु ख देखि मोरि अति रोवा, कै कतहू मा प्रेम निछोवा।

1. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा), 443
2 वही, 444
3. वही, 445
4. वही, 446-447

जो न विरह धन सम्पत्ति लूटी, रकत रोव कत बीर बहूटी।
दादुर शब्द जाइ नहिं सहा, निसरत प्रान लाज गा कहा।
दु:ख हिंडोल मो मन चढ़ा विरहा दिये फुलाय।
खन पहुमी, खन सरग कहं, निसदिन आवै जाय।"[1]

भादों (सिंह राशि) की अंधेरी से चारों ओर अन्धकार फैल गया है। कन्त के रात्रि में घर न होने के कारण यह रात्रि नायिका के लिए आस्तीन का सांप बन गई है। कवि के ही शब्दों में—

"नैनन नीर नदी होइ गई, बूडत सेज भई घर नई।
नैया-डोलन उदधि गंभीरा, बिनु खेवक को लागै तीरा।
रैन अंधेरी भंवर जल, चहुं दिसि लहरि झंकोर।
बैठे तीर निचित सो, को जानै दुख भोर।"[2]

तथा—

"लोचन भए मीन तेहि माही, एकहु पलपल लागै नांही।
होआ संख भा तजि तन साथा, मकुरे चढ़ै कैसो तुव हाथा।
तै जोगी मूला, केहि नादू, ए सब खेल तोर परसादू।
नैनन होइ सब निसि गई, पलउ न सीतल लाग।
अजहुं आउ रे एहि समै, कहा लगा बसि आग।"[3]

कार्तिक (तुला राशि) तक घर मे प्राण किस प्रकार से जीवित रहे क्योंकि प्रिय अपने लौटने की कोई अवधि नहीं बता गए है। मैं उनका गांव भी नही जानती। अत: कहां जाऊं। इस अवस्था मे कोई भी ऐसा नही है, जो प्रिय का सन्देश आकर कहे।[4] अगहन (वृश्चिक राशि) के महीने मे राम ने भी हनुमान के द्वारा सीता को सन्देश पहुंचवा दिया था किन्तु हे कन्त, तुम बड़े निष्ठुर हो। तुमने मेरी अभी तक सुध नही ली है। कवि के ही शब्दो मे—

तू जोगी कस लेसि न चाही, जानि बूझे तैं बरबन बाही।
अजहूं साइ संभारहु कता, विरहा जाइ भए एक मत्ता।
सीव सजान भयो बिनु नाहां, दवका फिरै जीउ घट मांहा।

---

1. उस्मान कृत चित्रावली (सं० जगन्मोहन वर्मा), 443
2. वही, 449
3. वही, 450
4. वही, 451

विरहा देत कुरग होय, चलै सकल सुख वरि।
आइ दिवस एक राम होइ, कास न जाहु प्रिय मारि।"[1]

पूस (धन राशि) मास मे जाडा वढ गया है। पाला पडने से वनस्पतियों को जाड़ा मार गया है। इस दूभर माम मे भी 'चित्रावली' का कन्त जोगी वनकर बाहर चला गया है। न जाने कहा जाकर उमने अपनी धूनी जला ली है। प्रिय इस जाड़े को समाप्त करने के लिए सूर्य वनकर प्रगट नही हो रहा है।[2] माह (मकर राशि) मे दिवम के वढ जाने से नायिका का विरह दु ख पहले से भी अधिक वढ गया है। सभी लोग सिरी पचमी मना रहे हैं और नायिका के रोम-रोम मे विरह की ज्वाला प्रगट हो रही है। 'चित्रावली' की सवेदन शील स्थिति का एक मनोरम-चित्र उपस्थित है।

जौ न हसौं तो सब हर्माहि, हंसौ तो हसी न आउ।
दुहु दूभर हौ विच परी, प्रिय तुम्ह नेह सुभाऊ।।[3]

फाल्गुन (कु भ राशि) मे विरह का पवन तेजी से वहने लगा है तथा नायिका का शरीर अव पुराने पत्ते जैसा रह गया है। प्रिय ने न जाने कहा जाकर चांचर जोड़ ली है। नायिका कहती है कि—

"स्वारथ लागि के न कहु कीन्हा, पै विधि लिखा न काहू चीन्हा।
राम हेतु जिथि जानकी, तजि कुल कीन्ह पयान।
अस न जान जो लकपति, करहि आन की आन।'[4]

'चित्रावली' ने इस विरह को बारह मासों मे सहा है और विडम्वना यह है कि वह प्रगट में न तो आंसू डाल सकती है और न ही अपना विरह किसी के सामने निवेदित कर सकती है।[5] इसका कारण यह है कि 'चित्रावली' अभी विवाहित नही है। 'चित्रावली' इस विरह वेदना को स्वार्थ नही वल्कि अपने पूर्व जन्मो के सचित कर्मों का फल मानती है।

कौलावती का विरह-वर्णन—'कौलावती' के विरह-वर्णन पर कवि की दृष्टि अधिक नही टिकी है। 'कौलावती' विरह के आते ही 'हस मिश्र' को अपना दूत वनाकर रूप नगर भेज देती है और हंस मिश्र के समाचार पर 'सुजान' सागर-

---

1. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा) 452
2. वही, 453
3. वही, 454
4. वही, 455
5. वही, 239/4

गढ लौट आता है। कौलावती के विरह मे स्वार्थ की मात्रा अधिक है, अतः कवि द्वारा उसे विवेच्य विषय नही बनाया गया है।

सुजान का विरह—'चित्रावली' काव्य का नायक 'सुजान' भी विरह की दावाग्नि को बडे धैर्य से सहता है। 'रूपनगर' की चित्रसारी में चित्रावली-चित्र-दर्शन से लेकर रूपनगर जाकर साक्षात दर्शन तक वह निरन्तर विरह की ज्वाला में जलता है। प्रेम-विवेचन के संदर्भ मे इसका पर्याप्त वर्णन किया जा चुका है।

विरह-वर्णन मे अलौकिकता—विरह-वर्णन यद्यपि लोकगीत परम्परा में अपना विशिष्ट स्थान रखता है, फिर भी उसकी आध्यात्मिक भूमिका को नकारा नही जा सकता। आदि ग्रन्थ के बारहमासा नें विरहणी आत्मा का आनन्द मिश्रित दुख प्रगट किया गया है। सूफी कवियो ने भी बारहमासाओं के अन्तर्गत यही भाव चित्रित किया है कि नायिका प्रेम-साधना के निमित्त एक वर्ष के सभी मासो और राशियो में किस प्रकार विरह को सहन करती है। इस विरह-वर्णन में भी प्रेम-साधना की विभिन्न अवस्थाएं और दशाएं प्राप्त होती है। इस विरह-साधना के पश्चात् ही नायिका का नायक से मिलन सम्भव बताया गया है। चित्रावली की विभिन्न वियोग दशाओ और अवस्थाओ को इस तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है—

अवस्था	स्थितियां		
1. विरहोद्भव	अभिलाषा	उत्कण्ठा	सन्ताप
2. विरहोन्मेष	चिन्ता	स्मृति	गुण-कथन
3. विरहोत्कर्ष	उद्वेग	प्रलाप	उन्माद
4. विरहोपलब्धि	ध्रुउपलब्धि	जडता	मरण, व्यक्तित्व-विसर्जनया सुख और आनन्द

इन्ही अवस्थाओ और स्थितियो को काव्यशास्त्रीय नाम भी दिए जा सकते हैं। सूफी काव्य की नायिकाएं अपनी विरहसाधना मे इन्ही अवस्थाओ और स्थितियों में भ्रमण करती हुई अपनी प्रेम-साधना का वृत्त पूर्ण करती हैं। वियोग की यह सभी अवस्थाएं प्रयत्न साध्य हैं जबकि स्थितिया अनुभव साध्य हैं। ये समस्त अवस्थाए एव स्थितिया वस्तुतः सूफी साधना के विविध आयाम है। इन

और आनन्द का विधायक बनता है। 'चित्रावली' मे यही पूर्ण सयोग सुख और आनन्द का आदि स्रोत बताया गया है।

निष्कर्षतः 'चित्रावली' का विरह-वर्णन सामान्य होते हुए भी असामान्य है। इस विरह-वर्णन मे सूफी प्रेम-साधना का साधनात्मक स्वरूप समाविष्ट है। नायिका के प्रेम प्रगटन के अवसर भारतीय परम्परा मे कम हैं अतः ये नायिकाएं मन्द-मन्द सुलगती है। इनके प्रेम का प्रगटन नायक की भाति नही हो पाता। अत' सूफी कवि 'उस्मान' ने नायिका के विरह-वर्णन के लिए अपनी पूर्व प्रचलित परम्परा का आश्रय लेकर 'चित्रावली' मे विरह-वर्णन किया हैं। इस क्षेत्र मे उस्मान की विशेषता यह रही है कि उसका बारहमासा चन्द्र-गणना के अनुसार है। तथा उसमे सूफ़ी प्रेम साधना को समाविष्ट किया गया है। 'चित्रावली' का विरह-वर्णन वस्तुत. नायिका 'चित्रावली' के सौन्दर्य मे उसकी सूफियाना विरह-साधना है।

चित्रावली के पात्र एवं चरित्र

कथात्मक काव्य के अन्तर्गत चारित्र-विधान एक महत्वपूर्ण अवयव है। प्रतिभा सम्पन्न कवि अपने कथा-उद्देश्यों से अनुप्राणित होकर काव्य पात्रों का सर्जन करते हैं तथा अपने जीवन-दर्शन के अनुसार उन चरित्रो मे गतिशीलता लाने का प्रयास करते हैं। सूफी कवि 'उस्मान' ने भी अपने काव्यग्रंथ 'चित्रा-वली' में कथापात्रो और गतिशीलता लाने के लिए अपने विशिष्ट उद्देश्य को प्रधानता दी है। फलत. एक मौलिक कथा की कल्पना करते हुए उन्होंने इस प्रेमकथा मे सूफी सिद्धान्तों और प्रेम-साधना का बड़े ही अद्भुत ढंग से समा-वेश किया है। यही कारण है कि चित्रावली के चरित्र-विधान मे लौकिक एवं अलौकिक दो विभिन्न स्तरों के पात्रो की सर्जना हुई है। 'चित्रावली' के पात्र लौकिक सृष्टि मण्डल पर क्रियाकलाप करते हुए भी अलौकिक प्रेम साधना के प्रतीक हैं। इन पात्रो के रूप, गुण, शील एवं क्रियाकलापों में सूफी प्रेम साधना की मोहक गन्ध आती है। ये पात्र अपनी-अपनी परिस्थितियों में सूफ़ी प्रेम-साधना के अनुकर्ता बनकर प्रतीक के रूप में अलौकिक प्रेम-साधना के मर्म को स्पष्ट करने में सहायक बनते हैं। यही कारण है कि 'चित्रावली' के पात्रों मे किसी व्यक्तिगत विशेषता का अभाव निरन्तर खटकता रहता है। सुविधा की दृष्टि से 'चित्रावली' के पात्रो को निम्नांकित तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है :—

1. प्रधान पात्र,
2. गौण पात्र,
3. अन्य पात्र।

1. प्रधान पात्र—चित्रावली में आदि से अन्त तक चलने वाले प्रमुख पात्र 'सुजान' 'कौलावती' एवं 'चित्रावली' है। यही दोनों पात्र अपने स्वरूप, स्वभाव, सम्भाषण एवं क्रियाकलाप से कथावस्तु को गति प्रदान करते है तथा कथानक की समस्त घटनाएँ भी इन्ही पात्रों से प्रभावित होती हैं। अत. इन पात्रों के चरित्रों

पर विचार कर लेना अपेक्षित है—

(क) सुजान

'सुजान' नैपाल के यशस्वी सम्राट 'धरणीधर' का इकलौता पुत्र है। इसका जन्म शिव के वरदान स्वरूप, उन्ही के अंश से होता है। "जोगी का अंश जोग धारण करेगा"[1] यह भविष्यवाणी भी शिव द्वारा वरदान के समय कर दी जाती है। जन्म लेने के पश्चात् वह दिन-दूना और रात चौगुना विकसित होता जाता है तथा समस्त विद्याओ और कलाओ को शीघ्र ही जान लेता है। उसे आखेट करने का चाव है।

सुजान के चरित्र मे एक नया मोड उसकी आखेट प्रियता के कारण ही आता है। एक दिन परिस्थितिया उसे मार्ग भटकाकर देव गढी पर विश्राम के लिए ले जाती है। इसी गढ़ी का स्वामी देव उसे रूपनगर के राजा 'चित्रसेन' की सुकुमार कन्या 'चित्रावली' की चित्रसारी तक प्रसुप्तावस्था मे पहुचाता है। इसी स्थान पर 'सुजान' 'चित्रावली' के सौंदर्य को चित्र मे देखकर उस पर विमुग्ध हो जाता है। इस सौंदर्य को प्राप्त करने की लालसा उसे द्रवित कर देती है और सुजान को राजपाट छोडकर योगी बना देती है।[2] सुबुद्धि से 'चित्रावली' का परिचय प्राप्त कर राजकुमार सुजान योगी वेश मे अनेक यातनाओ को सहता हुआ अपने लक्ष्य की ओर बढता है। इसी यात्रा के बीच उसे सागर-गढ की कन्या 'कौलावती' से विवाह भी करना पड़ता है। इस विवाह पर कुवर 'सुजान 'कौलावती' से प्रतिज्ञा करता है कि .

हम तुम मानहि सबै रस, जह लहु प्रेम सुभाउ
राम प्रेम रस होइ तब, जब चित्रावली पाउ।[3]

अपनी कष्टसाध्य प्रेमसाधना के उपरान्त उसे अपने लक्ष्य के रूप मे 'चित्रा-वली' प्राप्त होती है। इस रूप मे 'सुजान' अपनी दोनो पत्नियो को एक साथ रखकर सुख और आनन्द प्राप्त करता है।

---

1. देखू देत हौ आपन असा, अब तौरे ह्वै हो निजु बसा।
जोगी अस जो जग औतरई, दिन दिस साज जोग कर करई।"
—उसमान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा), 46

2. वही. 214

3. वही, 408

'सुजान' का चरित्र वस्तुतः एक साधक का चरित्र है। लौकिक जगत में नाना प्रकार के क्रियाकलाप करते हुए भी वह अलौकिक भावभूमि का पात्र है। यही कारण है कि उसके क्रियाकलाप भी सामान्य कम और आध्यात्मिक अधिक है। शिव अंशीय 'सुजान' योग धारण कर परमलक्ष्य की प्राप्ति के निमित्त योग साधना करता है। इस संदर्भ में उसके प्रेम की एकनिष्ठता, कष्ट सहन करने की क्षमता, एकलयता विशेष दर्शनीय है। लौकिक सदर्भ में वह राजपुत्र बनकर अनेक सामान्य क्रियाकलाप करता हुआ परिस्थिति वश 'कौलावती' से विवाह भी करता है। सोहिल सेन को युद्ध में परास्त करना, 'कौलावती से विवाह' और पुनः अपने राज्य मे लौटकर राज्य-शासन चलाना उसके लौकिक क्रिया कलाप है।

सक्षेप मे 'सुजान' का चरित्र लौकिक एवं अलौकिक क्रियाकलापो का सुन्दर सम्मिश्रण है। उसमे लौकिक क्रियाकलाप प्रत्यक्ष देखे जा सकते है तथा अलौकिक क्रियालकापो मे प्रतीकात्मकता और सांकेतिकता का विधान किया गया है। उसकी यात्रा के योगपुर, गोरखपुर, नेहनगर और रूपनगर इसके पर्याप्त प्रमाण है।[1] एक सूफी साधक की भाँति वह अपने हृदय मे परम सौंदर्य, स्वरूप, परम तत्व को प्राप्त करने के लिए प्रेम साधना में संलग्न दिखाई देता है। उस्मान 'सुजान' के चरित्रांकन में सूफी साधना और सिद्धांतो का समावेश अपनी मनोरम कल्पना द्वारा बड़े ही सजीव एव विचित्र ढंग से करता है।

(ख) कौलावती

'कौलावती' सागर गढ़ के राजा सागर की एकमात्र दुहिता है।[2] अपने सौदर्य मे वह चारो दिशाओ में प्रशसनीय है। अपनी फुलवारी मे वह राजकुमार को सोया देखकर उसके सौंदर्य पर विमुग्ध हो जाती है। 'राजकुमार' 'सुजान' को प्राप्त करने के लिए वह उसे एक अभियोग में फँसाकर कैद करा लेती है। 'कौलावती' के सौदर्य की प्रशंसा सुनकर राजा 'सोहिलसेन' सागर गढ़ पर आक्रमण कर देता है। इस युद्ध में 'सुजान' 'सोहिल सेन' को पराजित कर देता है। अत. राजा सागर अपनी एकमात्र दुहिता 'कौलावती' का विवाह

---

1. उस्मान कृत चित्रावली (सं० जगन्मोहन वर्मा), 205 से 213
2. वही, 316/1-3

'सुजान' मे कर देना है। पत्नी रूप मे 'कौलावती' भारतीय नारी का सजीव चित्र उपस्थित करती है।[1] वह सुजान के साथ रहती हुई सुहागिन नारी प्रतीत होती है किन्तु उसका राजकुवर से कोई शारीरिक सम्बन्ध नही है। 'चित्रा-वली' को प्राप्त करने के लिए वह 'सुजान' का विरोध करती हुई भी दिखाई नही देती। 'चित्रावली' के प्रति उसके मन मे ईर्ष्या तथा राग द्वेष भी नही है। वह इसी बात मे आनन्दित एव प्रसन्न है कि वह राजकुमार 'सुजान' की स्वकीया एव प्रथम पत्नी है।

'कौलावती' अपने समग्र रूप मे सागर गढ के राजा 'सागर' की एक मात्र कन्या तथा 'सुजान' की पत्नी है। इन दोनो ही रूपो मे उसका पत्नी रूप अत्यधिक प्रस्फुटित हुआ है। पत्नी रूप मे वह भारतीय नारी के समान मन्द-मन्द सुलगती हुई भी अपने पति परमेश्वर के किसी भी कार्य का विरोध नही करती। सूफी साधना के क्षेत्र मे उसे अविद्या माया का प्रतीक बनाया जा सकता है। 'सुजान' की प्रेम साधना का वह बाधक तत्व बनती है किन्तु 'सुजान' की एकनिष्ठता के कारण वह अपने प्रयोजन मे सफलता अर्जित करने मे असमर्थ रहती है। राजकुमार के सौन्दर्य को आत्मसात करने के लिए वह साधना का मार्ग ग्रहण नही करती अपितु उसे बलात् प्राप्त करना चाहती है। फलत कौलावती को लौकिक सृष्टि मण्डल का पात्र ही कहा जा सकता है।

'सुजान' 'कौलावती' की प्रेरणा से ही युद्ध मे भाग लेता है।[2] रूपनगर चले जाने 'कौलावती' विरह मे द्रवित हो जाती है और हस मिश्र को रूपनगर अपनी याद दिलाने के लिए भेजती है। इस रूप मे इसका एक ही सिद्धात है

"बाधी डोरी प्रेम की, बर सो जाइ न छूट
दीपक प्रीत पतग ज्यो, प्रान दिऐ पै छूट।"[3]

(ग) चित्र वली

सूफी कवि 'उस्मान' ने 'चित्रावली' के चरित्र को लौकिक रूप मे कन्या, प्रेयसी एव पत्नी के रूप मे प्रस्तुत किया है। वह 'रूपनगर' के वैभव सम्पन्न

---

1. "जस तू मोरे बन्द मेह, तस हो तोरे बन्द।
तोरे तन जो एक दुख, मेरे मर मैं सौ दन्द॥
—उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा) 243/8-9
2 वही, 342/8-9
3 वही, 344/8-9

राजा 'चित्रसेन' की सुकमार कन्या है। देव मित्र के शब्दों में"

"रूपनगर के दच्छिन देसा, चित्रसेन तह राउ नरेसा"
राजा गेह चित्रावलि वारी, सहस कला विधि ससि औतारी।
दूसर कोउ न पाव तेहि जोरा, एक दीप चहुं खण्ड ऊजोरा।
माता-पिता जन पुरजन कोई, सव जनु कया एक जिउ सोई।"[1]

प्रेयसी के रूप मे यही कन्या 'सुजान' के लिए प्रेम-साधना का मूल कारण वनती है। उसके चित्र सौन्दर्य को देखकर, 'सुजान' विमुग्ध होकर साधना मे लीन हो जाता है। इसी प्रकार जव 'चित्रावली' भी 'सुजान' का चित्र देखती है तव उस पर विमोहित हो उठती है। चित्रावली के ही शब्दो में :

"सुनि चित्रिनि चिवसारी आई, देखि चित्रमुख रही लुभाई।
सहस कला होइ हियें समाना, निरपि रूप चित चेत भुलाना।
नैन लाइ मूरति सो रही, डोलि न सकी प्रेम की गही।
करहु खीज ताकर सखी, जेहिक चित्रपह आह।
नहिं तो मरिहौं वूढि मैं, विरह समुद्र अगाहा।"[2]

इस सौन्दर्य को प्राप्त करने के लिए वह अनेक कष्टों का सामना करती है। चित्रावली' की मां 'हीरा' एक कुटीचर के कहने से उस चित्र को धुलवा देती है। फिर भी, 'चित्रावली' मुजान की खोज के लिए अपने दूत भेजती है। परेवा के सहयोग से वह सुजान की खोज भी करा लेती है लेकिन उसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति नही होती। 'सुजान' का प्रथम दर्शन वह परेवा के सहयोग से कर लेती है, किन्तु अपने प्रेमास्पद को प्राप्त करने के लिए उसे विरहजन्य साधनाओ मे तपना पड़ता है। यह एक अन्य तथ्य है कि 'चित्रावली की विरह साधना 'सुजान' की साधना के समरूप होते हुए भी अधिक प्रत्यक्ष रूप मे सामने नही आती। 'चित्रावली' के हृदय मे विरह की चिनगी मन्द-मन्द सुलगती है और कभी-कभी उसमें विस्फोट भी होता है, लेकिन परिस्थितिवश वे घर की चारदीवारी तक सीमित रहती है।

पत्नी रूप में 'चित्रावली एक भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है। उसके विवाह का आयोजन उसके पिता चित्रसेन के द्वारा भारतीय विवाह पद्धति

1. उस्मान कृत चित्रावली (सं० जगन्मोहन वर्मा) 69/1, 3-6
2. वही, 123/1-5, 8-9

के आधार पर किया जाता है। इस रूप मे वह अपने पति की आनन्द सहचरी और सेविका प्रदर्शित की गई है।

सूफी कवि 'उस्मान' ने 'चित्रावली' के चरित्र को मानवीय एव अलौकिक सत्ता रूप मे प्रदर्शित किया है। मानवीय रूप मे उसका चरित्र अत्यधिक सघर्ष-शील दिखाया गया है। इस रूप मे उसके चरित्र मे प्रेम, गर्व, मान, घृणा तथा सघर्ष प्रकृति को विशेष रूप से उभारा गया है। दूरदर्शिता, बुद्धिमता और व्यवहार कुशलता उसके चरित्र के प्रमुख गुण हैं। फिर भी यह स्पष्ट नही होता। 'चित्रावली' के चरित्र मे परोक्ष सत्ता के गुणो का समाहार करना सूफी कवि 'उस्मान' का अभिप्रेत रहा है। फलत. चित्रावली के नाम, रूप, गुण, शील एवं स्वभाव मे, वह परोक्षसत्ता का अवतार बनने मे समर्थ हुई है। इस नायिका को चित्रिनी जाति की बनाकर सूफी कवि 'उस्मान' ने उसमे अलौकिक तत्वों का समाहार किया है। इस रूप मे अपने प्रेमी साधक 'सुजान' के हृदय मे प्रेम की पीर उत्पन्न कर उसे प्रेम साधना के लिए तत्पर करना उसका विशेष कार्य है। अत: चित्रावली के अलौकिक स्वरूप पर विचार करना अपेक्षित है।

'चित्रावली की अलौकिकता—कवि-कल्पना के सन्दर्भ मे 'चित्रावली' परोक्षसत्ता का साक्षात अवतार है। अपने अलौकिक गुणो के कारण ही वह परमतत्व का साक्षात प्रतिबिम्ब बनने मे सफल होती है। सूफी कवि 'उस्मान' उसे निराकार सृष्टिकर्त्ता का ज्ञान करने के लिए उपयुक्त माध्यम चित्रित करता है। 'चित्रावली' अपने नाम, रूप, गुण शील एव क्रियाकलाप से उस परमतत्व का चित्र है, जिसे अध्यात्मवादी आज तक अलख, अरूप, अवर्ण, कर्ता और सर्वव्याप्त कहकर सम्बोधित करते रहे है। अत 'चित्रावली' के अलौकिक चरित्र पर दृष्टिपात कर लेना ही कवि की विचारधारा को समझ लेना है।

नामकरण—'चित्रावली' केवल उस परमतत्व का अलौकिक चित्र ही नही, अपितु उसके चित्रो की पक्ति है। इन चित्रो मे परमसत्ता की अलौकिकता का आभास.प्रस्तुत किया गया है।

आवास वर्णन—'चित्रावली' दक्षिण देश 'रूपनगर' नाम के प्रदेश की निवासी है। देव के मित्र ने रूपनगर का रहस्योदघाटन करते हुए बताया है कि "यह नगर सिंघल के सामान है।[1] यहा पहुंचकर मन की समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती

1. उस्मान कृत चित्रावली (सं० जगन्मोहन वर्मा), 69/1

है और पुनः यहाँ से बाहर नहीं झाँकना पड़ता।[1] इसी नगर की दुर्गमता पर प्रकाश डालते हुए परेवा ने बताया है कि :—

"रूपनगर सो उत्तम देसा, जनु कविलास काइ भुंइ बैसा।
मृगमद चोवा कुमकुमा, खोरि-खोरि महकाइ।
सुर नर मुनि गधरव सब, रहैं सुवास भुलाइ।[2]

इस नगर के दक्षिणी भाग मे एक निर्मल, असीम और अथाह सरोवर है, जिसका पानी मोती और कंकण हीरों के सामान है। स्वर्ग इसकी समता में हल्का पड़ता है। इस ताल पर बनी चौखंड़ी को देखकर मनुष्य तो क्या देवता भी विमोहित हो जाते हैं।[3] इसी सरोवर के पच्छिम मे चित्रावली की चित्र सारी है। अपने प्राकृतिक सौन्दर्य में यह स्थान अद्भुत और अनूठा है। जिस व्यक्ति ने अपने मन को दर्पण के समान निर्मल कर लिया है, वही इसको देख सकता है। इस चित्रसारी की एक अद्भुत विशेषता यह है कि जो भी व्यक्ति एक बार इसे देख लेता है, वह फिर अपने आपको नही देख सकता। स्पष्ट है कि कवि का यह वर्णन साधारण कोटि का नही है। कवि-कल्पना मे यह वर्णन सूफी साधना का गन्तव्य स्थल है, जहां पहुंचकर परमानन्द की प्राप्ति होती है

क्रिया कलाप—'चित्रावली' के क्रिया-कलाप भी साधारण कोटि के नही है उसके चन्द्रमुख को देखकर विश्व मे प्रकाश बिखर जाता है।[4] अपने क्रिया-कलापों मे वह मनुष्य, सुर और गन्धर्वों के प्राण हरने वाली बताई गई है।[5] अपने क्रिया कलापों से राजकुमार 'सुजान' के हृदय मे प्रेम की चिनगी डालना उसका अद्भुत कार्य है। सुजान की प्रेम-साधना मे वह एक आवश्यकीय सूत्र के रूप मे उपस्थित होती है।

अलौकिक स्वरूप—'चित्रावली' कवि-कल्पना मे दो रूपों में चित्रित की गई है। उसका प्रथम और उल्लेखनीय रूप एक अद्भुत चित्र में निहित है तथा दूसरा रूप एक रमणीय नारी का स्वरूप है। इन दोनो ही रूपो मे कवि ने

1. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा), 78/4-5
2. वही, 151/5, 7-9
3. वही, 154
4. वही, 169/4
5. वही, 168

उसे परोक्ष सत्ता के रूप में कल्पित किया है। देव का मित्र सर्वप्रथम चित्रावली का परिचय देता हुआ कहता है कि ·

"रूपनगर है दच्छिन देसा, चित्रसेन तह राउ नरेसा।
राजा गेह चित्रावलि वारी, सहस कला विधि ससि औतारी
दूसर कोउ पाँव तेहि जोरी, एक दीप चहु खण्ड अजोरा।[1]

सोलह कला सयुक्त यह कन्या चन्द्र की अवतार और चारो खण्डो को प्रकाशित करने वाले दीप के समान है। इस चित्र का परिचय देते हुए सुबुद्धि कहता है कि .

"सपने चित्र जहा देखि आए, सौमुख सवै चीन्ह तह पाये।
ऊहै चित्र सो यह जग माँही, जनि जिप जानसि जो कछु नाही।
जानै जती सन्यासी कोई, जो जग माह फिरा वहु होई।'[2]

'चित्रावली' के अलौकिक स्वरूप को कोई योगी, यती और सन्यासी ही जान सकता है। अत इस चित्र के वारे मे 'धरममाल' ने एक प्रश्न के उत्तर में वताया कि—

"दुहू जग जाकी उपमा नही, रे मन सोई वसै तोहि माही।
का ढूढहि जह तहा उदासा, मृग ज्यौ तृन-तृन ढूढत वासा।
मृगमद माह वास ज्यौ रहई, त्यौं घर माहि निरजन अहई।
तैं अवही घर आप न साधत, जव लौ जम वाधा नहिं वाधत।
ग्यान अत घर माह घिराई, निरमल रूप निहारहु जाई।
धरमपंथ छाडौ जनि कोई, धरमहि सिद्धि परापति होई।
मान इहौ जो धरम पथ, डोसी लावै राउ।
रूपनगर अव जाइ कै, चित्रावलिहि जगाउ॥"[3]

सरोवर पर स्नान करते हुए एक सखी ने उसमे अलौकिक स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा कि "तुझे हम गुप्त रूप मे कैसे ढूढ सकती है जवकि तू प्रगट मे ही नही जानी जाती। जिसका भेद चतुरानन ने चारो वेद पढकर भी नही जाना, उसका भेद हम वोरी क्या जानेगी।

---

1. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा), 69/1, 4-5
2. वही, 110/5-7
3. वही

शकर भी तेरी सेवा कर हार गये, किन्तु तू उन्हे नही मिली।[1] 'चित्रावली' का परेवा इसी रूप को 'सुजान' के समक्ष सारगर्भित शब्दो मे इस प्रकार प्रस्तुत करता है :

"रूप सरूप वरनि नहिं जाई, तीनहु लोक न उपमा पाई।
दिनकर दिन पावै नही जोरा, इन्द्र लजाइ देखि मुख मोरा।
अमरकोष गीता पुनि जाना, चौदह विद्या करे निधाना।"[2]

"ऐ राजकुँवर, जिस चित्र पर तुम अनुरक्त हुए हो, वह तो वह केवल परछाँही मात्र है। उस विचित्र का कथन मेरी जिह्वा के उपयुक्त नहीं है। उसे मनुष्य क्या देवता भी नही जान सकते।"[3] योगी सुजान को परेवा ने पुन बताया है कि इस चित्र का रहस्य कोई सिद्ध गुरु ही बता सकता है। इस नकल चित्र पर ध्यान लगाना मूर्खता है। इस चित्र के माध्यम से चितेरे का ज्ञान करना चाहिए।"[4] अपना मुख खोल कर वह संसार को उजाला प्रदान करती है। परेवा के ही शब्दो मे :

"वह चित्रावलि आहै सोई, तीन लोक बन्दै सब कोई।
सुरपुर सबै ध्यान ओहि धरहीं, अहिपुर सबै सेव तेहि करहीं।
मृतु-मण्डल जो देखा हेरी, घर-घर चलै बात तेहि केरी।
पछी वोहि लगि फिरहि उदासा, जल के सुत ओहि नाउ पियासा।
परवत जपनि मौन होइ नाऊ, आसन मार वैठि एक ठाऊ।
अति सरूप चित्रावली, रवि ससि सर न करेइ।
धन सो पुरुष ओ धन हीया, ओहि के पंथ जिउ देई।"[5]

'चित्रावली' के इसी चित्र को देखकर 'सुजान' का जीव भरमा गया है अत: उसी के शब्दो मे।

"जग न होइ अस मानस रूपा, को पावै अस रूप सरूपा।
निहचै अहौ सरग पर आवा, सुर-कन्या भौंदिष्टि मेरावा।
निहचै यह सुरपति अपछरा, देखत मोर ज्ञान चितहरा।"[6]

1. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा), 120/3-6
2. वही, 153/2-4
3. वही
4. वही, 167
5. वही, 200
6. वही 8[illegible]

'चित्रावली' के चित्र दर्शन को राजकुवर सुजान ने पूर्व जन्मो के सचित कर्मो का फल कहा है ·

"भयो भाग्य सम दाहिन आजू, जेहि विधि दीन्ह आनि यह साजू।
कै वह जन्म पुन्य कछु कीन्हा, तेहि परसाद दरस इन्ह दीन्हा।
कै वैनी सिर करवट सारा, कै कासी तन तप मह जारा।
कै मथुरा वसि हरिजस गावा, ताहि पुन्य यह दरसन पावा।
कै सुदिष्ट अपने विधि देखा, आनि देख वह रूप सुरेखा।"[1]

स्वय 'चित्रावली' ने भी अपने सौन्दर्य और स्वरूप को अलौकिक कहा है। वह 'सुजान' की साधना को अपरिपक्व समझ कर उसे दर्पण भिजवाती है और कहती है कि ·

"नैन लाइ रहु दरपन माही, पहिले देखु रूप परछाही।
दरपन चषु ठहराइहि तोरा, विगसि देखु तव दरसन मोरा।
एकहि वार जो सनमुख देखा, होइ तूर पर मूसक लेखा।*
मोरे रूप आहि सो जोति, वारह मान किरन की गोती।
माजत दरपन जीउ दै, नैनन्ह धरव अकास।
जेहि दिन पूजै देव जग, पूजै हम तुम आस।"[2]

प्राप्ति-प्रक्रिया—'चित्रावली' को प्राप्त करने के लिए 'सुजान' की साधना भी अनोखे ढग की है। 'देव' एव उसके मित्र के सहयोग से सुजान प्रसुप्तावस्था मे रूपनगर की चित्रसारी तक पहुंचता है। यही 'चित्रावली' के चित्र सौन्दर्य को देखकर वह प्रेमासक्त होता है और अपने मन, कर्म और वचन मे उसके प्रेम की अटूट गाठ बाध लेता है। इस अवस्था मे जब वह अपने राज्य मे लौटता है तो उसकी दशा दयनीय हो जाती है कवि के ही शब्दो मे :

असन वदन पिराइ गा, रूहिर सूखि गा गात।
रहा झापि लोचन दोऊ, कहे न पूछ वात।[3]

---

1. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा) 84/1-5
2. वही, 260/4-9
3. वही, 92/8-9

* मूसा यहूदियो के एक पैगम्बर थे। इन्हे तूर पर्वत पर परमतत्व के प्रकाश का दर्शन हुआ था

इसी अवस्था में 'विद्याधर' पंडित के सुपुत्र 'सुबुद्धि' के माध्यम से उसे वास्तविक सत्य की जानकारी प्राप्त होती है और वह पुन. 'चित्रावली' की खोज के लिए गढ़ी पर चला जाता है। 'धर्मसाल' उसे चित्रावली के वास्तविक स्वरूप की जानकारी इस प्रकार देता है—

"दुहू जग जांकी उपमा नाही, रे मन सोइ बसै तोहि माही।
का ढूंढहि जह तहा उदासा, मृग ज्यौ तृन-तृन ढूंढत बासा।
मृगमद माह बास ज्यौं रहई, त्यौं घट माहि निरजा अहई।
तैं अबही घट आप न साधत, जब लौ जम बाधा नहिं बाधत।
ग्यान अन्त घट माहि थिराई, निरमल रूप निहारहु जाई।
धरम पथ छाड़ौ जनि कोई, धरमहि सिद्ध परापति होई।
मान इहौ जो धरम पंथ, डोरी लावै राउ।
रूपनगर अब जाइकैं, चित्रावलिहि जगाऊ॥"[1]

'धर्मसाल' से धर्मपथ की जानकारी प्राप्त कर सूफी साधक सुजान साधना मार्ग पर अग्रसर होता है। 'परेवा' गुरु बनकर 'सुजान' को साधना मार्ग के व्यवधानों की जानकारी देता है।[2] परेवा के शब्दों मे :

"यहि मग मांह चारि पुनि देसा, जस-जस देस कसै तस भेसा।
चारिहु देश नगर हैं चारि, पथ जाइ तेहि नगर मंझारी।
जो कोइ जान न चार विचारा, बीचहि मारि लेहि बटमारा।"[3]

इन चारों देशो के चार नगर हैं जिनके नाम क्रमश· भोगपुर, गोरखपुर, नेहनगर और रूप नगर है।[4] सूफी साधना की इन विभिन्न अवस्थाओं का अतिक्रमण करने के पश्चात् सूफी साधक 'सुजान' रूपनगर पहुंचता है। इसमें ध्यान मे अभी एकाग्रता का अभाव है अत. 'चित्रावली' एक दर्पण भिजवाकर उसे ध्यान एकाग्र करने उपदेश देती है।[5] 'सुजान' के कष्टो की कहानी इसके बाद भी समाप्त नही होती और उसे अनेक यातनाओं को सहना पडता है। अन्त मे साधना की पूर्ण सफलता पर उसे चित्रावली की प्राप्ति होती है।

---

1. उस्मान कृत चित्रावली (सं० जगन्मोहन वर्मा), 112
2. वही, 202
3. वही, 204/4,5,7
4. वही, 205/213
5. वही, 260/1-2, 4, 5

निष्कर्षत चित्रावली सामान्य नारी नही अपितु अपितु अपने नाम, आवास, क्रिया-कलाप और प्राप्ति-प्रक्रिया से विधाता के चित्र की साक्षात अनुकृति है। इस चित्र के माध्यम से चितेरे का ज्ञान आसानी से किया जा सकता है। इस अर्थ मे चित्रावली उस सौन्दर्य स्वरूप परम तत्व तक पहुचने का उपयुक्त माध्यम है। भक्ति-कल्पना की विलक्षण तूलिका मे चित्रावली के चरित्र मे सूफियाना रग भरकर उसे सामान्य से असामान्य बना दिया है। चित्रावली को विधामाया का प्रतीक भी कहा जा सकता है।

2 **गौण पात्र**—'चित्रावली' के गौण चरित्रो से हमारा तात्पर्य उन चरित्रो से है जो कथा विकास की दृष्टि से विशेष उपयोगी सिद्ध हुए है। इनमे देव एव उसका मित्र, सुबुद्धि तथा परेवा विशेष उल्लेखनीय है। इस कथा के सूत्रों को यही पात्र अपनी क्रियाशीलता से जोडते है। कथा-घटक मे इनके चरित्र का विकास भले ही नही हुआ किन्तु इतना निश्चित है कि इन पात्रो के चरित्राकन से ही कथा का समुचित विकास होता है। 'उस्मान' ने इन पात्रो के चरित्र का विकास न दिखाकर इनका प्रयोग केवल कथासूत्र के मर्माहत प्रसगों को जोडने के लिए किया है।

3 **अन्य पात्र**—उस्मान' कृत 'चित्रावली' मे अन्य पात्रो के रूप मे नायक सुजान के पिता 'धरणीधर', नायिका के माता-पिता चित्रसेन एव हीरा, सागरगढ के राजा सागर और राजा सोहिलसेन का वर्णन हुआ है। इन पात्रो पर सद् एव असद् प्रवृत्ति के अनेक प्रश्न चिह्न लगाये जा सकते है। इन सभी पात्रो का मूल प्रयोजन कथासूत्र को जोडना तथा कथा मे उतार-चढाव पैदा करना है। सूफी साधना के सन्दर्भ मे इन्हे विभिन्न सद् एव असद् मनोवृत्तियो का परिचायक कहा जा है।

सक्षेप मे 'चित्रावली' के चरित्राकन मे उस्मान का विशिष्ट ध्यान अपने कथा तथ्य और विचारधारा पर रहा है। यही कारण है कि 'चित्रावली' के पात्रो का मानवीय चरित्र अधिक प्रखर नही हो सका है। उनके समस्त क्रियाकलापो और स्वरूप मे अलौकिकता की मोहक गन्ध आती है। उस्मान का मन्तव्य भी कथा पात्रो को उभारना नही बल्कि सूफी प्रेम साधना को लौकिक सन्दर्भ मे विवेचित करना था।

'चित्रावली' में दार्शनिक-चिन्तन

दार्शनिको के अनुसार स्थूल जगत सूक्ष्म-तत्व का साक्षात प्रतिविम्ब है, यही कारण है कि दार्शनिको के हृदय मे परमब्रह्म, जीव, जगत और सृष्टि के सन्दर्भ में नाना प्रकार के विचार उठते रहते है। इस विषय पर सभी दार्शनिक एकमत नही हो पाते अतः वे अपने-अपने दर्शन के अनुसार विभिन्न धर्म एवं सम्प्रदायो का गठन भी करते है। सूफी दार्शनिक भी उपर्युक्त तत्वो के सम्बन्ध मे अपना एक दृष्टि-कोण प्रस्तुत करते है। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि सूफीमत मे दर्शन का आविभाव मंसूर हल्लाज के कत्ल के वाद ही अधिक हुआ है। इसके पूर्व सूफी दर्शन साधनात्मक स्वरूप मे विद्यमान था और उसका दर्शन भी पुस्तको मे निवद्ध नही हो सका था। सूफी दार्शनिको के भी विभिन्न दृष्टिकोण वदलते गये हैं। अतः सूफियों मे भी विभिन्न सम्प्रदायो का गठन इन्ही दार्शनिक मान्यताओ का आधार लेकर किया गया है। दार्शनिक क्षेत्र मे सूफी दर्शन की पहली लडाई इस्लाम से हुई तथा वाद मे आकर इन दोनो ने परस्पर समझौता कर लिया। भारत मे सूफी दर्शन अधिक लोकप्रिय होता चला गया। इसका एकमात्र कारण भारतीय दार्शनिकों एव सूफी दार्शनिको की मान्यताओ मे एक सीमा तक एकरूपता विद्यमान होना है। इसलिए सूफी दर्शन को भारतीय दर्शन का इस्लामी सस्करण भी कह दिया जाता हैं। भारत आकर सूफी दर्शन पर भारतीय वेदान्त, वौद्धधर्म, एवं जैन-धर्म आदि के इतने प्रभाव पड़े है कि अव उसमे भारतीय एवं अभारतीय दर्शन के प्रश्न चिह्न लगाना भी दूभर हो गया है।

हिन्दी-सूफी कवि भी किसी न किसी सूफी सम्प्रदाय मे प्रभावित रहे है। अत उन्होंने अपने सम्प्रदाय की दार्शनिक मान्यताओ को ही अपने काव्य मे विवेचित किया है। यहा यह स्पष्ट करना अनुचित न होगा कि काव्य एवं दर्शन दो अलग-अलग विधाए हैं। एक कवि का दार्शनिक होना स्वाभाविक है लेकिन वह अपने वर्णन मे पूर्ण दार्शनिक होने की अपेक्षा कवि रूप को वरीयता देता है। अतः

है। उन्होंने अपनी दार्शनिक मान्यताओ को काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। अपने काव्य की भूमिका मे ही उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि—

"कथा एक मैं हिए उपाई, कहत मीठ औ सुनत सोहाई।
कहौ वनाय जैस मोहि सूझा, जेहि जस सूझ सो तैसे वूझा।
वालक सुनत कान रस पावा, तरुनन्ह के तन काम वढावा।
विरधि सुनैं मन हाइ गियाना, यह ससार धंधा कैं जाना।
जोगी सुनै जोग पथ पावा, भोगी केह सुख भोग वढावा।
इच्छा तरु एक आह सोहावा, जेहि जस इच्छा तेस फल पावा।
मजुल मुकुर विमल कर लेखा, जो देखे सो आपुहि देखा।"[1]

कवि के ही अनुसार इस कथा में कवि ने एक काल्पनिक कथा के अन्तर्गत किसी दार्शनिक विषय का विवेचन किया है, जो प्रत्येक वर्ग के प्राणि के लिए अपनी-अपनी इच्छा के अनुरूप फलदायक है। अत 'उस्मान' के दार्शनिक-चिन्तन पर विचार कर लेना अपेक्षित है।

परमतत्व-सम्वन्धी विचार—सूफी कवि 'उस्मान' ने अपने काव्यग्रन्थ 'चित्रावली' के 'स्तुति खण्ड' के अन्तर्गत परमतत्व-सम्वन्धी विचारो का सारगर्भित विवेचन किया है। 'उस्मान' के अनुसार "सर्वप्रथम मै उस चितेरे का वखान करता हू, जिसने इस ससार रूपी चित्र का निर्माण किया है।" इस चित्र मे उसने नारी एव पुरुष, सूर्य एव चन्द्रमा, काला एव सफेद तथा लाल एव पीले रगो को निर्मित किया है। इस ससार मे उसके अतिरिक्त कोई ऐसा तत्व नही है, जो जल के ऊपर इस प्रकार के चित्रो का निर्माण कर सके। उसने ही पवन के ऊपर वचन का चित्र लिखा है। उसके विचित्र लेख को कोई मिटाने मे सक्षम नही है। इस चित्र का निर्माण कर वह उन चित्रों मे इस प्रकार समाविष्ट हो गया है कि उसे प्रत्यक्ष न देखा जा सके। कवि के ही शब्दो मे—

"अस विचित्र लिखि जानै सोई, वन्हि विनु मेट सके नहि कोई।
कीन्हेसि रूप वरन जह ताई, आपु अवरन अरूप गोसाई

1. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा), 1/1

अगनि पवन रज पानि के, भाति भाति व्यौहार।
आपु रहा सब माँहि मिलि, को निगरावै पार ॥[1]

स्पष्ट है कि वह कर्त्ता एक चित्रकार के समान है, जिसने क्षिति, जल, पावक, गगन एवं समीर के माध्यम से सृष्टि की रचना की है। वह कर्त्ता सर्वव्याप्त है, किन्तु उसे प्रगट या गुप्त रूप से नही जाना सकता। वह न तो पास है और दूर[2] अगर कोई दिव्य दृष्टि से देखे तो—

'जहवा सिन्धु अपार अति, विनु तट विनु परिमान।
सकल सिप्टि तेहिमां गुपुत, वालू कनक समान।"[3]

उस कर्त्ता का स्वरूप अकथनीय हैं। इस ससार मे विभिन्न मूर्तियां वनाकर वह उनमे समाविष्ट हो गया हैं। कवि के ही शब्दों में—

"मन के चरन पंगु जेहि ठाई, वपुरी जीभ चलइ कहं ताई।
मन की डीठ नैंन जहँ मूदै, सो मगु जीभ चरन क्यो खूंदै।
परगट गुपत विधाता सोई, दूसर और जमन नहि कोई।
है सब ठाऊ नाहि कोइ ठांई, मुनिगन लखहि कि अलखगु साई।
सृष्टि अनेक लखैं नहि पाई, सिरजनहार लखा केहि जाई।"[4]

वह परमतत्व अपनी शक्ति मे महान को लघु और लघु को महान वना सकता है। उस कर्त्ता ने सभी को वनाया है लेकिन उसे किसी ने नहीं वनाया है। उसी ने खाने के लिए अन्न, सुनने के लिए कान, और समस्त समृद्धिया वनाई है। उसने पहले सुख और समृद्धियों का निर्माण किया तथा तत्पश्चात् उनके भोगने वाले जीव का निर्माण किया।[5] कवि इस परम तत्व की महिमा का वर्णन करने मे असमर्थ है। कवि के ही शब्दों ने—

"मोरे मुख कहु कही न जाई, देखहु रसना करी हसाई।
रंचक जीभ रही मुख परी, विधि अस्तुति कारन इकसरी
अस्तुति मानं पाय अस कूदी, वुद्धि आइ पहिले मुख मूदी।"[6]

---

1. उस्मान कृत चित्रावली (सं० जगन्मोहन वर्मा), 1/7-9
2. वही, 2/1-3
3. वही, 2/7-9
4. वही, 3/3-6
5. वही, 5/3-5
6. वही, 7/1-3

इस ससार मे आकाश से लेकर पाताल तक जितने भी गण, गन्धर्व, मुनि देव एव नर विद्यमान है, सब उसकी आशा करते रहते है किन्तु वह किसी की आशा नही करता ।[1] इस ससार में जो अपने आपको पहचान लेता है वही उसके मर्म को जान सकता है ।[2]

निष्कर्षत: वह परमतत्व एक कुशल चित्रकार के समान है। उसने ही सृष्टि की रचना क्षिति, जल, पावक, गगन एव समीर के माध्यम से की है। वही सृष्टि का कर्त्ता एव सहारक है। वह सर्व व्याप्त एव सर्वशक्तिमान अगम, अगोचर, अविनाशी एव अवर्णनीय है।

सृष्टि-सम्बन्धी विचार—'उस्मान' के अनुसार यह सृष्टि उस परमतत्व का साकार चित्र है। सृष्टि निर्माण मे परमतत्व ने क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर आदि तत्वो को माध्यम बनाया है।[3] अपने नाम, रूप, गुण एव शक्ति के प्रकाशन के लिए ही उसने अपनी स्वेच्छा से सृष्टि का निर्माण किया है। इस अर्थ मे यह समस्त सृष्टि उसी के मुख का प्रतिबिम्ब है। कवि के ही शब्दो में—

"मुख दरसाव परम उजियारा, जाहिं विलाइ तिमिर औ तारा।
एक जोत परगट सब ठाऊ, रहइ न कतहू दूसर नाऊ।
पट उधार ससार जिय, सरूप रहा समाय।
जब लगि सूफ न लोचनहिं, अन्धा नहि पतियाय ॥"[4]

सृष्टि निर्माण-प्रक्रिया मे उसने सर्वप्रथम एक अद्वितीय ज्योति का निर्माण किया। उसी ज्योति का नाम मुहम्मद है। मुहम्मद वस्तुत ससार का सार तथा परमतत्व का एक साक्षात अश है। कवि के ही शब्दों मे—

"पुरुष एक जिन्ह जम अवतारा, सबन्ह सरीर सार ससारा।
आपन अम कीन्ह दुइ ठाऊ, एक का धरा मुहम्मद नाउ।

---

1. "गन गन्धर्व-मुनि देवनर, महि पाताल आकास ।
वहिक आस सब जग करै, वह न काहु के आस ॥
—उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा) 7/8-9
2. "कहि न कि जिन आपहि पहिचाना, तिन कुछ मरम तोर है जाना ।"
—वही, 8/1
3. वही, 1
वही, 9/6-9

पहिले उठा प्रेम विधि हिए, उपजी ज्योति प्रेम की दीए।
जोति का नाम मुहम्मद राखा, सुनत सरोप कहा अभिलाखा।"[1]

जिस प्रकार समुद्र से रहित लहर तथा सूर्य से रहित प्रकाश किरण की कल्पना नही की जा सकती उसी प्रकार मुहम्मद के विना सृष्टि की कल्पना करना असम्भव है।[2] रूप, प्रेम एव विरह इस सृष्टि के खम्भ है।[3] सृष्टि निर्माण का मूल कारण परमतत्व का मुहम्मद के प्रति प्रेम है—

निष्कर्षत: सृष्टि उसी परमतत्व का प्रतिविम्व है। सामान्य जीवन मे साधक प्रतिविम्व को निहार कर ही विम्व की ओर आकर्षित होते है। सृष्टि निर्माण के सम्वन्ध मे 'उस्मान' सूफी दार्शनिको के ही अनुकर्ता है। 'जिली' के अनुसार "सृष्टि निर्माण की भावना ईश्वर के मन मे अपने स्वरूप के प्रदर्शन के निमित्त हुई।[4] श्याम गज्ज़ाली भी इस दृश्यमान जगत को उस परमतत्व की वैसी ही प्रतिच्छाया मानते है जैसी कि प्रकाश की किरण।"

जीव-सम्वन्धी विचार—सूफी कवि 'उस्मान' ने जीवात्मा एव परमात्मा के सम्वन्ध में अद्वैतवाद की कल्पना की है। कवि ने परम तत्व और जीव मे अश-अंशी भाव की कल्पना की है। सासारिक जीव उसी परमतत्व की खोज मे इसी प्रकार भटकता रहता है, जैसे कि मृग नाभि-स्थिति-कस्तूरी की खोज मे।"[5] मनुष्य इस सृष्टि का सर्वोत्तम जीव होने के का महत्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित है।

माया-सम्वन्धी विचार—परमतत्व एवं जीवतत्व के मध्य मायातत्व एक व्यवधान है। परमात्मा एव आत्मा एक ही तत्व के दो रूप है, परन्तु जब जीवात्मा परमतत्व से अलग हो स्थूल शरीर मे आश्रय ग्रहण करती है, तब उसे माया के अस्तित्व का ज्ञान होने लगता है। यह मायातत्व जीवात्मा को परमात्मा से मिलने मे वाधक वनता है। 'चित्रावली' काव्य का 'कुटीचर' माया तत्व का ही

1. उस्मान वृत चित्रावली(स० जगन्मोहन वर्मा), 10/1-5
2. वही, 10/8-9
3. वही 31/8-9
4. E. H. Palmer, Oriental Mysticism p. 41
5. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा), 112/4

प्रतिनिधित्व करता है। काम, क्रोध, मद, लोभ एव मोह आदि विचार जीवात्मा को घेरे रहते है। कवि के ही शब्दों मे·

"पाँचो भूत रहै नित घेरे, कोइ मरै चखु सोहन हेरे।
जोगी परा पाँच बस, ताते भा विकरार।
पाचो नाच नचावही, आपनि-आपनि वार ॥"[1]

यही माया विपय-वासना रूपी झकोरो से माया रूपी भवन को ध्वस्त करने और ज्ञान-दीपक को बुझाने का प्रयत्न करती है।[2] माया रूपी वटमार किसी को छोडते नही, ससार छोडने पर ही इनसे छुटकारा मिल सकता है।

निष्कर्पत सूफ़ी कवि उस्मान ने सूफी दार्शनिको की विचारधारा को ही अपने काव्य-ग्रथ मे काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उस्मान चिश्तिया समुदाय के अनुयायी थे। अत उन्होने अपने काव्यग्रथ मे सूफियो के चिश्तिया समुदाय के दर्शन को फलित करने का प्रयास किया है। सूफी दर्शन के अनुसार ही सूफी-साधना के लिए प्रेम-रूप और सौन्दर्य को उन्होने अपने काव्य का विवेच्य विपय बनाया है। इस काव्य के नायक एव नायिका चित्र दर्शन के चित्रकार की खोज करने के लिए तत्पर होते है तथा प्रेम एव विरह-साधना के द्वारा परमानन्द की प्राप्ति करते है। इसमे 'सुबुद्धि' का सहयोग अपेक्षित है। प्रेम मार्ग के अवरोध माया के प्रतीक है।

---

1. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा), 341/6-9
2. वही, 48/2

'चित्रावली' का काव्य-सौष्ठव

'चित्रावली' प्रतिभासम्पन्न सूफी कवि 'उस्मान' की लब्धप्रतिष्ठित रचना है। इस रचना मे काव्य के माध्यम से सूफीमत, साधना एव सिद्धातो का निरूपण कवि की अपनी विशेपता है। इस क्षेत्र में 'चित्रावली' सर्वप्रथम एक सर्वोत्कृष्ट काव्य ग्रथ तथा वाद मे सूफी विचारधारा का एक ग्रन्थ कहा जा सकता है। सूफी कवि 'उस्मान' ने इस ग्रन्थ के अन्तर्गत सूफी विचारधारा का सम्यक विवेचन करते हुए भी काव्य तत्वो को शिथिल नही पड़ने दिया है। प्रस्तुत प्रसग मे चित्रावली के काव्य सौष्ठव पर विचार कर लेना हमारा मन्तव्य है।

भाव पक्ष

(क) वर्ण्य विपय—चित्रावली का वर्ण्य विपय एक काल्पनिक प्रेम कथा है। सूफी कवि 'उस्मान' ने एक मौलिक कथा की कल्पना कर उसमें 'सुजान' एवं 'चित्रावली' के प्रेम को विशद् रुप से चित्रित किया है। इस प्रेम पद्धति में सूफी विचारधारा की अभिव्यक्ति कवि की विलक्षण विशेपता है। कवि के अनुसार उनकी इस प्रेम कथा मे यौगिक-परम्परा का सांगोपाग विवेचन है।[1] यही कारण है कि कवि ने इस कथा को 'वहुजन हिताय' वताया है और कहा है कि इस रचना से पाठक अपनी इच्छानुसार फल को प्राप्त कर सकते है।[2] इस कथा की रचना में कवि ने अपने कलेजे के लहू को पानी वना दिया है।[3] इसी कारण अपनी कथा पर गर्वोक्ति करते हुए कवि ने कहा है कि मैंने अपनी वुद्धि के अनुसार इस कथा का निरुपण किया है। अगर किसी के पास अधिक वुद्धि हो तो वह इसी प्रकार की एक अन्य कथा लिखकर जन-सामान्य का भला कर सकता है।[4]

(ख) कल्पना सौंदर्य—स्पप्ट है कि सूफी कवि 'उस्मान' कल्पना के धनी हैं।

---

1. उस्मान कृत चित्रावली (सं० जगन्मोहन वर्मा), 23
2. वही, 32
3. वही,33/2
4. वही, 33

अपनी कल्पना से इस प्रकार की कथा रचना उनकी मौलिक उद्भावना है। इस वर्णनात्मक कथा मे विविध प्रसगो का वर्णन भी कल्पना प्रसूत है। कवि की लेखनी उन मार्मिक एव वर्णनात्मक प्रसगो पर आकर विराम लेती है, जहा कल्पना करने के लिए उन्हे थोडा भी अवसर प्राप्त होता है। कवि की मनोरम कल्पना से ही इस काव्य मे नगर वर्णन, यात्रा वर्णन, आखेट वर्णन, जल-क्रीडा वर्णन, सौंदर्य वर्णन, बारहमासा-वर्णन, युद्ध वर्णन और भोजवर्णन आदि प्रसगो का सजीव चित्रण हुआ है। कवि की मनोरम कल्पनाओ से इस ग्रन्थ के काव्य तत्व अधिक प्रखर होते चले गये है।

(ग) **भाव-सौंदर्य**—कवि ने अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए काल्पनिक कथा मे यथास्थान अपने मनोगत भावो का चित्रण कर इस कथा को सामान्य मे असमान्य बना दिया है। स्थान-स्थान पर कवि कथा मे सूफी विचारधारा को सुन्दर भावो मे अभिव्यक्त करता चला गया है। इस कथा मे कवि का दृष्टिकोण आध्यात्मिक ही अधिक रहा है। इस क्षेत्र मे कवि की विशेषता यह रही है कि आध्यात्मिक विचारधारा के निरूपण से इस कथा के काव्य तत्व शिथिल नही हुए हैं बल्कि उनमे निरन्तर निखार आता चला गया है। आतुरता, अभिलाषा, आकाक्षा, आनन्द एव भय जैसे भावो का कवि ने सुन्दर एव सारगर्भित विवेचन किया है।

(घ) **रस-विवेचन**—'चित्रावली' मे शृगार रस प्रधान है। शृगार के दोनो पक्षो—सयोग एव वियोग—का इस काव्य मे सम्यक् विवेचन हुआ है। कवि ने अपने काव्य मे नायक-नायिका भेद का विशद वर्णन किया है, किन्तु इनका शास्त्रीय विवेचन इस काव्य मे नही हो सका है। इसी प्रकार सयोग एव वियोग का वर्णन होते हुए भी कवि का आग्रह उनके शास्त्रीय-विवेचन पर नही हैं। कवि ने वियोग के लिए उद्दीपन की दृष्टि से षड्ऋतु एव बारहमासा का सम्यक् विवेचन किया है। चित्रावली के सयोग का वर्णन इस प्रकार है :—

"घूघट खोलि रूप अस देखा, सो देखा जेहि सीस सुरेखा।
अधर घूट सो अमिरित पीआ, जेहि के पियत अमर भा हीया।
राहु गरास कलानिधि कापा, लोचन पल आनन पट झापा।
पुनि मनमथ रति फागु सवारी, खोलि अछूत कनक पिचकारी।
रग गुलाल दोउ लै भरे, रोम-रोमतन मोती झरै।

सेद थभ रोमांच तन, आसु पतन सुर भंग।
प्रथम समागम जो कियो शीतल भा सब अंग"[1]

उस्मान का संयोग वर्णन भावात्मक न होकर अश्लीलता के करीब पहुंच जाता है। कवि ने यद्यपि नायक नायिका भेद, रति के तिथि अनुसार स्थान तथा नारी-पुरुष के संयोग की बात भी विशद् रूप से चित्रित की है, किन्तु यह वर्णन मात्र परम्परागत एवं शास्त्रीय ज्ञान के प्रदर्शन के लिए ही किए गये हैं। कवि ने अपने काव्य की नायिका को 'चित्रणी' बताया है। और चित्रणी नायिका के समस्त लक्षणों का उल्लेख किया है।[2] इसके अतिरिक्त कुछ अन्य नयिकाओं के उदाहरण इस प्रकार हैं :—

मुग्धा—"सब मुगुधा जीवन अंगिराता, कोई ज्ञाता कोउ अज्ञाता"[3]

वासकसज्जा—'कंत वचा परतीत पर, सोरह साजि सिंगार।
वासक सज्जा होइ रही, लाइ नैंन दुई बार।"[4]

धीरा—"चौंक लागे कर सीरा, दच्छिन नाहिं नायिका धीरा।"[5]

खंडिता—"करम करम कै सो निसि गई, पिय देखत तिऊ खडित भई।"

सूफी कवि 'उस्मान' की दृष्टि संयोग की अपेक्षा वियोग वर्णन पर अधिक टिकी है। इसका एकमात्र कारण सूफी कवियों के विरह वर्णन पर आध्यात्मिकता का भाव है। मढ़ी में जगाने पर कुवर 'सुजान' की विरह दशा का सुन्दर विवेचन इस प्रकार है।

"अरुण वदन पियराय गा, रुहिर सूखिगा गात।
रहा भ्रांति लोचन दोउ, कहै न पूछै बात।"[6]

इसके अतिरिक्त कवि ने नायक एवं नायिका दोनो के ही पक्ष में विरह की विभिन्न काव्य-शास्त्रीय दशाओ का सम्यक् विवेचन किया है। चित्रावली वियोग

---

1. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा), 6. 536
2. वही, 554
3. वही, 596
4. वही, 597
5. वही, 598
6. वही, 92

वर्णन के लिए कवि ने षड्ऋतु वर्णन एव बारहमासा का भी विधान किया है। इस सन्दर्भ मे इतना कह देना पर्याप्त है कि 'उस्मान' के इस विरह वर्णन में आध्यात्मिकता का भाव समाविष्ट है। कवि ने वीर रस का भी संक्षिप्त विवेचन किया है।

कथा-प्रयोजन—सूफी कवि 'उस्मान' ने अपनी कथा का प्रयोजन बताते हुए कहा कि यह कथा सुनने मे सुहावनी तथा कहने मे मीठी है।[1] यह कथा बहुजन-हिताय है। इसके फल को पाठक अपनी इच्छानुसार प्राप्त कर सकता है। कवि के इस प्रकार के कथनो से स्पष्ट है कि कवि ने एक सामान्य काल्पनिक कथा के अन्तर्गत सूफी विचारधारा का सम्यक विवेचन किया है। उन्ही के शब्दो मे मुझे गुरु ने जो कुछ बताया उसी का इस काव्य मे चित्रण है :—

"करम बात अब कहौं सुन तोही, जस कछु गुरु सिखावा मोही।
ज्ञान डोर कर हिया मथानी, नाम लेत डोरी लपटानी।
उलटी दृष्टि रहै टुक लाई, नजग रहै जेहि जनु न जाई।
तौं लहु मथै बैठि दे जीउ, निसरै छाछ मही ते घीउ।"[2]

कला पक्ष

भाषा—'चित्रावली' की भाषा अवधी है। जायसी के ठीक 75 वर्ष बाद की रचना होने के कारण इसकी भाषा जायसी की अपेक्षा अधिक परिमार्जित एवं परिष्कृत है। वर्णनात्मक शैली मे लिखी होने के कारण 'चित्रावली' की भाषा मे एक विशेष प्रवाह विद्यमान है। इस काव्य मे क्षेत्रीय बोलचाल के शब्द जैसे झाला, बोयरा, वैसर, केव लोन, मेहरिन्ह आदि शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। काव्य मे अरबी, फारसी के शब्दो का भी प्रयोग है लेकिन इनकी सख्या बहुत कम है। संस्कृत शब्दो मे तत्वमसि, कलम, पनच आदि का भी प्रयोग हुआ है। सौरि, राउत एव लोपन जैसे तद्भव शब्द भी काव्य मे प्रयुक्त है। कवि की भाषा सरल, सुबोध एव प्रवाह युक्त है।

शैली—इस काव्य ग्रन्थ की शैली वर्णनात्मक है। यही कारण है कि कवि ने कही-कही अपने पाडित्य प्रदर्शन के लिए कथा से इतर प्रसगो का भी सविस्तार

1. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा), 32/1
2. वही, 23/4-7

विवेचन किया है।

छन्द—'चित्रावली' मे दोहा और चौपाई छन्द का प्रयोग किया गया है। सात अर्धालियो के पश्चात् एक दोहे का क्रम ही सम्पूर्ण ग्रन्थ में उपलब्ध है।

अलंकार—अलंकारों के प्रति कवि का मोह अधिक नहीं है फिर भी इस ग्रन्थ मे सादृश्य मूलक अलंकारों में प्रतीप, हेतूत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, उल्लेख, रूपक और उपमा आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। यहाँ कुछ अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

उपमा—" यह जम जस पानी करधावा, जो कुछ गा सो वहुरि न आवा।"

अतिशयोक्ति—"वैठे पंछी रैनि के, भयो जानि जग भोर।
उठैं जाग सव दिवस गें, फिरन लगे चहुं ओर।"

उत्प्रेक्षा—"टूटहि कलवावलि वदन, भौहें चढ़ी कमान।
जाल रोपि कुरुमेखु जनु, मारन चाहति प्रान।"

प्रतीप—"वदन ज्योति मेहि उपमा लावौं
ससिहर पटतर देत लजावौं
ससि कलक पुनि खण्डित होई,
है निकलंक सम्पूरन सोई।"

रूपक—"ज्ञान डोरि तरु हिया मथानी, सांस लेत डोरो लपटानी।
उल्टी दृष्टि रहैं टुक लाई, सजग रहैं जेहि जन्तु न जाई।"
तौ लहु मथैं वैठि दे जीउ, निसरैं छांछ मही ते घीउ।"

मुहावरे एवं लोकोक्तियां—सूफी कवि 'उस्मान' ने अपने काव्य में लोक प्रचलित कहावतों का प्रयोग कर अपने काव्य की भाषा को अधिक व्यावहारिक वना दिया है। कवि की कुछ कहावतें यहां प्रस्तुत है :

1. सत्य समान पूत जग नांही, सत सौं रहै नांउ जग मांही
2. कौरव पूत एक देस वखाना, सत्य पूत चारो खंड जाना।
3. विनु रस अवनि जनम जे पावा, सूने घर जस पाहुन आवा।
4. ऐसे केत विगचे पाए, थोरा छाड़ि वहुत कंह धाए।
5. भूख न मानैं लावन सेती, नींद न मानैं सोरि सवेती
6. पुनि मन कछु गियान उपराजा, वांध उधारे मरिये लाजा।

लोकोक्तियां

का हुहि मोहि देखाइ न जाई, छेरी झुंड कोहंड़ा न समाई
कौन सुनैं असको मति देई, हस्ति क भार क गदहा लेई

विगसत कौल न बार भई, गयी अथै जग भान।
मारेसि ईंट देखाई गुड, सोई भा उपखान।

निष्कर्षत: सूफी कवि 'उस्मान' एक प्रतिभासम्पन्न कवि है। उन्होंने अपने काव्य ग्रन्थ 'चित्रावली' मे आध्यात्मिक विषय का निरूपण करते हुए भी काव्य तत्वो को शिथिल नही पडने दिया है। इस दृष्टि से चित्रावली सूफी प्रेमाख्यान परम्परा की एक विशिष्ट रचना है। प्रबन्ध शैली के गुणों के आधार पर इस रचना को महाकाव्य भी कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ की सामान्य कथा मे प्रत्येक क्षण असामान्य का विवेचन सूफी कवि उस्मान की अपनी विलक्षण विशेषता है। इस असमान्य विवेचन को सूफी विचारधारा के परिप्रेक्ष्य मे प्रत्यक्ष निहारा जा सकता है। 'चित्रावली' का समस्त विवेचन आध्यात्मिक चेतना से सम्पृक्त है।

'उस्मान' की बहुज्ञता एवं मौलिकता

सूफी कवि 'उस्मान' एक प्रतिभासम्पन्न कवि थे। अपने काव्यग्रन्थ 'चित्रावली' में इन्होंने अपने वर्णित कथा-प्रसग के साथ ही समयानुरूप अन्य अनेक विषयों का सारगर्भित विवेचन किया है। कवि द्वारा वर्णित इन विभिन्न विषयों मे परम्परा-निर्वाह एव पाण्डित्य-प्रदर्शन का भाव ही अधिक दृष्टिगोचर होता है। फिर भी, कवि की बहुमुखी प्रतिभा एव विविध प्रकार के ज्ञान को नकारा नहीं जा सकता। सूफी कवि 'उस्मान' द्वारा वर्णित विविध प्रसंग निम्नलिखित हैं—

1. ज्योतिष ज्ञान—सूफ़ी कवि 'उस्मान' ने क़ाव्य-नायक 'सुजान' के जन्म पर ज्योतिषियो को बुलवाकर उसकी जन्म-कुण्डली बनवाई है। इस कुण्डली में समस्त ग्रह एवं नक्षत्रो की स्थापना करते हुए कवि ने होडा चक्र द्वारा उनके फल भी बताये है। 'सुजान' की जन्म-कुण्डली मे मिथुन लग्न, तीसरे सूर्य, नवें घर में चन्द्रमा, दूसरे में बुद्ध एवं शुक्र, दसवे घर मे शनि, ग्यारहवें घर मे बृहस्पति तथा राहु-केतु को उच्च घर मे स्थापित करते हुए कवि ने बताया कि यह शिशु आयुष्मान होगा। यह यद्यपि धनपति सम्राट बनेगा लेकिन किसी सुन्दर नारी के वियोग में फँसकर योगी बनकर देश-विदेश मे भ्रमण करेगा।[1] इसी प्रकार 'चित्रावली' के विवाह की लग्न भी ज्योतिषयों द्वारा ही निकाली गई है :

"तत्तखन आये जोतपी, रास वरग गनि लेखि।
वदि बैसाखी पंचमी, मीन लग्न सुभ देखि।"[2]

पंडितों ने मीन लग्न, चन्द्रवार तथा बृहस्पति की नवम् दृष्टि को देखकर ही 'चित्रावली' के विवाह की लग्न निकाली है। कवि द्वारा ज्योतिष का यह वर्णन परम्परा का निर्वाह मात्र नही कहा जा सकता। इससे प्रतीत होता है कि कवि ने यह वर्णन अपनी पूर्ण जानकारी के बाद ही प्रस्तुत किये हैं।

---

1. उस्मान कृत चित्रावली (सं० जगन्मोहन वर्मा), 50-51
2. वही, 514/8-9

2. **संगीत वर्णन**—उस्मान ने अपने काव्य के अन्तर्गत राग-रागनियो तथा वाद्ययन्त्रो का भी विस्तृत वर्णन किया है। राग-रागनियो के सन्दर्भ में कवि ने भैरो, कौसिक, मेघ-मल्हार, हिंडोल, दीपक, सिरीराग तथा हनुमत मत के रागो मे भैरो, पञ्चम, मेघ, मल्हार, नट गौरा और मालवा तथा पार्वती मत के रागों का उल्लेख किया है।[1] इन सभी रागो की रागनियों के अन्तर्गत उन्होंने सिरीराग की गौरी, मधुमाधवी, केदारी, मालवी, बिहारी तथा भैरो राग की रागनियो मे बंगाली, गूजरी तथा देवगिरी, टोडी, हिंडोल, भूपाली आदि का वर्णन किया है।[2] मेघ-राग की रागनियो मे गंधारी, सोरठ, मल्लारी, नटवी, कोनदी, कल्यानी आदि का उल्लेख किया गया है।[3] कवि द्वारा वाद्य यन्त्रो का वर्णन इस प्रकार है :—

"महुअर सुरजनु मह महुआरा, छुकटी माह करै मतवारा।
चग अतक सुनत न झूले, बसी धुन सुनि अहि कुल भूले।
पुनि बुधि हरन कमाइचि साजी, डो सुमेरु बनि जब बाजी।
गहि पिनाक जानहु सुर गहा, जत कत जगत वेझ होई रहा।
हुडूक बाज जल जन्त बजावा, को न जन्तु वै सबद भुलावा।
डफ बजाइ मुनिवर चितहरा, को न जाइ तेहि घरै परा।
बाजै झाझ-मजीरा तूरा, राजहि भाव सोई सुर पूरा।"[4]

3. **कामशास्त्र का वर्णन**—सूफ़ी कवि 'उस्मान' ने अपने काव्यग्रन्थ में 'कामशास्त्र खण्ड' की रचना कर अपने कामशास्त्रीय ज्ञान का परिचय दिया है। कवि के ही अनुसार .

"जब लगि सुरत नारि नहि होई, तब लगि रस परगास न होई।
रस विद्या मकरध्वज बाना, पाच होई सो सुनो सुजाना।
जै यह बान सोह हारे खावा, यह जस जियन अमर पद पावा।
धनि सो धन पुरुष सुजान, धनि विद्या धनि-धनि सो बाना।

---

1. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा), 74
2. वही, 75
3. वही, 76
4. वही, 73

सुनहु कुंवर चित कान दै, रस कथा अभिराम ।
पहला बरनौ चार तिय, तौं पाछे रति काम ॥"[1]

चार प्रकार की नारियों के सन्दर्भ में कवि ने पद्मिनी, चित्रणी, हस्तिनी और संखिनी के लक्षणों का विस्तार से विवेचन किया है। सूफी कवि 'उस्मान' ने अपने काव्य की नायिका को चित्रणी बताया है अतः यहाँ उसके लक्षण कवि के शब्दों में प्रस्तुत है :—

"नैन चपल पुनि चित्रिन नारी, पातर मुख औ अलप अहारी ।
मोट न पातर बीचहि बनी, जेहि घर होई पुरुष सो धनी ।
अति कटि छीन मृदुल पुनि होई, सबद मंजारे कठ सुर होई ।
सुभग नितम्ब पयोहर खीना, कामिन सुघर बजावै बीना ।
चित्र लिखै चतुराई करई, सुन्दर वचन सेज मन हरई ।
छोट वड़े सो मया जनावै, स्याम चिउर सिर मौर न पावै
अलप काम जल मद की बासा, अलप रोम तन कान निवासा ।
सुन्दर जंघा पातरी अछवाई पुनि चाउ ।
अंग वास पै अधिक है, चित्रिन माह सुभाउ ॥"[2]

इसके पश्चात् कवि के रति का विभिन्न तिथियों के अनुसार स्थान निर्धारित किया है और नर और नारी के जोग की चर्चा करते हुए पुरुषों के लक्षण भी चित्रित किये हैं।[3] इस प्रसंग का विस्तार से वर्णन करने के पश्चात् कवि ने अपनी असमर्थता प्रगट करते हुए लिखा है कि :—

कहों थोर जेहि भाव बहू, बूझहि बूझनहार ।
कंह लगि बरनौ नायका, नायक गुन विस्तार ॥"[4]

4. **सांस्कृतिक ज्ञान**—सूफ़ी कवि 'उस्मान' ने अपने लौकिक ज्ञान के लिए भारतीय संस्कृति का सुन्दर विवेचन किया है। इसनें तत्कालीन रीति-रिवाजों, छठी, बरहां, वर्ष गांठ, विवाह मंडप, कोहबर आदि का सजीव चित्रण किया है। अपने काव्य में विभिन्न जातियों का सुन्दर विवेचन करते हुए कवि ने क्षत्रिय

---

1. उस्मान कृत
2. वही, 554
3. वही, 557-
4. वही, 569

का धर्म वताते हुए लिखा है —

"क्षत्री सुनि जो ना करै, तिय अरु गाय गोहारि।
पुहुमी कुल गारी चढै, सुनरग हाड मुख कारि।"[1]

कवि को तत्कालीन नगरो की वास्तविक भौगोलिक स्थिति का भी पर्याप्त ज्ञान है।[2] उसने अग्रेजो के खान-पान का वर्णन करते हुए 1612 मे अग्रेजो द्वारा सूरत मे वनाई गई कम्पनी, का भी उल्लेख किया है। वगालियो के भोजन का वर्णन करते हुए वे लिखते है ·

"सव कह अमिरत पाच है, वंगाली कह सात।
केला, काजी, पान रस, साग, माछरी भात।"[3]

5 **अन्य वर्णन**—इसके अतिरिक्त कवि ने नगर वर्णन (गाजीपुर), आखेट वर्णन, जलक्रीडा वर्णन, यात्रा वर्णन, युद्ध वर्णन, भोज वर्णन आदि विभिन्न वर्णनो का सागोपाग विवेचन कर अपनी वहुज्ञता का परिचय दिया है। कवि के यह वर्णन परम्परागत हो अथवा पाडित्य-प्रदर्शन हेतु, किन्तु इतना निश्चित है कि कवि ने इस क्षेत्र मे अपनी वहुज्ञता को स्वत प्रमाणित कर दिया है। अपने पूर्ववर्ती कवियो मे इस दृष्टि से सूफी कवि 'उस्मान' का एक विशिष्ट स्थान है।

सक्षेप मे सूफी कवि 'उस्मान' एक कवि, दार्शनिक एव वहुज्ञान के पडित थे। उन्होने अपने काव्य के अन्तर्गत कथा प्रसग के साथ ही उन सभी कवियो को समेटने का प्रयास किया है, जो तत्कालीन समय मे वहुचर्चित विषय रहे हैं। इन सन्दर्भ मे कवि की उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि उन्होने शास्त्र ज्ञान के अतिरिक्त लोक ज्ञान को भी अपना प्रमुख आधार वनाया है।

'उस्मान' कृत 'चित्रावली' का सूफी-प्रेमाख्यान-परम्परा मे विशिष्ट स्थान है। 'उस्मान' ने अपने काव्यग्रथ मे अपने पूर्ववर्ती कवियो का अनुसरण करते हुए प्रत्येक क्षेत्र मे कुछ मौलिक उद्भावनाएँ की है।

उस्मान की मौलिक उद्भावनाएं— 'उस्मान' कृत 'चित्रावली' का सूफी-प्रेमाख्यान-परम्परा मे विशिष्ट स्थान है। 'उस्मान' ने अपने काव्यग्रन्थ मे अपने

---

1. उस्मान कृत चित्रावली (स० जगन्मोहन वर्मा), 390/8-9
2. वही, 418-426
3. वही, 423

पूर्ववर्ती कवियों का अनुसरण करते हुए प्रत्येक क्षेत्र में कुछ मौलिक उद्भावनाएं की हैं।

1. 'उस्मान' द्वारा वर्णित प्रेमकथा नितान्त मौलिक एव कल्पना प्रसूत है, जवकि अन्य सूफ़ी कवियो की कथाएँ ऐतिहासिक या पौराणिक आधार पर लिखी गई है।

2. कथा-पात्रो के नाम प्रतीकात्मक एव सकेतात्मक है। इन नामों में कवि ने मानव की विभिन्न मनोवृत्तियो को आधार वनाया है।

3. वर्णनात्मक-शैली मे लिखी गई इस कथा मे कथा प्रसग के साथ ही अन्य अनेक विषयों का प्रतिपादन हुआ है।

4. कथा का अन्त 'सुखान्त' मे किया गया है, जवकि सूफी कवि अपनी कथा का अन्त दुखान्त मे करते हैं। उस्मान का दृष्टिकोण यह है कि जो प्रेम-साधना कर लेता है वह मरता नही। अत. सूफी प्रेम साधक नायक और नायिका को अन्त में सुख और आनन्द की प्राप्ति होनी चाहिए।

5. एक सामान्य कथा मे असामान्य का कथन कवि की विलक्षण विशेषता है। इस सामान्य कथा में सूफी प्रेम साधना एव 'दर्शन' की प्रच्छन्न रूप से अभिव्यक्ति हुई है।

6. कथा का प्रयोजन कवि ने अपने नाम की अमरता तथा वहुजन हिताय चित्रित किया है। कवि के मतानुसार अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार पाठकों को इसमे अपने फल की प्राप्ति होगी।

7. नखशिख वर्णन मे साहित्यिक-परम्पराओ के साथ ही कवि ने आध्यात्मिकता का भाव आरोपित करते हुए अपने कथन को सामान्य से असामान्य वना दिया है। 'चित्रावली' की नखशिख योजना इस अर्थ मे किसी अज्ञात रूप को सीमा-वद्ध करने का सफल प्रयास है।

8. 'सुजान' एव 'चित्रावली' के प्रेम प्रसगो में कवि ने सूफी प्रेम-साधना का समावेश करते हुए, इस प्रसग मे सूफ़ी साधन एव दर्शन को अभिव्यक्त किया है। नायक एव नायिका की विरह-साधना भी सूफ़ी साधना का ही एक विशिष्ट अंग है।

9. सूफी काव्यों की समस्त नायिकाए 'पद्मिनी' रूप मे चित्रित की गई हैं। इस क्षेत्र मे उस्मान ही एकमात्र ऐसे कवि है, जिन्होने अपने काव्य में पद्मिनी का तिरस्कार कर चित्रिनी नायिका को स्थान दिया है।

10. सूफी काव्यों के वारहमासा पत्नी नायिकाओ के पक्ष मे प्रस्तुत किए गये है। इस क्षेत्र मे केवल 'उस्मान' ही ऐसे कवि है जिन्होने अपना वारहमासा

प्रेयसी नायिका के पक्ष मे प्रस्तुत किया है। षड्ऋतु एवं बारहमासा पद्धति का वर्णन कर कवि ने लोक परम्परा एवं उसमे आध्यात्मिक भावों का कुशलता से निरूपण किया है।

11. कवि द्वारा वर्णित आवास-वर्णन मे भी अलौकिकता का भाव अरोपित किया गया है। 'रूपनगर' इस सम्बन्ध मे सूफी साधना-पद्धति का वह रम्य स्थल चित्रित किया गया है, जहा पहुचकर साधक को असीम आनन्द की प्राप्ति होती है।

संक्षेप मे सूफी कवि 'उस्मान' ने सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्य-परम्परा मे अपना स्वर मिलाते हुए नवीन उद्‌भावनाए कर अपनी विलक्षण काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है। प्रतिभा सम्पन्न सूफी कवि 'उस्मान' इस दृष्टि से सूफी प्रेमाख्यान परम्परा के एक विशिष्ट कवि कहे जा सकते है? 'चित्रावली' भी प्रेमाख्यान परम्परा की एक विलक्षण रचना है। इस रचना मे भारतीय साहित्य एव परम्पराओ का माध्यम लेकर कवि ने फारसी साहित्य और सूफ़ी साधना की अभिव्यक्ति की है। भारतीय विधाओ मे सूफीमत, साधना एवं सिद्धान्तों के निरूपण से इस काव्य का साहित्यिक एवं सास्कृतिक मूल्य भी बढ़ गया है। 'चित्रावली' सूफ़ी प्रेमाख्यान काव्य-परम्परा की एक विशिष्ट रचना कही जा सकती है।

चित्रावली

(१) स्तुति खंड

मंगलाचरण और ईश्वरस्तुति

आदि बखानों सोई चितेरा, यह जग चित्र कीन्ह जेहि केरा।
कीन्हेसि चित्र पुरुष औ नारी, को जल पर अस सकै संवारी॥
कीन्हेसि जोति सूर ससि तारा, को अस जोति सकै जग पारा।
कीन्हेसि बचन बेद जेहि सीखा, को अस चित्र पवन पर लीखा॥
अस विचित्र लिखि जानै सोई, वहि विनु मेट सकै नहि कोई।
कीन्हेसि रंग स्याम औ सेता, राता पीत और जग जेता॥
कीन्हेसि रूप बरन जहं ताईं, आपु अवरन अरूप गुसाईं॥
अगिनि पवन रज पानि के, भांति भांति व्योहार॥
आपु रहा सब मांहि मिलि, को निगरावै पार॥1॥

शब्दार्थ—आदि=सर्वप्रथम। बखानो=वर्णन करना। चितेरा=चित्रकार। कीन्हेसि=बनाया है। संवारी=सम्भालना। ससि=चन्द्रमा को=कौन। अस=ऐसी। जोति=ज्योति। पारा=पार पाना! वहि=उसके। विनु=बिना। मेट=मिटा। सेता=श्वेत। बरन=वर्ण। व्योहार=व्यवहार। निगरावै=बिलगावे, अलग करे!

व्याख्या—उस्मान कवि कहता है कि सबने पहले मैं उस चितेरे (चित्रकार रूप परमात्मा) का वर्णन करता हूं जिसने इस संसाररूपी चित्र का निर्माण कि[illegible] है। इस चित्र में उसने नारी और पुरुष बनाये है। इस संसार ऐसा कौन है जो उसके सिवा या जल पर चित्र (ज्वार भाटे के कारण उत्पन्न चित्र) को संवार सके या बना सके। उसने ज्योति से सूर्य, चन्द्रमा और तारे बनाये है। उसके अतिरिक्त ऐसी कौन-सी ज्योति (परमात्मा) है जो संसार से पार ले जा सके (अर्थात जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा दिला सके।) उसने अपने वचनों से वेद की रचना [illegible] है। उन्ही

वेदों को पढकर सब ज्ञान की बात सीखते हैं। उसने पवन पर चित्र लिखा है अर्थात् मनुष्य को वानी दी जिसकी विभिन्न ध्वनि तरंगें हवायें भी बिम्बों का निर्माण करती हैं। इस विचित्र लिखावट को लिखने वाला ही जान सकता है अर्थात् उन शब्द रूप का बिम्बा को लिखने वाला ही जान सकता है। और उसके बिना या उसके चाहे बिना कोई उसे नही मिटा सकता! उसने श्वेत श्याम (काला) लाल और पीले रंगो का संसार मे निर्माण किया है। उसने ही विभिन्न रूप तथा वर्ण का निर्माण किया है, जबकि वह परमात्मा स्वयं मे अवर्ण और अरूप (निराकार) है। उसने अग्नि, हवा, मिट्टी, पानी आदि तरह-तरह के व्यवहार मे आने वाले तत्वों का निर्माण किया है। अपने आप वह इन सब में इस प्रकार मिल गया है कि अब उसे अलग करके कोई उसे नहीं देख सकता!

विशेष—(1) इस पद मे परमतत्व सम्बन्धी विचारों को व्यक्त कर कवि ने उसके सर्वव्यापी रूप का वर्णन किया है।

(2) कवि ने परमात्मा को चित्रकार मानते हुए सारी सृष्टि को उसके द्वारा निर्मित चित्र माना है।

(3) इसमें ज्वार-भाटे के कारण बने जल पर चित्र तथा ध्वनि तरंगों में प्रवाहित बिम्बों की ओर कवि ने संकेत कर अपने व्यावहारिक ज्ञान का परिचय दिया है।

(4) आयु, अवरन अरूप गुसाई कहकर कवि ने परमात्मा के निराकार रूप के प्रति भी आस्था व्यक्ति की है।

(5) इसमे अनुप्रास, रूपक तथा उल्लेख अलंकार हैं।

सो करता सब मांहं समाना, परगट गुपुत जाइ नहि जाना।
गुपुत कहऊं तो गुपुत न होई, परगट कहऊं न परगट सोई।।
दूर कहऊं तो दूर न लेखा, नियरे कहऊं तो जाइ न देखा।
सब बहि भीतर वह सब माहीं, सबै आपु दूसर कोउ नाहीं।।
जो सब आपु रहा जग पूरी, तासों कहा नेर औ दूरी।
दूसर जगत नामु जिन पावा, जैसे लहरी उदधि कहावा।।
ज्ञान नैन जो देखै कोई, बारिध बिना आन नहि होई।
जहवां सिंधु अपार अति, बिन तट बिनु परिमान।
सकल सृष्टि तेहिमां गुपुत, बालू कनक समान ।।2।।

शब्दार्थ—करता=कर्त्ता। मांह= में। प्ररगट=प्रगट। गुपुत=गुप्त नियरे=पास। वहि=वहीं। नेर=पास। लहरी=लहर। उदधि=समुद्र। वारिध=समुद्र। आन=दूसरा। परिमान=परिमाण। सकल=सारी। तेहि मां=उसी में। कनक=स्वर्ण, सोना।

व्याख्या—वह परमतत्व ही कर्त्ता है तथा सबमे समान रूप से रहता है। वह प्रगट (सगुण) भी रहता है और गुप्त (निराकार) भी, किन्तु उसको कोई जान नही पाता। यदि यह कहो कि वह दूर है तो दूर दिखाई नही पड़ता है (अर्थात् सर्वव्यापी होने के कारण पास रहता है।) यदि यह कहा जाये कि वह पास रहता है तो वह दिखाई नहीं पड़ता! सब उसके भीतर रहते हैं और वह सबमें रहता है। वह सब कुछ अपने आप ही है और उसके अतिरिक्त दूसरा कोई नही है। जो स्वयं ही सब कुछ है तथा सारे संसार में छाया हुआ है। उससे भला क्या पास आने क्या दूरी। उससे पृथक होने पर उसका दूसरा नाम जगत हो जाता है जैसे समुद्र से पृथक होने पर समुद्र की लहर कहलाती है। यदि कोई अपने ज्ञान रूपी नेत्रों का प्रयोग करें तो वह देख सकता है कि समुद्र के सिवाय वे और कुछ भी नहीं है। अर्थात् समुद्र और समुद्र की लहर मे समानता को वह आसानी से पहचान सकता है समुद्र और।

अति अपार सागर का न कोई तट है न उसका (पानी का) कोई परिमाण है, उसमें सारी सृष्टि गुप्त रूप से तथा बालू और स्वर्ण समान रूप से समाई हुई है (उसी प्रकार परमात्मा मे सारी सृष्टि तथा सारी सृष्टि में परमात्मा समान रूप से समाया हुआ है।

विशेष—(1) सबै आप दूसर···में एकमेवा द्वितीय ब्रह्म। तथा सर्व खलिवदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन। का भाव है।

(2) इसमे परब्रह्म के सगुण-निर्गुण तथा सर्वव्यापी रूप का वर्णन है।

(3) इसमें अनुप्रास, अनन्वय तथा काव्यलिंग अलंकार है!

करता जिन जग रूप संवारा, तेहिक रूप को बरनइ पारा?।
आपु अमूरति मुरति उपाई, मूरति मांती तहां समाईं॥
मन के चरन पंगु जेहि ठाई, बपूरी जीभ चलइ कहं ताई।
मन की डीठ नैन जहं मूंदै, सो मगु जीभ चरन क्यो खूंदै॥

परगट गुपुत विधाता सोई, दूसर और जगत नहि कोई।
है सब ठावं नाहि कोउ ठाईं, मुनिगन लखहि कि अलख गुसाईं ॥
सृष्टि अनेक लखे नहि पाई, सिरजनहार लखा केहि जाई ॥
अलख अमूरत सोई विधि, लखै न मूरति कोय।
सो सब कीन्ह जो चाहा, कीन्ह चहै सो होय ॥

शब्दार्थ—करता=कर्त्ता। तेहिक=उसके। बरनइ=वर्णन। अमूरति=अमूर्त्त। मुरति=मूर्त्त। उपाई=उपजाई उत्पन्न किया। आती=मंत्त। पगु=लगडा। डीठ=दृष्टि। वपुरी=वेचारी। मगु=रास्ता। खूंदै=कूदै-फांदे। ठाउ=स्थान। लखहि=देखना। सिरजनहार=सृजन-हार। अलख=दिखाई न पडना, निराधार।

व्याख्या—वह परमात्मा ही कर्त्ता है जिसने इस ससार के रूप को सजाया है। उसके रूप का वर्णन करते-करते कोई पार नही पा सकता। वह स्वय अमूर्त्त होते हुए भी मूर्त्त रूप की रचना करता है, तथा मूर्त्त रूप में मत्त होकर समा गया है। मन के पैर उस स्थान तक पहुचते—पहुचते पंगु हो जाते है अर्थात् मन अपनी कल्पना के द्वारा वहा तक नही पहुंच सकता और बेचारी जीभ कहा तक चले अर्थात् उसका वर्णन करे। मन की दृष्टि नेत्रो के वद हो जाने से नही देख पाती अर्थात् कल्पना शक्ति के थक जाने पर मन न और अधिक सोच पाता है न देख पाता है ऐसी स्थिति में उस रास्ते पर जीभ रूपी चरण कैसे कूद फांद सकते है। कहने का भाव यह कि मानसिक कल्पना के शान्त हो जाने उसके वारे मे जीभ कैसे बतिया सकती। वह परमात्मा प्रगट (सगुण) और गुप्त निगुर्ण दोनो रूपो मे रहता है। ससार में उसके अतिरिक्त दूसरा और कोई नही है। वह परमात्मा सव स्थानो पर है लेकिन उसका कोई एक विशेष स्थान नही है। मुनिगण उस निराकार परमात्मा को देख पाते है (या देखने का दावा करते हैं।) उसे अनेक ससारो या सृष्टि के मध्य भी कोई देख नही पाया, भला कोई सृजनहार (निर्माण कर्त्ता या रचनाकार) को भी देख सकता है। वह परमात्मा अलख अमूर्त्त (निराकार) है और उसकी मूर्त्ति को कोई नही देख सकता। उसने जो चाहा सो किया और जो करना चाहता है सोई होता है।

विशेष—1. इसमे परमात्मा क अकथनीय स्वरूप का वर्णन किया गया है।

2. इसमें अनुप्रास, विरोधाभास, तथा काव्यलिंग अलंकार है।

कीन्हेसि जो अति गिरवर गरुवा, चहई तो करै तृण ते हरुवा।
औ पुनि त्रिनहि वज्र करि धरई, मुनिवर लागहि तौ नहि टरई॥
कीन्हेसि वारिध अगम अपारा, चहई तो करै जैस लघु तारा।
औ तारहि को समुद बनावै, मेरु बबूला जैस तरावै॥
कीन्हेसि अगिन बीच अति ज्वाला, चहै तो करै हिमंचल पाला।
औ पानी महं अगिन संचारै, पाहन मेलि जैसे तृन जारै॥
भंजइ गढ़ई विधाता सोई, दूसर और जगत नहिं कोई।
सोई करता रमि रहा, रोम रोम सब माहिं।
तिन सब कीन्ह सिरिष्ट, यह गाहक कीन्हों नाहिं॥

शब्दार्थ—गिरिवर=पहाड़। गरुवा=भारी। हरुवा=हल्का। वारिधि =समुद्र। वज्र=फौलादी लोहा। अगम=अगम्य, पार करना कठिन। अपारा=जिसका पार-पार न हो। लघु=छोटा! बबूला=पानी का बुलबुला। हिमंचल=हिम का अंचल। पाहन=पत्थर। मेलि=मिटाकर। तृन=तिनका। भंजई=तोड़ दे। गढ़ई=निर्माण करे। सिरिष्ट=सृष्ठि। गाहक=अवगाहक=जानने वाला।

व्याख्या – उस परमात्मा ने बड़े-बड़े भारी पहाड़ बनाये। वह चाहे तो उनको तिनके के समान हल्का भी कर सकता है और उन तिनकों को वज्र के समान कठोर और भारी बना दे। उनको श्रेष्ठ मुनिगण चाहकर भी नहीं हटा सकते। उसने अगम्य और अपार समुद्र की रचना की है किन्तु वह चाहे तो उसे तारे से भी छोटा बना है। और उस तारे को पुन: समुद्र बना दे और पहाड़ को पानी का बुलबुले के समान तैरा दे। उसने अग्नि के मध्य बड़ी भारी ज्वाला बनाई है। चाहे तो वह उसे बर्फ के अंचल और पाले के समान ठंडा कर दे। पानी में अग्नि का संचार कर दे और पत्थरों को मिटाकर तिनके समान जला दे। वह परमात्मा निर्माण और ध्वंस करने वाला है। इस संसार में इसके सिवाय और कोई दूसरा नही है। वह परमात्मा सर्वत्र रोम रोम में रमा हुआ है। उसने इस सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की है और इसे (अद्‌भुत रचना और रचनाकर के) जानने वाला कोई नही बनाया।

विशेष—(1) इसमें परमात्मा के ध्वंस और निर्माण शक्ति का परि-

चय दिया गया है।

(2) इसमे अनुप्रास तथा उल्लेख अलकार है।

सो करता जेहि काहु न कीन्हा, सब कहं जिवन जन्म जेइ दीन्हा।
दीन्हेसि काया जेहि जग पोखा, दीन्हेसि माया जेहि न संतोखा॥
दीन्हेसि अन्न जिये जेहि खाई, दीन्हेसि ज्ञान रहइ लौ लाई।
दीन्हेसि हिया गुनं जो गुनना, दीन्हेसि स्रवन सुनं जो सुनना॥
जहवां लागि जीव जग माही, भुगति देत कोउ बिसरत नाही।
पहिले भुगत दई जो चाहा, पीछे जीव आनि घट मांहा॥
पहिले ओषध मूरि बनाए, ता पीछे सब रोग उपाए।
मान रहै जग जानि कै, आस होइ भय त्यागि।
बिछुरन रोग दिहेसि सबन्ह, काहू दरसन लागि॥5॥

शब्दार्थ—काहु=किसी। काया=शरीर। जिवन=जीवन। पोषा=पोषण। लौ=ध्यान। हिया=हृदय। सरबन=श्रवण। जहवा=जहां तक। विसरत=भुलाना। भुगति=भोजन। घट=शरीर। मांहा=में। मूरि-मूल। मान=प्रमाण।

व्याख्या—परम तत्व की महिमा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि उस कर्त्ता ने वह काम किए जो दूसरा कोई नही कर सकता। सबको जीवन दिया जन्म दिलवाया। उसने शरीर दिए और सारे संसार का पोपण किया। उसने माया दी किन्तु किसी को भी सतोष नही दिया। उसने अन्न दिया, जिसे खाकर लोग जीते हैं। उसने ज्ञान दिया जिसे पाकर मनुष्य परमात्मा के प्रेमी की लौ लगा सकता है। उसने हृदय दिया, जो चाहे वह उस परमात्मा के गुण को गुन सकता है। या स्मरण करता रह सकता है। उसने सुनने के लिए कान दिए है जो सुनना चाहे वह सुने। जब उसने जीव को ससार मे भेज दिया फिर उसको भोजन दिया। वह किसी भुलाता नही है। उसने पहले सुख-समृद्धि भोगने वाले पदार्थो का निर्माण किया, फिर पीछे शरीर मे जीवन डाला। पहले उसके औषध तथा अन्य जड़-मूलों की रचना की, उसके वाद विभिन्न रोग बनाये। ससार को भली-भांति जानने के वाद का प्रमाण है कि आस रखो और भय को त्याग दो। उसने सब रोगो से छुटकारा पाने के लिए बहुत कुछ दिया है और किसी-किसी को

केवल दर्शन दिए हैं।

> ए गुसाईं तै अस विधि अहई, अस्तुति तोर तोहिं पहं कहई।
> अस्तुति बारिधि अगम अपारा, कोउ न जगत मंह पौरनहारा।
> साधुन बुद्धि तीर लगि जाई, कांपह जांघ देखि गहिराई।
> जब ते बीधि यह सृष्टि उपाई, औ जब ताईं रहहि बनाई॥
> जहं लहि सुर-नर मुनि गन अहहीं, जहं लग लोक रसातल अहहीं।
> जहं लग बनसपती तरु पाता, रोम रोम सब जीव क दाता॥
> रसना होइ होइ अस्तुति सार्रहि, सीवक एक कहं नहि पार्रहि।
> जेहि ते बड़पन नहि गुनै, तऊ बड़ापन तोहि।
> जेहि ते लघु नहि और कछु, सो लघु छावैं मोहि॥

शब्दार्थ—गुसांई=परमात्मा। अस्तुति=स्तुति। तोर=तेरी। बारिधि =समुद्र। पौरनहारा=तैरने वाला। तीर=किनारा। गहिराई=गहराई। रसना=जिह्वा, वाणी। बनसपती=वनस्पति, वृक्ष लता गुल्मादि उद्भिज सीवक=सीक। छावैं=छायी हुई)

व्याख्या—हे परमात्मा हम इस प्रकार के है कि तेरी स्तुति भी तुझसे ही करते हैं अर्थात् तेरे सामने तेरी स्तुति गाते हैं। तेरी स्तुति समुद्र के समान अगम्य और अपार है। कोई भी संसार में ऐसा नहीं है जो स्तुति रूपी सागर को तैर कर पार कर सके। साधु लोगों की बुद्धि स्तुति करने की बात सोचकर ही किनारे लग जाती है और स्तुति रूपी सागर की गहराई को देखकर उनकी जाघे कांपने लगती है। जब से परमात्मा ने इस सृष्टि की रचना की है और जब तक वह इसका निर्माण कार्य करता रहेगा। जहां तक देवता, मनुष्य, मुनि=गण हैं और जहां तक पृथ्वी लोक और पाताल लोक हैं और जहां तक वनस्पति, पेड़ एवं पत्ते हैं (वहां तक) उनके रोम-रोम के जीवों का दाता या जीवन दाता वह ईश्वर है। वाणी उस परमात्मा की जितनी भी स्तुति करती है वह सब सार रूप में रहती है। वह उसकी स्तुति एक तिनके के बराबर भी तो नही गा पाती। जहां तक तेरा बड़प्पन है उसको यदि कोई नही पूरी तरह नही गुनता, तब भी यह तेरा बड़प्पन ही है। जहां तक लघुता या छोटे पन की बात है वह और कुछ नहीं है क्योंकि उसी लघुता ने तो मुझे (कवि को) ढक रखा है।

विशेष—1. परमात्मा के गुणों की व्यापकता पर प्रकाश डालकर स्पष्ट करना चाहता है, उसके सब गुणो को कोई भी अपनी स्तुति में नही गा सकता क्योंकि वे गुण संख्या मे इतने अधिक है। वह केवल उनका अनुभव कर सकता है।

2 इसमें अनुप्रास तथा प्रतीप अलकार हैं।

मोरे मुख कछु कही न जाई, देखहु रसना करी हंसाई।
रंचक जीभ रही मुख परी, विधि अस्तुति कारन इकसरी॥
अस्तुतिमान पाउ अस कूदी, बुद्धि आई पहिले मुख मूंदी।
एहि मुख और कंज तर कहां, देवतन्ह जिनहि लाइ हंसि कहा॥
रूप अवरन को बरनै पारा, रहै मौन होइ इहै विचारा।
इहवां बोलि सकइ नहि कोई, विनती करउ होइ सो होइ॥
विनती से जो होइ मयारा, वेगि करै वह सागर पारा।
गन-गंधख-मुनि-देव-नर, महि पाताल आकास।
वहिक आस सब जग करै, वह न काहु के आस॥

शब्दार्थ— रसना=जीभ,वाणी। रचक=छोटी सी, रंचमात्र। अस्तुतिमान=प्रमाण युक्त स्तुति। मुदी=बंद करना। कज=अवरन=अवर्णनीय। मयारा=प्रेम करने वाला। वेगि=शीघ्र। गधरव=गर्धव। आकास=आकाश। वहिक=उसकी।

व्याख्या—कवि परम तत्त्व की महिमा का वर्णन करने में अपनी असमर्थता का वर्णन करते कहता है—मैं अपने मुख से उसके बारे मे कुछ भी नहीं कह सकता क्योंकि जो कुछ देखता हू (उसे ही कहना चाहूगा) रसना या वाणी उसका वर्णन नही कर सकती इसलिए हसी उडाती है। मुख में पड़ी हुई जीभ की स्थिति रच मात्र है या छोटी-सी है। परमात्मा की स्तुति उसे एक-सी करनी है - स्तुति प्रमाण युक्त हो सके या प्रमाणिक स्तुति हो इसके लिए बुद्धि पहले आकर कूद गई और उसने मुख को बंद कर दिया। देवताओ ने जान बुझकर हसकर कहा—कहा यह मुख और कहा वह कमल के फूल के नीचे रहने वाला अर्थात् परम विष्णु। उस परम तत्व का रूप अवर्णनीय है उसके रूप का वर्णन करते-करते कौन पार पा सकता है यह विचार कर स्वयं ही मौन हो गया। यहां पर (इस स्थिति में) कोई बोल

तो सकता नही इसलिए मैं उस परमात्मा की वार-वार विनती ही करता रहता हू । उस परम तत्त्व की विनती गाते-गाते यदि कोई उससे प्रेम करने लगे तो वह परमात्मा उसको शीघ्र ही भवसागर पार करवा देता है । इस संसार में गधर्व, मुनि, देवता, मनुष्य पृथ्वी, पाताल और आकाश में हैं । ये सब उस परमात्मा की आशा करते हैं अर्थात् ये उसे पाना चाहते हैं, पर वह स्वयं किसी की आशा नही करता ।

कहिन की जिन आपहि पहिचाना, तिन कछु मरम तोर है जाना ।
जो सब भो रम-रम जग माहीं, मोहि न मोह देखावसि काहीं ॥
जो मोहि सो विन मोह छिपाई, केहि कारण किन्ह मोर उपाई ।
दियो नैन पै दियो न जोती, वाज पानि केहि कारन मोती ॥
इनकी जोति जोत जेहि होई, तेहिक भरोस करै सब कोई ।
कवहू सूर करै उजियारा, कबहुं दीप कवहुं मसियांरा ।
विधिना दियो सो लोचन मोहीं, अच्छे पहिचान्यो नहि तोहीं ॥
कहें कहो न सको मैं, निकट रहहुं नित तोहि ।
केहि अभागे केहि अघरम, नहि दरसावसि मोहि ॥8॥

शब्दार्थ—मरम=मर्म, रहस्य । रम=रमकर । मोह=ममता, मोह, जनित दुःख । मोहि=मुझ मे । केहि=किस । उपाई=उपाय । जोति= ज्योति । वाज=विना । पानि=चमक । मसियारा=मशाल । विधिना= ईश्वर । लोचन=नेत्र ।

व्याख्या—कवि कहता कि जिसने आपने आपको पहचान लिया है उन्होंने तुम्हारे कुछ मर्म को समझ लिया है । वह ईश्वर संसार के सभी मे व्याप्त है अथात् सर्वव्यापी हैं, किन्तु मुझको (कवि को) ममता के कारण दिखाई नही देता । वह (ईश्वर) मुझमें विना ममता के किस कारण छिपा हुआ है और मैं (कवि) कौन से उपाय करूं अर्थात् उसे देखने के लिए किन उपायों को काम मे लाऊं । उसने नेत्र दिए पर परमात्मा देखने की ज्योति नहीं दी । ऐसे ही विना चमक के मोती किस कारण वनाया । इनकी ज्योति तभी ज्योति होगी अर्थात् जब ईश्वर के स्वरूप को देख सकेंगे तभी इनकी ज्योति (की सार्थकता) का विश्वास करेंगे । यह ज्योति कभी सूर्य वनकर, कभी दीप वनकर और कभी मशाल वनकर उजियारा फैलाती है । हे ईश्वर तुमने

मुझको नेत्र दिए, यह खूब रहा कि मैं तुमको नही पहचान सका। मैं (कवि) नित्य तेरे (ईश्वर) निकट रहता हुआ भी कुछ नही कह सका। यह मेरा अभागापन है मेरा अधर्म है कि मैं तुमको नही देख सका।

कब लगि नर ज्यों आपु छिपावसि, इह जग पुतरी काठ नचावसि।
जग भूला यहि काठ के नांचा, जनि न जाय झूठ अरु सांचा॥
सांचा छिपा झूंठ के पाछे, झूठहिं सांच करहिं का काछे।
सांचा बहुरि तोर कल दोरा, पट उघरि नट जगत निहोरा॥
मुख दरसाव परम उजियारा, जाहिं बिलाइ तिमिर औ तारा।
एक जोत परगट सब ठाऊं, रहइ न कतहूं दूसर नाऊं॥
तू सब जानइ बड़ औ छोटा, कौन खरा कंचन को खोटा।
पट उघारू संसार जिय, संसय रहा समाय।
जब लगि सूझ है लोचनहिं, अंधा नहिं पतियाय॥9॥

शब्दार्थ—नर=मनुष्य। पुतरी=पुतली। नाचा=नाचकर। काछे=निकट। दोरा=दौडा। पर=वस्त्र। निहोरा=मानना, उपकार। विलाई=विलीन होना। तिमिर=अंधकार। कतहूं=किसी जगह। नाऊं=नाम। लोचनहिं=नेत्र। पतियाय=विश्वास करना।

व्याख्या—कवि कहता है, हे ईश्वर! तुम अपने आपको कब तक मनुष्य से इस प्रकार छिपाते रहोगे और इस ससार को काठ की पुतली की भाति नचाते रहोगे। यह ससार काठ की पुतली के समान नाचकर सब कुछ भूल जाता है। और उसे यही नही पता चलता कि झूठ क्या है और सच क्या है। सत्य झूठ के पीछे छिपा हुआ है अर्थात् वह सत्य रूपी ईश्वर झूठ रूपी माया के पीछे छिपा हुआ है। इस संसार में झूठ रूपी माया व्याप्त है निकट होने के कारण वही सत्य लगती है। तेरी इसे माया को सत्य मानकर मैं कल तक दौड़ता रहा। (जब मुझमे सत्य और झूठ समझने की शक्ति आ गई तो) मैंने माया रूपी आवरण को हटाकर देखा तो पाया कि यह ससार नट की भाति विभिन्न क्रियाए करता है। इस शक्ति को देने के कारण मैं (कवि) तेरा उपकार मानता हू क्योकि इस अवस्था में मुझे तेरे मुख पर व्याप्त परम ज्योति के दर्शन हुए हैं। इस ज्योति मे न अंधकार विलीन होता है, न तारे। वह परम ज्योति सब स्थानों मे प्रकट रूप मे

दिखाई पड़ती है और किसी स्थान पर उसका दूसरा नाम नही है। हे ईश्वर ! तू सब जानता है कि कौन बड़ा है कि कौन छोटा है, कौन शुद्ध स्वर्ण है और कौन खोटा। या अशुद्ध। जब तक ससार के मन पर पड़ा हुआ माया रूपी आवरण नही हटाया जाता, तब तक मन मे संसय ही बना रहता है। जब तक मानव को अपने आन्तरिक नेत्रों से दिखलाई नहीं पडने लगता। तब तक उसे अंधे पन का विश्वास करना पड़ता है, अर्थात् अंधा जब अपने अन्र्तनेत्रों से देखने लगता है, तभी उसमें सब कुछ देखने का विश्वास जागता है।

महमद की प्रशंसा

पुरुष एक जिन्ह जग अवतारा, सबन्ह सरीर सार संसारा।
आपन अंस कीन्ह दुइ ठाऊं, एक क धरा मुहंमद नाऊं॥
पहिले उठा प्रेम विधि हिये, उपजी जोति प्रेम की दिये।
वही जोति पुनि किरिन पसारी, किरिन-किरिन सब सृष्टि संवारी।
जोतिक नाऊं मुहंमद राखा, सुनत सरोज कहा अमलाखा।
वह सूरज यह किरन संवाई, वह दधि यह सब लहर उपाई॥
जो न करत वह ओक रचाऊ, होत न जग महं एक उपाऊ।
लहर बिना दधि सोह नहिं, किरन बिना दुति सूर।
साजा कारन एक जग, जासों प्रेम अंकुर॥10॥

शब्दार्थ—जिन्ह=जिसने। सार=तत्व। अंस=अंश। दुइ=दो। हिये=हृदय। सरोष=क्रोध के साथ। अमलाखा=फरिश्ते। सवाई=संवारा हुआ। दीर्घ=उदधि, समुद्र। ओक=घर। उपाऊ=उत्पन्न होना। सोह=शोभा। दुति=प्रकाश, द्युति।

व्याख्या—कवि कहता है कि वह (आदि) पुरुष एक हैं उसने सासार को अवतारा है अर्थात् सृष्टि की रचना की है। इस सृष्टि के सार तत्व (मिट्टी, जल, वायु, और अग्नि) से सबके शरीर बनाये है। उसने अपने अंश को दो स्थानो पर प्रगट किया एक का नाम उसने मुहम्मद रखा। सृष्टिकर्त्ता के हृदय मे पहले प्रेम का भाव उत्पन्न हुआ। उसने प्रेम के दीपक में एक ज्योति को उत्पन्न किया। उसी ज्योति की फिर किरणें फैली। सम्पूर्ण सृष्टि को

उसने (उस ज्योति की) प्रत्येक किरण से संवार दिया। उस ज्योति का नाम उसने (सृष्टिकर्ता ने) मुहम्मद रखा। यह सुनते ही फरिश्तों ने क्रोध में भरकर कहा—वह (सृष्टिकर्ता) सूर्य है तो यह उसकी संवारी हुई किरण। वह (सृष्टिकर्ता) समुद्र है तो यह उसमे से उत्पन्न लहर। यदि वह घर की रचना नही करता तो संसार में (जड़ चेतन में से) एक भी उत्पन्न नहीं होता। जैसे लहर के विना समुद्र शोभा नही पाता, किरण के विना सूर्य का प्रकाश नही फैलता या सूर्य सुशोभित नहीं होता, उसी प्रकार ससार को सजाने के लिए उसने प्रेम (की ज्योति) को अंकुरित किया है।

विशेष—(1) मुहम्मद साहब सूफियों के लिए ईश्वर के पैगम्बर हैं। हैं। इसमे कवि का इस्लाम धर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण स्पष्ट है।

(2) मुसलमानों की हदीस में लिखा है 'अगर तू नबूदी मुहम्मद जमा, तो पैदा न करदम जमी आस्मा अर्थात् यदि मुहम्मद न होते तो ईश्वर प्रकाश और पृथ्वी न रचता।

(3) उसने प्रेम रूपी दिये की ज्योति के लिए अंकुरित बीज को उपमा दी है, जिससे बिम्ब योजना सुन्दर हो गई है।

(4) इसमें अनुप्रास, कारण माला तथा उल्लेख अलकार है।

गुपुत उपाया परगट आना, किया जगत वह एक पराना।
जो परान संसारक माहीं, कस न भई तेहि संग परछायीं ॥
सग्या करज चांद मनियारा, भा बिखण्ड जाने ससारा।
जो कपटी भोजन विष विसा, बोल उठा कर मांह गिरासा ॥
एते पर जो चीन्हेसि नाही, जन्म अंबिरथा गा जग माहीं।
जो भर जनम करे विधि जापा, बिनु वोहि नाम होहि सब लापा 37 ॥
एक बार जो मन विच कहई, नाम महंमद विधि निधि लहई।
करनी खोटी मोर सब, का कहि बिनवों नोहि।
अपनी उम्मति जान कै, लै निरवाहब मोहि ॥

शब्दार्थ—गुपुत=गुप्त। उपाया=उत्पन्न किया। परान=प्राण। सग्या=सज्ञा। करज=उगुली, नाखून। मनियारा=जौहरी। विखड=दो खंड, मुहम्मद साहब ने चांद के दो खंड किये। गिरासा=ग्रास। चीन्हेसि =पहचानना। अंबिरथा=मृषा, व्यर्थ। लापा=प्रलाप। बिच=बीच।

विनवों=विनती। उम्मति=अनुयायी।

व्याख्या—कवि कहता है कि उस सृष्टिकर्त्ता ने गुप्त रूप से (इस सृष्टि को) उत्पन्न किया, किन्तु यह प्रगट रूप में दिखाई पड़ती है। उसने संसार को एक ही प्राण या अपनी अंश रूपी एक-सी जीवात्मा से बनाया है। (कवि यहां आश्चर्य प्रकट करता है कि) जब वही अंश रूपी प्राण संसार में है, तो उसकी परछाई क्यों नहीं हुई। (कहा जाता है मुहम्मद साहब के परछायी नहीं थी।) मनियार या जौहरी उस सृष्टि कर्त्ता के नाखून को चांद की संज्ञा देते हैं और मुहम्मद साहब ने उस चांद के दो खंड कर दिये यह बात भी सारा संसार जानता है एक बार छल-कपट से जब उनको भोजन में जहर मिलाकर दिया गया तो उनके हाथ का ग्रास स्वय बोल उटा अर्थात् भोजन मे जहर होने का भेद खोल दिया। इतने पर भी जो मुहम्मद साहब को नहीं पहचानते हैं उनका जन्म इस संसार मे व्यर्थ गया, यही मानना चाहिए। जो जीवन भर नियम पूर्वक जाप करता है, (उसका ही जन्म सफल है), उनके नाम के अतिरिक्त प्रलाप मानना चाहिए, एक बार जो मन में मुहम्मद नाम ले लिया तो भगवत्-ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है हे। मुहम्मद मेरी करनी हो खोटी है, अब में तुझसे क्या विनती करूं। अपना अनुयायी समझ कर मेरा निर्वाह कर लें।

विशेष—(1) मुहम्मद साहब के जीवन की चमत्कारिक घटना पर प्रकाश डाल कर कवि ने उनके प्रति निष्ठा व्यक्त की है तथा उनके माहात्म्य का गायन किया है।

(1) एक बार नाम स्मरण करने पर सब पाप नष्ट हो जाते हैं, इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है।

(3) अनुप्रास तथा विरोधाभास अलंकार हैं।

महंमद के चार मित्रों की प्रशंसा

चार मीत तेहि संग सयाने, सूर समान चहूँ खन्ड जाने।
चारो करहिं एक की चिंता, एक मतें वे चारों मिता॥
पहिले अबुबकर सतबानी, सत्त जान जो भी अनवादी।
दूजे उमर न्याउ प्रतिपारा. जे विध कारन सुतहि संघारा॥
तीजे उसमां पंडित ज्ञानी. जे करि ज्ञान लखा विधि ज्ञानी।

चौथे अली सिंह रन सूरा, दान खड्ग जे तिहु जग पूरा ।।
परम वचन जो महमद पावा, उठा चारिहु कहु आनि सुनावा ।
इनके पंग जो कोई चढ़इ, जनम न भूलै पार ।
निर्मल चारिउ दीप महँ, सात दीप उजियार ।।

शब्दार्थ—मीत=मित्र । सयाने=चतुर । सूर=सूर्य । खंड=देश । मिता=मित्र । सत्त=सत्य । अनवादी=कटु वचन । प्रतियारा=पालन करने वाला । सुतहि=पुत्रों । सघारा=मार दिया । लखा=लिखी - सूरा-=शूरवीर । दीप=द्वीप ।

व्याख्या—मुहम्मद के सग चार चतुर मित्र (चार खलीफा) थे । चारो मित्र सूर्य के समान तेजस्वी थे, यह सारा देश जानता है । चारो मित्र एक ही पंथ की चिता करते थे । ये चारों मित्र एक-से मत और विचारो के थे । इनमें पहले अबूबकर सिद्दीक सत्यवादी थे । वे केवल सत्य को ही जानते थे चाहे वह कितना भी कटु हो । दूसरे खलीफा उमर थे जिन्होंने न्याय का प्रसार किया । न्याय करने मे वे इतने कठोर थे कि उन्होने दोषी पाने पर अपने पुत्र को भी मरवा दिया । तीसरे खलीफा उलमा या उस्मान थे । वे बड़े पडित और ज्ञानी थे । उन्होने जो ज्ञान (आयतें) मुहम्मद साहब से पाया उन्हे कुरान शरीफ मे विधि पूर्वक लिख दिया । चौथे खलीफा का नाम अली था । वे रण करने मे शेर और शूरवीर के समान थे । उन्होंने अपने जीवन मे इतने अधिक युद्ध किये कि अपनी तलवार के दान से अर्थात् शूर-वीरता से सारे ससार को भर दिया । मुहम्मद ने जो परम वचन (कलमा) पाया वह उन चारों खलीफाओं को आकर सुनाया और इन चारों ने उसका प्रचार किया । इनके पथ को जो स्वीकार कर लेता है वह इस जन्म मे ही इस लोक को पार करना नही भूलता । इनके ज्ञान रूपी दीपक की निर्मल ज्योति से चारो दिशाओ तथा सातो खडो मे प्रकाश फैल रहा है ।

विशेष—(1) ईश्वर ने कुरान (धर्म-ग्रथ) भेजा है उसी ग्रथ को लोग पढते है । जो भूले-भटके अन्य धर्म के लोग इसे आकर सुन लेते है वे कुरान के रास्ते पर चल पड़ते हैं ।

(2) इसमे अनुप्रास तथा उपमा अलकार है ।

राजा की प्रशंसा

नुरुद्दीन महीपति भारी, जाकर आन मही महं सारी।
चारिउ खूंट नवाई खांडे, गजपति रहा न कोउ बिनु डांडे॥
सात दीप पठवई सेवकाई, फिरी जलंधर पार दोहाई।
आवहिं अरबी और इराकी, रस मिसिरी कस्तुरी खतां की॥
आवहिं चली पद्मिनी जेते, सहसन मांह एक इक तेते।
राति दिवस औ सांझ सकारा, भरा पेसकस देखिय वारा॥
जहं लगि पुहुमि फिरइ सब कोई, कोहुक लेहु काहु कहु देई।
सात खन्ड बिनवइ सेवकाई, फिरि चलई हर ओर दुहाई॥
सूरज बाज इंद्रगज, सस मृग छाडर इंदु।
भोहं चढ़ावं जेहि धरी, जहाँगीर बलवंदु॥

शब्दार्थ—महीपति=बादशाह। मही=पृथ्वी। आन=दुहाई। मही=पृथ्वी। खांडे=तलवार। गजपति=राजा। डांडे=कर। पढवई=भेजी। मिसिरी=मिश्री। पद्मिनी=पद्मिनी जाति की स्त्री। पेसकस=भेंट। सकारा=सवेरा। काहु=किसी। बिनवइ=विनय करना। इंद्रगज=ऐरावत। सस=चन्द्रमा। धरी उपपत्नी, रखैल। बलवंदु=बलवान।

व्याख्या— कवि तत्कालीन बादशाह जहांगीर की प्रशंसा करते हुए कहता है कि इस पृथ्वी का सबसे बड़ा बादशाह है। उसी की दुहाई सारी पृथ्वी पर फिरती है। चारो दिशाओं के राजाओं ने उसके सामने अपने खड्ग झुका दिये अर्थात् उसकी आधीनता स्वीकार कर ली। इस समय कोई भी ऐसा राजा नहीं है। जो उसे कर न देता हो। सातों द्वीपों मे उसकी सेवकाई चलती है। अर्थात् सातों द्वीप उसके अधीन है। अब तो जलधर के पार उसकी दुहाई चलती है। उसके अरबी और इराक से लोग आते है। तथा अपने साथ मिश्र देश के अनेक रसीले प्रदार्थ, या भस्म आदि, तथा खुरासान प्रदेश की कस्तुरी आदि सुगंधित पदार्थ लाते हैं। इस बादशाह के पास पद्मिनी जाति की स्त्रियां चली आती है ऐसी स्त्री सहस्त्रो में एक आध ही होती है। रात-दिन और सुबह शाम तक बादशाह को भेंट दी जाती है जिनको कमसिने (कम उम्र की सुन्दर दासी) उठा=उठाकर रखती हैं या देखती हैं।

सब कोई जहा तक पृथ्वी पर घूमता है कोई लेता है और कोई कह कर दे देता है (भाव यह कि बादशाह के पास सभी कुछ न कुछ भेजते रहते है। सातो द्वीप वाली पृथ्वी उसकी सेवा करती है क्योकि हर जगह दुहाई फिर रही है जहांगीर इतना अधिक शक्तिशाली है जिसकी ओर भी वह भौह चढा-कर देख लें वही डर जाता है अर्थात् उसका डर सर्वत्र व्याप्त है भय के कारण सूरज के घोड़ो ने सूर्य, इन्द्र को ऐरावत है। तथा चन्द्रमा पर रहने वाले खरगोशो ने उसे छोड दिया है।

विशेष 1. कवि ने अपने ग्रथ मे मसनवी शैली का अनुकरण किया है। ईश्वर और पैगम्बर की स्तुति के बाद तत्कालीन बादशाह जहागीर का वर्णन किया है।

2. पद्मिनी जाति की स्त्री लक्षणो से युक्त सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है।

3. इसमे अनुप्रास, अत्युक्ति तथा अन्यानुशयोक्ति अलकार है।

वैरी रहइ न कोउ पग रोपी, जेहि पग चढ़े तुरंगम कोपी।
चढ़इ तुरंग होइ अनुरागी, कै अहेर कै हेकर लागी॥
जो वर चढ़इ वैरी जग चांपै, सबन डरै पताल कुल कांपै।
जहां-तहां परगट सब देसा, बाजि चरन चीन्हैं अहि सेसा॥
हेट जाइ बलि बासुकि चांपा, ऊपर डरि सुरपति पुनि कांपा।
सब जग जीति खोइ हिय दुदूं, करइ रैन दिन केलि अनंदू॥
सदा रहइ विधिना जगमाहीं, जाग मांथे यह विधि परछाहीं।
कहे न जगपतियाइ कोउ, सुनि अचरज संसार।
होहिं छहो रितु एकठी, जहागीर दरबार॥14॥

शब्दार्थ—तुरगम=घोडा। अहेर=शिकार। हेकर=हेकड़ी लडाई। वर=श्रेष्ठ। चांपै=दबाना। बलि=पाताल लोक का राजा बलि। वासु-कि=शेषनाग। सुरपति=इन्द्र। दुदू=द्वन्द्व संघर्ष। विधिना=शास्त्र सम्मत व्यवस्था। जगपतियाइ=जगपति+याइ=राजा, या (सम्बोधन) जग+पतियाइ=संसार, विश्वास। एकठी=इकट्ठी।

व्याख्या—कवि ने इस छन्द मे जहागीर के क्रोध का वर्णन किया है। कवि कहता है कि बादशाह जहागीर के सामने कोई भी शत्रु अपना पैर रोपकर या जमाकर नही रह सकता। (मानव की बात तो छोडो यदि

वह) क्रोधी घोड़े की ओर भी चढ़ने के लिए पैर बढ़ा दे, तो उसकी सारी हेकड़ी और शिकारी प्रवृति समाप्त हो जाती है और वह उसका अनुरागी हो जाता है। जो कोई अपने आपको श्रेष्ठ कहकर भूमि को दवाना चाहे (तो वादशाह जहांगीर को क्रोध आ जाता है। और उसे वादशाह का कोपभाजन वनना पड़ता है।) इसी से सव वादशाह से डरते हैं यहां तक कि पाताल लोक में रहने वाले लोग भी डर के मारे कांपते हैं। यह तथ्य सव देशों मे प्रगट हो चुकी है और वदाशाह के घोड़े के चरण की आवाज को शेषनाग भी पहचानता है। पाताल लोक का राजा वलि और वासुकि नाग भी वादशाह से उसके क्रोध के कारण दवे हुए हैं तथा ऊपर स्वर्ग लोक का राजा इन्द्र भी वार-वार कांपता रहता है। सारे संसार को जीतकर उसने अपने मन के द्वन्द्व या संघर्ष को समाप्त कर दिया है और अव आनन्द के साथ वह केलि मे निमग्न रहता है। संसार मे वह सदा ईश्वर की भांति रहा उसके माथे पर ईश्वर की परछाहीं जगमगाती रहती है (भाव वह सृष्टिकर्त्ता का वरद् हस्त सदैव उसके सिर पर रहता है।) किसी के कहने से नही संसार स्वयं ही विश्वास करता है या यह जगपति है। इस वात को सुनकर संसार आश्चर्य प्रगट करता हैं कि वादशाह जहांगीर के दरवार मे छहों ऋतु (वसन्त, गर्मी, वर्षा शरद, शीत, शिशिर) एक साथ रहती हैं। (भाव यह है कि प्रकृति भी उसके अधीन है।)

विशेष—(1) यहां पर कवि ने जहांगीर के क्रोध का वर्णन किया है।

(2) कवि ने पशु, प्रकृति तथा मनुष्य सभी पर जहांगीर के क्रोध का वर्णन किया है और साथ ही वह यह वात वतलाना नही भूला कि ये सब उसके अधीन हैं।

(3) इसमे अत्युक्ति अनुप्रास तथा अन्त्यातिशयोक्ति अलंकार है।

गरज शबद गद बरषा बाढ़ा, मांथे चीत धनुष पुनि काढ़ा।
घटा घूघुर मेघ पिक, चहू दिसि होइ झनकार।
सभोगिनी कहू अति रहस, बिरहिन हिये बिकार ॥15॥

शब्दार्थ—बरनि=वर्णन। दुलखइ=झूठा बनाना। सोह=उसका। जस=यश। भानु=सूय। साह=सामने। निहारि=देखना। गजपति=झुन्ड का सरदार हाथी। सुहाई=सुहावना। पावस=वर्षा। रितु=ऋतु। रिसि=रिस कर या क्रोध मे भरकर। अचेता=बेहोश। बीजु=बिजली। बक=श्वेत बगुला। धनुप=इन्द्र धनुष, वर्षा के बाद आकाश में निकलता है। पिक=कोयल। सभोगिनी=कामुक। रहस=आमोद-प्रमोद। बिकार=दु:खी।

व्याख्या—इस छन्द मे कवि ने जहांगीर के यश का वर्णन किया है। कवि कहता है कि अब मैं तुमको बादशाह जहागीर के यश का वर्णन सुनाता हूं इसे सुनकर कोई मुझे झूठा न बनाये। बादशाह का यश प्रकाश फैलाते हुए सूर्य के समान तपता हूं इसी कारण संसार मे सदैव ही ग्रीष्म ऋतु बनी रहती है। यश रूपी सूर्य जब उदय होता है तो और सभी का यश पल भर मे उदय होते ही अस्त हो जाता है। सूर्य के सामने आख ठहर जाती है किन्तु बादशाह के मुख की ओर देखा ही नही जाता। (कवि पुन. बादशाह के लिए अप्रस्तुत योजना का प्रयोग करता है) वह कहता है कि बादशाह जहागीर गजपति के समान सुहावना लगता है। यदि बादशाह एक बार क्रोध प्रकट कर दे तो प्रकृति काप जाती है और तत्काल ही वर्षा ऋतु आ जाती है ठीक उसी प्रकार यदि मेघ वर्ण याययाम वर्ण का विशाल का हाथी क्रोध मे भरकर चिग्घाडने लगे तो सब बेहोश हो जाते हैं। (मेघो की भयकर गडगड़ाहट को सुनकर भी लोग अचेत हो जाते हैं।) मेघों के कारण छाये अधकार में अंकुश को (हाथी वश में करने वाला अस्त्र) दात तथा (आकाश मे उड़ते श्वेत) बगुले बिजली के समान चमकते है। जि॰ प्रकार बादलों की गड़गड़ाहट से वर्षा बढ जाती है उसी प्रकार हाथी के चिघाड़ने से उसका मद बढ़ जाता है जैसे हाथी को वश में करने के लिए अकुश मार-मार कर उ॰.के माथे को चीत दिया जाता है (अंकुश के चुभने से घाव हो जाता है और उससे खून बहने लगता है। हाथी का रंग, घाव और बहते खून से एक चित्र-सा बन जाता है) उसी प्रकार वर्षा को

देखने के लिए आकाश में इन्द्र धनुष निकल आता है। हाथियों के झूल के साथ पड़े हुए घंटे तथा हौदों में लगे घुंघुरू, घोड़ों की गड़गड़ाहट तथा कोयल की मधुर आवाज आदि की सम्मिलित ध्वनियाँ वातावरण में चारों ओर भर रही हैं। ऐसी स्थिति में कामुक स्त्रियाँ अधिक आमोद-प्रमोद में लीन हो जाती हैं तथा विरहिणी के हृदय में क्षोभ भर जाता है।

विशेष—(1) इसमें बादशाह के यश और कोष की अप्रस्तुत योजना के माध्यम से व्यंजना की गई है।

(2) दांतों का बिजली की भांति चमकने की बात तुलसी ने भी कही है—
'चमकहिं दसन बीज की नाईं।'

(3) इसमें अनुप्रास, उपमा तथा रूपक अलंकार है।

पुनि नवसात सजी बरनारी, लिए सरद रितु आनि जोहारी।
ससि आनन मुकताहल तारे, खंजन नैन सेत औ कारे।
बेसर मुकुता सोहिल तारा, सुभग चरन पंकज रतनारा।
जो गढ़पति बांध बर आने, गढ़ भाने औ तोरे भाने।
हिमि ऋतु तिन्ह के उर भरि रहा, हिये करेज कंपावत महा॥
सिजि सिसिर रितु तिन्ह की नारी, हिये जाइ तन चीर संवारी।
चितवहिं सौंह साह की ओरी, दुहुं हंसि मिलिहि कि लागहि ओरी॥
बरन-बरन उमराव तन, सोभा सबल भाख।
फूले मनहुं बसन्त रितु, महकि रहा भरनार॥16॥

शब्दार्थ—नव-सात=नवसप्त, सोलह शृंगार। बरनारी=श्रेष्ठ स्त्री। जोहारी=जुहार करना या अभिवादन करना। ससि=चन्द्रमा। आनन=मुख। खजन=पक्षी। सेत=श्वेत। कारे=काले। सोहिल=सुहैल (फा०) एक अत्यंत प्रकाशमान तारा। रतनारा=रतनारे, लाल। गढ़पती=गढ़पति, किलेदार। भाने=भग्न, त्यागी। तोरे=तोड़े। हिमि ऋतु=हेमन्त ऋतु, शीत ऋतु। चितवहिं=देखना। ओरी=ओर। ओरी=झोली। भभा=सुगंधित पदार्थ।

अभिवादन करने आई हों। उनके चन्द्र-मुख के आस-पास मोती रूपी तारे जगमगाते है। (अर्थात् उन्होंने मोतियो से अपना शृंगार कर रखा है।) उनके नेत्र खंजन पक्षी के समान श्वेत और काले हैं। उनकी नथ मे पड़ा हुआ मोती सुहेल तारे के समान जगमगा रहा है। (उनके सुन्दर पैर लाल कमल के समान हैं। हे वादशाह। जो भी किलेदार बडे-बड़े मनसूवे वांधकर आता है तुम उसके ही गढ को और उसके अभिमान को तोड़ देते हो। इसके कारण उनके हृदय में शीत ऋतु भर गई है और उनका हृदय तथा कलेजा वहुत अधिक कापता रहता है। उनकी नारिया शिशिर ऋतु के समान सजी हुई है। जैसे दोनो (बादशाह और उनमे से कोई स्त्री) हंसकर मिले नही कि उसको डोली मे बिठाकर शाही हरम मे पहुंचा दिया जाता है। उमराओं के शरीर भाति-भाति के रग वाले है तथा सुगंधि से पूर्ण है। उन्होंने सुन्दर सुगधि वाले द्रव्य पदार्थ (इत्र-आदि) और चंदन लगा रखा है। इन सवके कारण ऐसा लगता है मानो बसत ऋतु फूल आई हो और उसके कारण सारा दरबार सुगंधि से भर गया हो।

विशेष—(1) कवि ने जहागीर के आतंक तथा अमीर उमराव की मानसिकता का वर्णन किया है।

(2) शीत ऋतु मे अगहन और पूस (पोष) माह मे तथा उसके वाद शिशिर, माघ और फागुन मे होती है।

(3) इसमे रूपक, उपमा, अनुप्रास तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है।

पुनि कलि अदल उमरू सम कीन्हा, धन सो पुरुष जो यह जस लीन्हा।
अस भा अदल मथे हरि बानी, छाना नवा पुराना पानी॥
पुहुमी परै न पावै कांटा, हस्ती चांपि सकै नहि चांटा।
गाय सिंह गवनहिं एक गली, वल भा अबल अबल भा बली॥
सहस घाट कंचन के साजे, पाट डोर तेहि बार बिराजे।
दुखिया छुअत होय झनकारा, उठै कांपि सकटक खन्धारा॥
पातसाह सुनि निकल बुलावै, दरसान पाय दाद पुनि पावै।
जहांगीर के अदल पर, पूरि रहा जग चैन।
सखन सुना नौसेखां, साह जो देखा नैन॥ 2॥

शब्दार्थ—कलि अटल=कलि को अलग करना अर्थात् अपराधी को उसके दलसे पृथक करना। सम=समान। धन=धन्य। हरि=भगवान, खलीफा। छान=छानना। नवा=नया। पुहुमी=भूमि। हस्ती=जीवित। चापि=सहन। गवनहि=चलना। घाट=नदी पर बने घाट। पाट=कुएं पर रखी जाने वाली चपटी लकडी जिस पर एक पांव रखकर पानी खींचते हैं। सटक=सकपकाकर, घबराकर। संधारा=सरदार या अधिकारी। दाद=न्याय। सखन=श्रवन, कान। नौनेखां=नौशेखां ईसा की छठी सदी का फारस का एक न्याय प्रिय बादशाह।

व्याख्या—कवि जहांगीर के न्याय शीलता का वर्णन करते कहता है कि जिस प्रकार कलि को उसके दल (पत्ते डाल आदि) से अलग कर दिया जाता है उसी प्रकार वह अपराधी को उसके दल से अलग कर खलीफा उमर के समान न्याय करता है। वह पुरुष धन्य है जिसको यह यश प्राप्त हुआ है। इस प्रकार दोषी को सबसे अलग कर खलीफा की वाणी के अनुसार मथा गया उसे कठोर दण्ड दिया गया। यह ऐसा ही हुआ जैसे पुराने पानी को छानकर नया कर लिया जाता है। उसके न्याय के कारण पृथ्वी पर एक भी कांटा पड़ा हुआ दिखाई नहीं देता अर्थात् अपराधियों को बीन-बीन कर समाप्त करवा दिया। कोई भी हस्ती या जीवित अपराधी उसके चाटे के धक्के को सहन करने में सर्वथा असमर्थ है इसी से गाय और सिंह एक साथ एक गली में चलते हैं। इसी से बलवान निर्बल हो गये तथा निर्बल बलवान हो गये हैं। उसने जनता की भलाई के लिए नदियों पर घाट बनवाये हैं तथा कंचन (स्वर्ण) से सजा दिया है अर्थात् सुख सुविधा से पूर्ण कर दिया है। कुओं पर पाट या चपटी लकड़ी रखवा दी गई है जिस पर खड़े होकर पानी खींचा जा सकता है उसके पास ही डोर या रस्सी आदि भी रखवा दी है। जैसे ही कोई किसी दुखी या पीडित का स्पर्श करता है चारों ओर उसकी ध्वनि अंकृत हो जाती है और अधिकारी अपने दल-बल के साथ कांप उठते हैं। बादशाह तक फरियाद को पहुंचाई जाती है तो वह उन्हें अपने निकट बुलाकर बात सुनता है। इस प्रकार पीड़ित व्यक्ति दर्शन का लाभ प्राप्त कर पुन. उसे न्याय पाता है। जहांगीर के न्याय के कारण सारे संसार में सुख और चैन छाया हुआ है फारस के बादशाह नौशेरवां के न्याय के बारे में जो बातें कान से सुनी थीं वह शाह के कारण अपनी आंखों से देख लिया।

विशेष—(1) गाय औ रसि एक घाटह पर पानी पीते हैं प्रसिद्ध लोकोक्ति मे उसमें कवि ने परिवर्तन किया साथ-साथ चलते है लक्षणाशब्द शक्ति है।

(2) बादशाह के न्याय तथा जनता की भलाई के कार्यों पर प्रकाश डाला गया है।

(3) कलि अदल में असंलक्ष्यक्रम ध्वनि है। तथा बिम्ब योजना सुन्दर है।

(4) इसमें अनुप्रास नाद सौन्दर्य सर्वत्र है।

पुनि नवरोज सराहो काहा, धन सो पुरुष जे पायो लाहा।
दल बादल जहँ अंबर, छावा, ससि सूरज तेहि माँह बनावा॥
पहिले बारह रासि बनाए, तौ सब नखत तहाँ लिखि लाए।
ससि बुध सूक बृहस्पति साजा, आपन आपन ऊँच बिराजा॥
भौम सनीचर दिनकर संगा, मनहि लजानो सरग पुराना।
देखि अपूरब भांत संवारी, निसि दिन फिरे लागि बलिहारी॥
कहा कहौं सो गा बिकल, इंद्र होइ पति जाहि।
कहिस कि वह जो इंद्र है इहै इंद्र सर आहि॥

शब्दार्थ—नव रोज=नौ रोज, पारसियों का वर्ष का पहला दिन त्यौहार या खुशी का दिन। सराहौं=सराहना करना। धन=धन्य। लाहा=लाभ। दल बादल=शाह मियाना। राशि=राशि। नखत=नक्षत्र। सूक=शुक्र। भौम=मगल। इहै=इस लोक में। सर=शीर्ष पर।

व्याख्या—कवि उस्मान दरबार मे हुए नव रोज के उत्सव का वर्णन करते हुए कहता है, उस दिन के उत्सव की क्या प्रशसा करूं। वे पुरुष धन्य हैं जिन्होने जीवन मे उसे देखने का लाभ पाया है। शाही-शामियाना आकाश के समान छाया हुआ था। उसमे चाद और सूरज बनाये गये। पहले बारह राशि (मेप, वृप, मिथुन, कर्क, सिह, कन्या, तुला, बृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, ओलीन) की रचना की गई। चन्द्रमा, बुध, शुक्र तथा वृहस्पति आदि ग्रहो को उनकी अपनी ऊंचाई के अनुसार स्थान दिया गया। फिर मगल, शनि तथा सूर्य के साथ बनाया गया इसे देखकर ऐसा लगता था मानो पुराना स्वर्ग यहा की शोभा को देखकर लज्जित हो रहा हो। सबको अभूत पूर्व रीति से सँवारा गया था तथा वे रात दिन फिरते थे। (मुसलमानों का

विश्वास है कि तारागण नहीं घूमते बल्कि आकाश व स्वर्ग ही घूमता है। इस सम्पूर्ण दृश्य को देखकर क्या कहा जाये क्योंकि (स्वर्ग के राजा इन्द्र की स्थिति खराब हो गई) इन्द्र जिसका शनी का) पति है, यदि वह उससे कहता है कि वह इन्द्र है तो वह (तत्काल ही) पूछ सकती है कि इस समय तो यहा (भूमि का राजा) इन्द्र शीर्ष पर है भाव यह है कि राजाओं में स्वर्ग के राजा को सर्वोपरि या शीर्ष पर माना गया है, अतः यदि यहां का राजा शीर्ष पर हो गया, तो यही इन्द्र है ?

विशेष—(1) इसमे नव रोज के उत्सव का चित्रण किया गया है।

(2) ग्रहों स्वर्ग तथा आकाश सम्बन्धी मुस्लिम विश्वास की अभिव्यक्ति है।

(3) इसमें अनुप्रास, उत्प्रेक्षा तथा प्रतीप अलंकार है।

ऊपर सब संयोग सुभ साजा, तेहि पर हाटक पार बिराजा।
लागे हीरा रतन अलेखें, चौंधि विष्ट सौंहे जेहि देखें॥
मोति अनेक लाग जस ओला, एक इक देस एक कर मोला।
तेहि पर बैठ छत्रपति गाजा, एक छत्र चहुं खंट बिराजा॥
छत्रिन्ह लाइ छत्र सो पूजा, और छत्र जग रहा न दूजा।
कलपबिरिछ भा यह जग मांही, कोस सहस दस पसरी छांही॥
जग निचिंत सोवै जेहि छाहीं, चिऊंटी काटि जगावै नाहीं।
विधिना सौं जांचै जगत, पुहुमी धरे लिलाट।
जौन्ह धरती सरग दोउ, रहे छात औ पाट॥ 19॥

शब्दार्थ—सुभ=कल्याण। अलखे=अनगिनत। चौंधि=चौंधना। ओला=जाड़े की वर्षा में गिरने वाले बर्फ के टुकड़े। इक=एक। गाजा=गाजी, शूरवीर। छत्र=मात्र। कलप बिरिछ=कल्प वृक्ष जिसके बारे में कवि प्रौढ़ोक्ति है कि इसके नीचे बैठने पर मनोकामना पूरी हो जाती है। जांचै=जांचना, परखना।

व्याख्या—कवि बादशाह के वैभव का वर्णन करते हुए कहता है कि इस कल्याणकारी राज्य की सब सुविधाओं को इकट्ठा किया गया या सजाया गया। उसका (सिंहासन) सोने से मढा हुआ था तथा उसमे और अधिक

मूल्यवान पदार्थ शोभायमान हो रहे थे। उसमें अनगिनत हीरे तथा अन्य रतन पदार्थ लगे हुए थे। जो भी उनकी ओर देखता था उसकी दृष्टि चौंध जाती थी। उसमे अनेक ओले के समान बड़े-बड़े मोती लगे हुए थे, जो अलग अलग (एक-एक) देश के थे तथा एक से बढ़कर एक अधिक मूल्य के थे। उस पर छत्रपति गाजी विराजता था। उसका एक छत्र राज्य चारों खंडोमें फैला हुआ था। विभिन्न छत्री अर्थात् राजगण आकर उसके छत्र की पूजा करते थे अर्थात् उसकी अधीनता स्वीकार करते थे, क्योंकि उस समय में संसार में और कोई छत्रपति नही था। यह ससार में कल्पवृक्ष के सदृश्य था। इसकी छाह (अधिक से अधिक) सहस्त्र कोस तक तथा (कम-से-कम) दस कोस तक फैली हुई थी। इसकी छाह मे सारा ससार निश्चित होकर सोता था। चींटी भी काट कर किसी को जगाती नही थी भाव यह कि सब बहुत निश्चित भाव से रहते थे। यदि विधाता अपनी सम्पूर्ण रचना या सृष्टि को परखे तो उसे यही लगेगा कि पृथ्वी ही उसकी समस्त रचना का मस्तक स्वरूप है। क्योंकि यहां पृथ्वी और स्वर्ग मे प्राप्त होने वाली सब सुविधाएं छाई हुई है तथा भरी पड़ी हैं।

विशेष—इसमें अनुप्रास, अत्युक्ति तथा अतिशयोक्ति अलंकार है।

तहाँ बैठि पुहुमी पति भारी, देर दान कर बार उघारी।
एकहि बेर एक कहँ देई, दूसरि बेरि न कोऊ लेई॥
पिरथी बली होत सो आजू, मांगत देखि दान कर साजू।
बादि मरजिआ समुंद धसाई, बादिहि लोग रतन गिरि जाई॥
बादि सुमेरू लागि जग धावै, कस न बार जहाँगीर के आवै।
देइ रतन जत मनसा होई, सोन रूप कह बरज न कोई॥
महूँ सुना कि अनेक भिखारी, कीन्हे साह नेवाजि हजारी।
आयो सोई बार सुनि, लिए, गरीबी साज।
कहा जो मागु गरीब है, साह गरीब नेवाज॥20॥

शब्दार्थ—पुहुमी=पृथ्वी। उघारी=उदारी, उदारतापूर्वक। बेरि=बार। बली=दान वीर। पिरथी=पृथ्वी। बादि=व्यर्थ। मरजिया=मर्यादा। मरजिआ=गोताखोर। धावें=दौड़ते है। कस=क्यो। जत=जितना। मनसा=इच्छा। बरज=वर्जना। बार=दरबार।

व्याख्या—कवि बादशाह जहांगीर की दानशीलता का वर्णन करते हुए कहता है कि यहां पर (दान देने के आसन पर) बैठकर पृथ्वी का बड़ा राजा अपने हाथों से उदारतापूर्वक दान देता है। एक बार में वह एक को कहकर देता है (अर्थात् और तो नहीं चाहिए) इसी लिए दूसरी बार कोई नही लेता। पृथ्वी पर वह आज अकेला दानवीर है। कोई उससे मांगकर देखे, तो वह उसे दान में स्वयं ही कितनी सम्पति देता है। गोताखोर व्यर्थ ही समुद्र में सम्पत्ति पाने के लिए गोता लगाते हैं। लोग व्यर्थ ही रतनागिरी पर रतन प्राप्त करने जाते है संसार में लोग व्यर्थ ही सुमेरु (सोने का पहाड़) तक दौड़ते हैं. वे लोग क्यों नहीं एक बार जहांगीर के पास आ जाते। उनकी जितनी इच्छा हो वह उतने रतन दान में दे देता है। सोने की कोई वर्जना ही नहीं है अर्थात् चाहे जितना लो। मैंने भी सुना है कि शाह के पास अनेक भिखारी आये तथा शाह ने कृपा करके उन्हें हजारी सरदार बना दिया। उसकी ऐसी प्रशंसा सुनकर अपनी गरीबी का साज ले कर पहुंचा तो उससे कहा गया (मांग क्या मांगता है) जिस पदार्थ की गरीबी (अभाव) है वह मांग (तो उसने उत्तर दिया शाह से क्या मांगना) शाह तो स्वयं गरीब निवाज है।

विशेष—इसमें प्रतीय अत्युक्ति तथा अनन्वय अलंकार है।

●

शाह निजाम की प्रशंसा

शाह निजाम पीर सिघदाता, दिष्ट तेज जिमि रवि परमाता।
नारनोलि भीतर आस्थाना, उदे अस्त लइ सब कोइ जाना॥
जा कहँ एक किरन सम जोवा, जनम पाइ ते तिमि जिव खोवा।
जो खिन नैन मया के खोल, पाहन मानिक होइ अमोला॥
जा कहँ मया दिष्टि भरि हेरा, ते दुनहु जुग सों मुह फेरा।

जालों ज्ञान वचन अनुसारा, ता कहं वचन सिद्धि देनिहारा ॥
भौसागर महँ है कढ़हारा, दुखी सुखी सब पार उतारा।
गहि भुज कीन्हे पार जे, बिनु साहस बिनु दाम।
कश्ती सफल जहन के, चस्ती साह निजाम ॥ 21 ॥

शब्दार्थ—पीर=सिद्ध, धर्मगुरु। सिधदाता=सिद्धि दाता। दिष्ट=छवि। कहे=के लिए। जोवा=जोहना प्रतीक्षा। तिमि=उस प्रकार। जिअ=जिय, प्राण। मया=माया, मोह, कृपा। खिन=क्षण। अनुसारा=चलाया कहा। भौसागर=भवसागर। कढहारा=निकालने वाला। कश्ती=नौका। जहान=संसार। चस्ती=चिश्ती।

व्याख्या—अपने गुरु कवि शाह निजाम की प्रशसा करता हुआ कहता है कि शाह निजाम चिश्ती सिद्ध पुरुष है तथा सिद्धि दाता है। उनकी तेजस्वी दृष्टि प्रात.कालीन सूर्य के समान है। उनका निवास स्थान नारनौल (हरियाणा) मे है। कब वे जन्मे और कव उनकी मृत्यु हुई यह बात सब लोग जानते हैं। उसकी (कृपा की) एक किरण पाने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है। जन्म पाकर के (यदि वह न मिली तो) प्राणी व्यर्थ अपने प्राण खोता है। जिस क्षण वह कृपा करके अपने नेत्र खोल देते हैं उसी क्षण पत्थर अमोल माणिक बन जाता है। जहां कही भी वह अपनी कृपा दृष्टि भर कर देख लेते हैं तो प्राणी दोनों युगों (भूत और वर्तमान) मे मुह फेर लेता है अर्थात् (उसके पाप-कर्म नष्ट हो जाते हैं।) जो उनके ज्ञान और वचनो के अनुसार चलता है तो वह उसको अपने वचनो से ही सिद्धि दे देती हैं (अर्थात् उसकी मनोकामना पूर्ण हो जाती है।) वे भवसागर से पार कर वाले हैं। जो दुखी या सुखी व्यक्ति उसकी शरण मे चले जाते हैं वे उसी को (भवसागर) पार करवा देते है। शाह निजाम चिश्ती सारे ससार के लिए नौका के समान हैं, वे लोगों को साहसी हुए विना तथा विना दाम के बाह पकड-पकड़ कर (भवसागर) पार करा देते हैं।

विशेष—(1) इसमे शाह निजाम चिश्ती की उदारता सिद्ध पुरुष तथा अन्य गुणो पर प्रकाश डाला गया है।

(2) मुंह फेरना मुहावरे का प्रयोग है। इसमे लक्षण शब्द शक्ति मे।

(3) इसमे उपमा, रूपक, अत्युक्ति तथा अनुप्रास अलकार है।

बाबा हाजी की प्रशंसा

बाबा हाजी पीर अपारा, सिद्ध देत जेहि लाग न बारा ।
जे मुख देखा ते सुख पावा, परसि पाय तन पाप गंवावा ।।
हिंदू तुरक सबै कोई जाना, निसि दिन जांचहि इंछा दाना ।
हींछा देत न लावहि धोखा, जेहि जस तोष पवै तस पोखा ।।
जौ कोउ जिय निहचै करि आवै, श्रवन लागि तेहि ज्ञान चेतावै ।
प्रेम दीप तेहि देइ जगाई, वहि उजियार चला सो जाई ।।
जासों वचन सिद्धि वै कहा, तै सब तजि विधि मारग गहा ।
सोहि मया कै एक दिन, श्रवन लाग गहि माथ ।
गुरमुख वचन सुनाय कै, कलि महँ कीन्ह सनाथ ।। 22 ।।

शब्दार्थ—अपारा=बहुत बड़े । बारा=समय । परसि=स्पर्श । जाचहि=याचना करना, मागना । इंछा=इच्छा । हींछा=इच्छा । तोष=आकाक्षा । पोषा=मनोरथ । मया=मोह-माया ।

व्याख्या—कवि उस्मान बाबा हाजी पीर की प्रशंसा करते हुए कहता है कि बाबा हाजी पीर बड़े सिद्ध पुरुष हैं । वे दूसरा तत्काल ही सिद्धि दिलवा देते है । इस कार्य में उन्हे जरा भी समय नही लगता । जिसने भी उनका मुख देखा है । वही सुखी हो गया है । जिसने भी उनके पावों का स्पर्श कर लिया उसी के शरीर के पाप नष्ट हो गये । बाबा के बारे में यह हिन्दू और तुर्क सभी जानते है । रात-दिन याचको को मनोवांछित इच्छा का दान मिलता रहता है । (मांगने वाले की) इच्छा के अनुसार देते है और इसमें किसी प्रकार का धोखा नही होता । जिसमे जिसको सन्तोष मिलता है या आकाक्षा की पूर्ति होती है वह अपने मनोरथ के अनुसार वैसा ही पाता है । जो कोई अपने मन मे निश्चय कर आवे तो प्रवचन सुनने मात्र से उसका ज्ञान उद्‌बुद्ध (जाग) हो जाता है और जो वहां पर प्रेम (भक्ति) रूपी दीप को जला देता है वहा उसी के प्रकाश में आगे-ही आगे बढ़ता जाता है । जिससे [illegible] के वचन कह देते हैं वह सब (संसार) छोड़कर

ईश्वर के मार्ग की ओर चल पड़ता है। मैं माया-मोह में था सो एकदिन उनके प्रवचन सुनने पहुंच गया तो उसे सुनकर मस्तक मे बिठा लिया अर्थात् प्रवचनों को धारण कर लिया। इस प्रकार गुरुमुख से वचन सुनकर मैं कलियुग में सनाथ हो गया।

यह मन मथा जग सारा, जो इन्ह मथहि सो नर वरियारा।
जौ लहु गुरु न मनहि सिखावै, वातनि कछू हाथ नहि आवै॥
मही मांहि नौ निहि छपाना, विनु गुरु काहू हाथ न आना।
करम वात अब कहौं सुनु तोहीं, जस कछु गुरु सिखावा मोहीं॥
ज्ञान डोरि करु दिया मथानी, सांस लेत डोरी लपटानी।
उलटी दृष्टि रहै टुक लाई, सजग रहै जेहि ततु न जाई॥
तौ लहु मथै बैठि दै जीऊ, निसरै छाछ मही ते घीऊ।
निज सो मथनी एक दिन, मथत मथत गा फूटि।
तत्वमसी पुनि तत्व सों, जाय नरक सब छूटि॥ 23॥

शब्दार्थ—मथा=कुचलना। वरियाना=अलग होना। लघु=छोटा। निधि=निधि, कुबेर के नौ रत्न पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप मुकुंद, कुंद, नील और खर्च। टुक=तनिक। नंतु=उद्योग। जीउ=जी लगाकर। निसरें= निकलना। तत्व=वह तू है।

व्याख्या—कवि गुरु के महात्म्य को स्पष्ट करते कहता है कि जिसने इस मन को कुचल दिया उसने सारे संसार को ही कुचल दिया जो इनको मथ लेता है वह पुरुष सबसे अलग हो जाता है। वह छोटा ही बना रहता है। जब तक कि वह गुरु के अनुसार अपने मन को शिक्षित नही करता। केवल बातो ही बातों से कुछ भी हाथ नही आता। पृथ्वी मे ही तो निधि या कुबेर के नौ रत्न छिपे हुए हैं। ये निधिया बिना गुरु की सहायता के किसी के हाथ नहीं आती। यह कर्म (भाग्य) की बात है कि मैं तुमको सुना रहा हूं जैसा कुछ भी गुरु ने मुझको सिखाया। ज्ञान की डोर से हृदय को मथानी बनाया। सांस लेते ही वह डोरी उससे लिपट गई। दृष्टि को उल्टा कर तनिक देर रहे उस समय इस बात के लिए सजग रहे कि कही उद्योग असफल न हो जाए। इस प्रकार जी लगाकर मथने बैठे तो छाछ निकली और उसमें फिर घी निकला। इस प्रकार रोज मथते-मथते एक दिन मथनी टूट

गई और वह तू है जानकर तत्व से मिल गया और सांसारिक रूपी नरक से छुटकारा मिल गया।

विशेष—(1) इसमें योग की विभिन्न क्रियाओं द्वारा समाधि की पूर्णता एवं भगवत प्राप्ति की ओर संकेत किया गया है।

(2) इसमें पुनरुक्ति रूपक तथा अनुप्रास, दृष्टान्त अलंकार है।

2. कथा खंड

आदि नगर नैपाल अनूपा, तहां राउ धरनीधरं भूपा।
धन सो देश धन नगर सोहावा, धन राजा जिन आनि बसावा।।
अति बलवंड न जाई बखाना, भानु समान चहूं-खण्ड जाना।
मुकटबंद सब सेवा करहीं, सेवा मांझ रैनि दिन हरहीं।।
कटक असूझ अनेक अपारा, आव न लेखे सहज हजारा।
देस बहुत कुछ अहै न थोरा, गगत न आव हस्ति औ घोरा।।
आइ समुंद महं खडग पखारा, अरि न रहा जो इतर संभारा।
अनघन हेम जो लच्छमी, सैन अनेक अपार।
एक दीप संतति बिना, राजभवन अंधियार।।

शब्दार्थ—आदि=आदिकाल या प्राचीन। अनूप=अनोखा। राउ=राजा। बलवंड=बलवान। भानु=सूर्य। चहू-खड=चारों दिशाओं में। मुकटबन्द=बड़े सम्राट। कटक=फौज। असूझ=अनगिनत। हेम=सोना अनघन=अपार, संतति=सन्तान।

कवि ने परम्परागत वर्णन के पश्चात् अपनी काव्य-रचना की मूलकथा लिखनी प्रारम्भ की है, जो निम्नांकित है :—

व्याख्या—आदि काल मे 'नैपाल' नाम का एक अनोखा नगर था। वहां 'धरणीधर' नाम का राजा राज्य करता था। वह देश, वह सुहावना नगर

और वह राजा, जिसने कि इस नगर को बसाया है, धन्य हैं। वह राजा अत्यन्त बलशाली था, जिसका वर्णन सम्भव नही है। उसे सूर्य के समान चारों दिशाओं में जाना जाता था। बडे-बडे सम्राट उसकी सेवा करते थे तथा दिन-रात उसकी सेवा में ही व्यस्त रहते थे। उसके पास अनेक प्रकार की अनगिनत फौज थी। उसकी सख्या सहस्त्रों और हजारों में भी लिखना सम्भव नही है देश मे बहुत कुछ था तथा किसी प्रकार की कोई कमी नही थी। राजा के पास कितने हाथी और घोडे थे उसकी गिनती करना सम्भव नहीं है। राजा की तलवार के समक्ष इधर-उधर कोई शत्रु शेष नही रह गया। राजा के पास अपार सोना, लक्ष्मी और अनेक प्रकार की सेना थी लेकिन एक सन्तान (पुत्र) रूपी दीपक के बिना राजभवन मे अन्धकार छाया हुआ था।

विशेष—(1) हिन्दी के समस्त सूफी कवि अपनी रचना का शुभारम्भ मसनवी शैली में करते हैं तथा ग्रन्थ के प्रारम्भ मे 'हम्द' अर्थात् परमतत्व का विवेचन, मुहम्मद की प्रशंसा, चार मीतों की प्रशंसा, अपना परिचय तथा रचना का प्रयोजन प्रस्तुत करते हैं।

(2) सूफी प्रेमाख्यानों की यह एक काव्य रूढि है कि राजा के पास सर्वस्व होते हुए भी सन्तान का अभाव रहता है। राजा के घर पुत्र रूपी सन्तान किसी आशीर्वचन द्वारा ही सम्भव बताई जाती है।

(3) काव्य वर्णित राजा की शक्ति, शौर्य एवं धन-धान्य का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन भी सूफी कवियों की अपनी विशेषता है।

(4) यह कथा ऐतिहासिक या पौराणिक नही है बल्कि यह कल्पना प्रसूत है क्योंकि 'नैपाल' के राज्य मे कभी धरणीधर नाम का राजा नहीं हुआ।

(5) वर्णनात्मक शैली।

(6) नैपाल को शिव-स्थान माना गया क्योकि आज भी वहा शिव की उपासना सर्वोपरि है।

सुन चिंता राजा चित माहीं, राज काज मन भावै नाहीं।
दिन एक सबै बुलायो नेगी, अगा राज राव चल बेगी॥

सभा जोरि कै मंत बईठा, कहेस न मोहिं कछु अस्थिर डीठा।
यह जग जस पानी कर धावा, जो कछु गा सो बहुरि न आवा।
काल्ह-हि यह तन होइहै छारा, कोऊ नाउं नहिं लेवन हारा॥
बीती रैन भोर दिगसाना, कागा रोर आइ नियराना।
को गहि लकुटी पंथ देखाइहि, को पिंडा दै पाछु पुराइहि॥
राज पाट धन देस सुख, सुत बिनु कौने काज।
अब सब लेहु राज तुम, लेत अहौं शिवसाज॥ 2॥

शब्दार्थ—अस्थिर=चलायमान, चंचल। नेगी=कर्मचारी। मंत=मन्तव्य। दीठा=दिखाई देता है। धावा=तुफानी लहर या बुलबुला। जस=समान, छारा=क्षार। कागारोर=कौवाओ का रुदन। शिवसाज=योग।

व्याख्या—राजा के हृदय में पुत्र की चिन्ता लगी रहती थी, उसका राज-काज मे मन नही लगता था। एक दिन राजा ने अपने सभी नेगियों (कर्म चारियों) को अपने पास बुलाया। राजा की आज्ञा सुनकर सभी लोग तुरन्त राजा के पास आ गये। राजा ने सभा जोड़कर अपना मन्तव्य स्पष्ट किया और कहा कि मुझे इस संसार में सब कुछ चंचल दिखाई देता है। यह सारा संसार पानी की एक तूफानी लहर के समान है। इस संसार से जो कुछ एक बार चला जाता है, वह पुनः लौट कर नहीं आता। कल यह शरीर मिट्टी हो जायेगा और इस संसार मे कोई मेरा नाम लेने वाला भी नही होगा। रात्रि बीत चुकी है और प्रातःकाल का विकास हो रहा है। काक बलि का समय नजदीक आ गया है। अब मेरे हाथ में लाठी पकड़ाकर कौन मुझे मार्ग दिखा-येगा तथा अब कौन मेरा पिंडदान देकर मेरी मुक्ति की कामना करेगा ? पुत्र के विना यह राज-पाट, धन तथा देश के समस्त सुख किस काम के हैं। अब तुम सब इस राज्य को अपने हाथों मे ले लो और मैं अभी शिव के समान निर्लिप्त होकर योग मार्ग ग्रहण कर लेता हू।

विशेष—(1) राजा के विचारों में दार्शनिकता का परिपाक है। उसके विचार में यह संसार नष्टव्य है। इसका अस्तित्व पानी की प्रचंड लहर के समान है।

(2) हिन्दु-समाज में पिता के मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र पिंडदान कर अपने पिता की मुक्ति की कामना करता है।

(3) 'हाथ की लाठी' एक मुहवरा है, जिसका अर्थ है आश्रयदाता।

(4) 'कागारोर' का अर्थ है कि भारतीय हिन्दू संस्कृति के आधार पर मरणोपरान्त काकवलि देने की प्रथा है।

(5) 'शिवसाज, से तात्पर्य शिव जैसा स्वरूप है, जिसमे भाव, एव कर्म को अपने मन मे धारण कर ससार मे विरक्त होने की कामना की जाती है

(6) सूफी प्रेमाख्यानो के सम्राट निरंकुश शासन होते हुए भी राज्य के अपने सभी महत्वपूर्ण कामों में मंत्रियों से परामर्श लेते थे।

मंत्रिन कहा सुनहु मति राजा, राज पाट तुमही कहं छाजा।
कौन सुनै असको मति देई, हस्तिक भार क गदहा लेई॥
जो तुम्ह कालिह लेव सिवसाजू, आजुहि हम छाडव यह राजू।
राज करहु प्रतिपालहु परजा, सेवत साईं कौन तुम बरजा॥
तन सो भोग जोग मनसेती, बात इन्हैं औ बातें जेती।
जो यह वरब चहौ तुम्ह छाड़ा, कौन सुफल जो छाड़ि अगाड़ा॥
दिन सब करहु राज सुख भोगू, रैनि गुपुत साधहु तुम्ह जोगू।
जेहि निमित्त धन दीजिये, औ कीन्हो सब हानि।
सो ईच्छा विधि आपु मिजु, बेगि पुरावे आनि॥ 3॥

शब्दार्थ—मति=विचार। प्रतिपालहु=पालन-पोषण। सेवत=उपासना। साईं=परमात्मा। वरजा=रोका। अगाड़ा=भविष्य। निमित्त=कारण। विधि=विधाता। पुरावे=पूर्ण करना।

व्याख्या—मंत्रियो ने कहा कि "ऐ राजा अब हमारा विचार सुनो। यह राजपाट आपको ही शोभा देता है आपके विचार को कौन सुनेगा और कौन आपको ऐसी सम्मति देगा। हाथी के भार को गधा कैसे उठा पायेगा। अगर आप कल योग धारण करते हैं, तो हम आज ही यह राज छोड़कर चले जायेगें। आप राज्य करो और प्रजा का पालन-पोषण करो। आपको परमात्मा की उपासना से कौन रोक सकता है? अगर आप इस समस्त द्रव्य को छोड़ना चाहते हं तो आप शरीर से समस्त सासारिक भोगो का भोग करो तथा मन से योग का मार्ग ग्रहण करो। सभी बातो का यही निष्कर्ष है। वह कौन-सा सुफल होगा जिसकी प्राप्ति आपको भविष्य मे नही होगी। आप दिन मे राज्य के समस्त सुखो का भोग करो तथा रात्रि मे गुप्त रूप

से योग-साधना में लीन रहो। आप जिस निमित्त से धन का दान करेंगे और सम्पत्ति की हानि करेंगे, विधाता आपकी उसी इच्छा को स्वयं आकर शीघ्र पूर्ण करेगा।

विशेष—(1) 'हस्तिक भार का गदहा लेहीं' एक मुहावरा है जिसका अर्थ है कि मूर्ख लोग बुद्धिमानों के कार्यों को नहीं कर सकते।

(2) शरीर से भोग तथा मन से योग किया जाता है।

(3) मंत्रियों का परामर्श अत्यधिक व्यावहारिक एवं सूफी दर्शन के अनुरूप है। इस संसार से विमुख होकर सुख की कल्पना निराधार है। सूफी दार्शनिकों के अनुसार लौकिक संसार में रहकर ही अलौकिक की उपासना सम्भव है। राजा जनक का जीवन इस रूप में अनुसरणीय है।

(4) दान महिमा को वर्णित किया गया है तथा राजा को परामर्श दिया गया है कि तुम जितना अधिक दान करोगे उसका तुम्हें शीघ्र ही फल प्राप्त होगा।

(5) उपनिषदों में भी इसी प्रकार की कल्पना की गई। यह संसार भोग के लिए है, लिप्त होने के लिए नहीं। क्योंकि ईश्वर प्रदत्त सब भोग भोगने के लिए ही हैं त्यागने के लिए नहीं। अन्तर केवल भावना का है—कहा भी है—

"ईशावास्यम् इदं सर्वं यत्किञ्च जगत्याम् जगत।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृध कस्य स्विद्धनम्॥"

पूत निमित्त धरम अब कीजै, धरमसाल कै भोजन दीजै।
दिये बिना कछु काहु न पावा, दिया आनि सब इच्छ पुरावा॥
दिया घरे तम करै न जोरा, दिया हुतें घर मुसै न चोरा।
एहि जग मांह सार यह दीया, जो न दिया ते अनिरथा जीया॥
दिया हुते निसि आगे सूझा, दिया हुते पर आपन बूझा।
दिया हुते घर पावै सोभा, आइ पतंग दीप पर लोभा॥
दीया चाजु मग जाइ न जोवा, दिया होइ तौ पावै खोवा।
यह कलि स्याम बिभावरी, विकट पंथग्रह साथ।
निजु भले जगमाह सो जिनन दिया कछु हाथ॥ 4॥

शब्दार्थ—धर्मसार=धर्म पर आचरण करने वाले। इच्छा पुरावा=

इच्छा पूर्ण करने वाला। मुसै=घुंसना या सेंघ लगाना। अमिरथा=व्यर्थ। विभावरी=रात्रि। कलि=कलियुग, संसार।

व्याख्या—मन्त्रियो ने आगे कहा कि "आप अब पुत्र के निमित्त धर्म कीजिए तथा धर्म पर आचरण करने वाले लोगों को भोजन दीजिये। दान के बिना किसी को कुछ नही प्राप्त होता। दान ही सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला है। दीवा रखने से अन्धकार नही बढता, दीवा जलने से घर में चोर नही घुसता। इस संसार में दान ही एक सार है। जिसने अपने जीवन में दान नहीं किया उसका जीवन व्यर्थ है। दीया होने से अन्धकार में मार्ग दिखाई देता है तथा दीपक जलने से आत्म का ज्ञान होता है। दीपक होने से घर शोभायमान होता है। दीपक होने से ही पतंगा लोभी बनकर उसके पास आता है। दीवा के बिना नजदीक का मार्ग भी दिखाई नहीं पड़ता। अगर दिया हुआ है तो खोया हुआ भी पुनः मिल जाता है। यह कलयुगी संसार काली रात्रि के समान है तथा इसका मार्ग अत्यन्त विकट है एवं इसमें बहुत से अवरोध हैं। जिन्होंने अपने हाथ से किसी को कुछ दान नहीं दिया है, वह इस संसार रूपी वन में अपने आपको भूले हुए हैं।

विशेष—(1) दान महिमा का वर्णन है जो भारतीय एवं इस्लामी दोनों ही संस्कृतियों मे समान रूप से महत्वपूर्ण माना जाता है।

(2) साग रूपक अलकार है। दीया का अर्थ दान तथा दीपक होने से यहा श्लेष अलकार भी है।

(3) दान के अन्तर्गत अन्न, धन, वस्त्र आदि का वर्णन किया जाता है। इसका एक आध्यात्मिक एव सामाजिक महत्व भी है। आध्यात्म में दान अगले जन्म में पुनः मिल जाना है तथा समाज में इससे प्रतिष्ठा एवं सामाजिक सन्तुलन भी बना रहता है।

(4) कलियुग को काली रात्रि के समान बताकर कवि ने भारतीय संस्कृति एवं दर्शन का अनुसरण किया है। भारतीय दर्शन के अनुसार चार युग—सतयुग, द्वापर, त्रेता एवं कलियुग बताये जाते हैं जिनमें सतयुग को ऊषाकाल और कलियुग को रात्रिकाल माना जाता है।

सुनि कै राजा हिये संभारा, लाग देइ दरब कोटि भंडारा।
जो ईंठा कै मन कोइ आवा, दीन्ह बोलाइ बार नहिं लावा॥

औ जित अहे देश के दुखी, दीन्ह दान सब कीन्हें सुखी।
भूंखा भोजन कापड़ नांगा, निसि वासर पावे बिनु मांगा॥
धरमसाल पुनि बार सवांरा, जहां न कोउ बरजन हारा।
पंथी आइ तहां सुख पावहि, भोजन मिलि निसि सोई गंवावहि॥
जती संन्यासी जो कोउ आवे, सुनत नाउं राजा उठि धावे॥
अपने नगर बुलाइ के, आन परवारे पाय।
कर जोरे बिनती करे, आग्या सीस चढाय॥ 5॥

शब्दार्थ—सभारा=धैर्य या सात्वना। निसिवासर=रात दिन। बारि=दरवाजा। बरजन हार=वर्जित करने वाला। पंथी=पथिक।

व्याख्या—राजा ने मन्त्रियों द्वारा कहे गये बचनों का सुनकर अपने हृदय को सांत्वना दी तथा अपने भंडारों को खोल दान देने लगा। राजा के पास जो भी व्यक्ति अपने मन में इच्छा लेकर आता, राजा शीघ्र ही उसे बुलाकर उसकी इच्छा पूर्ण करने मे देर नही लगाता। देश में जितने भी दुःखी थे, राजा ने दान देकर उन सभी को सुखी बना दिया। भूखों को भोजन, नंगों को वस्त्र दिन-रात बिना मांगे ही प्राप्त हो जाता था। धर्मानुयायियों को रोकने वाला कोई नही था, वह बार-बार राजा के द्वार को सुशोभित कर इच्छित फल की प्राप्ति करते थे। पथिक लोग वहां आकर सुख प्राप्त करते थे। वह भोजन खाकर वहां रात्रि व्यतीत करते थे। यती और सन्यासी जो कोई भी आता था, राजा उसका नाम सुनते ही उसके पास उठकर चला आता था। अपने नगर में बुलाकर राजा उनके पैरों को धोता था तथा हाथ जोड़कर उनके समक्ष विनती करता और उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करता था।

विशेष—प्रस्तुत संदर्भ मे भूखों को भोजन, नगो को वस्त्र तथा पथिकों को भोजन देना सामान्य रीति से वर्णित है तथा यती, संन्यासियो और धर्मानुयायियों को यह दान सम्मान के साथ वर्णित किया गया है।

एहि विधि बरष एक जो बीता, रहा न कोऊ जग मंह रीता।
कीरति दान चहूं खंड गई, पार समुंद के चरचा भई॥
दान निसान चहुं खंड बाजा, करन कुबेर बेनु बलि लाजा।
पुनि कैलास गई यह माहा, चली बात तहं संकर आहा॥

गिरजे कहा सुनहु हो देवा, के नर कीन्ह ऐस जग सेया।
धरनीधर नृप यहि संसारा, सुत निमित्त सब दीन्ह भंडारा।।
जो अस करं दान कर साजू, चहै तो लेइ इंद्र कर राजू।
चलहु जाय तेहि देखिये, कइस सत्त कस धर्म।
सत्त होइ सुत दीजिये, नहि तो खोइए मर्म ।। 6 ।।

शब्दार्थ—बरस=वर्ष। रीता=खाली। कीरति=महिमा। निसार=डका। बात=चर्चा। गिरजा=पार्वती। निमित्त=कारण।

व्याख्या—इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत हो गया तथा इस संसार में कोई खाली नही रहा। राजा की दान-महिमा की कीर्ति चारो दिशाओ में फैल गई। उसकी चर्चा समुद्र के पार भी होने लगी। राजा के दान का डका चारो दिशाओं मे बजने लगा उसके दान को देखकर कर्ण, कुबेर, बेन और बलि जैसे दानी भी लज्जित होते थे। राजा की यह इच्छा कैलाश तक पहुच गई जहा शकर विराजमान थे। वहा भी यह चर्चा चली तो पार्वती ने शकर से कहा कि हे देवो के देव ! सुनो, इस ससार मे ऐसा कौन-सा पुरुष है जिसने ससार की इतनी सेवा की है ? मैने यह चर्चा सुनी है कि संसार मे 'धरणीधर' नाम का एक राजा है, जिसने पुत्र-प्राप्ति के निमित्त अपने भडार का दान किया है। जो इस प्रकार के दान का आयोजन करता है, वह चाहे तो इन्द्र के राज्य को भी हस्तगत कर सकता है। पार्वती ने आगे कहा कि "आप चलकर उस राजा के सत्य और धर्म की परीक्षा लेकर देखिये। अगर वह सत्य हो तो उसे पुत्र दीजिये अन्यथा आपके यश की हानि होगी।

विशेष—(1) भारतीय सस्कृति मे शिव को औढरदानी बताया गया है। वह हमेशा पार्वती के आग्रह पर मृत्यु लोक का विचरण करते है तथा परीक्षा मे खरा उतरने पर साधको को आशीर्वाद देकर कृतार्थ करते है।

(2) सूफी प्रेमाख्यानो मे शिव एव पार्वती के इस स्वभाव का चित्रण पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होता है। सूफी साधनो की परीक्षा भी शिव ने पार्वती के आग्रह पर स्थान-स्थान पर ली है।

(3) शिव को शीघ्र प्रसन्न होने वाला देवता बताया जाता है। अगर शिव न धरणीधर को सुत नही दिया तो उन्हे अपयश लगेगा। पार्वती का यह कथन शिव की स्वाभाविक प्रक्रिया के अनुकूल है।

3. परेवा खंड

कं सिव-साज निपुंसक चारी, जिन्ह सों आहि सों चित्र चिन्हारी।
बेगि चलाए चारिहु ओरा, ढूंढन चले सूर ससि जोरा॥
औ समुझाइ कीन्ह पुनि बाता, जानत जहों जाहि मन राता।
ताकर चाह कहै जो आइ, जो मांगहि सो देउं बंधाई॥
चारौ चले चारि दिस भए, आपु आपु कहं ढूंढन गए।
जल थल सायर मेरु सुमेरा, रन बन पुर पाटन सब हेरा॥
जहं तहं भर्वांहि गहे बैरागा, दहु. इन महं कोइ होइ सुभागा।
बन घन गिरी सायर पटन, जहां सुनंहि नर नाम।
फिरि फिरि डेरंहि रैन दिन, छिन न लेंहि बिसराम॥ 1 ॥

शब्दार्थ – कं=को। निपुंसक=नपुंसक। चारी=साथी। सों=से। आहि=आह। बेगि=शीघ्र। चारिहु=चारों। ओरा=ओर। जाहि=जिस। राता=अनुरक्त। ताकर=उसका। दिस=दिशा। सायर=सागर। मेरु=पर्वत। सुमेरा=सुमेर पर्वत, स्वर्णगिरि। रन=जंगल। पुर=नगर। पाटन=भवन की मंजिले। भर्वहि=भ्रमण करना। सुभागा=भाग्यवान।

प्रसंग—नैपाल के राजा धरणीधर का पुत्र सुजान एक दिन शिकार खेलने गया तो वह मार्ग भूल गया और एक पर्वत की मढ़ी में जाकर सो गया। वह स्थान किसी देव का था। रूपनगर में राजकुमारी चित्रावली की वर्ष गांठ का उत्सव था। उसका मित्र आया तो वे दोनों सोते हुए राजकुमार को उठाकर अपने घर ले गये और उन्होंने राजकुमार को चित्रावली की चित्रसारी में सुला दिया और आप दोनों उत्सव देखने चले गये। राजकुमार की आंख खुली तो वह आश्चर्य युक्त रह गया। वहां राजकुमारी के चित्र को देखकर आसक्त हो गया और फिर रंगादि रखा पाकर अपना भी एक चित्र बना उसी के पास सो गया। सवेरे देव उसे उठाकर वहीं ले आये। जब वह जागा तो उसने स्वप्न का भ्रम समझा परन्तु अपने वस्त्रों में रंग लगा

पाकर सच माना और चित्रावली के प्रेम में विह्वल हो चिन्तायुक्त बैठ गया। सेवकगण उसे ढूंढते हुए आये और उसे लिवा ले गये। वहां भी वह प्रेम में बेसुध रहा। उसके मित्र सुबुद्धि नाम के ब्राह्मण ने जब उसका हाल जाना तो वे दोनों उसी मढी पर जाकर रहने लगे। वहां उन्होंने अनशन व्रत करना आरम्भ कर दिया। इधर चित्रावली ने राजकुमार का चित्र देखकर अनुरक्त हो गई। यहीं से परेवा खण्ड की कथा आरम्भ होती है।

व्याख्या—कवि कहता है कि चित्रावली ने अपनी नपुंसक भृत्यों को शिवजी के वेष अर्थात् जोगी के भेष मे सजाया। उनको फिर राजकुमार का चित्र अच्छी तरह पहचानवा दिया। वे भृत्य (राजकुमार का चित्र पहचान कर) शीघ्र ही चारो ओर चल दिए। वे राजकुमार को ढूंढने के लिए सूर्य और चन्द्रमा की गति से भी अधिक तेज चलने लगे। उनको भलीभांति समझाया और फिर बात की। तुम तो जानते हो कि जिस (राजकुमार के चित्र) मे मेरा मन अनुरक्त है। उसी को पाने की या देखने की चाह है। जो आकर उसका समाचार देगा वह जो मागेगा वही उसे दिया जायेगा। राजकुमारी के चारो भृत्य चारो दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण) की ओर चल पड़े। वे आप-ही-आप राजकुमार को ढूंढने के लिए बढ़ते गये। उन्होंने जल, स्थल (भूमि), सागर, पर्वत, उत्तरी ध्रुव या सुमेर पर्वत, जगल, वन, नगर, भवन की मजिलें सबको अच्छी तरह देख लिया। जहां-तहां वे बैरागियो के समान घूमने लगे। इनमे कौन भाग्यवान होगा अर्थात् राजकुमार को ढूढकर कौन व्यक्ति राजकुमारी से मनमाना वरदान प्राप्त करेगा ? इस प्रकार घने जगल, पर्वत, सागर, भवनो मे किसी पुरुष का नाम सुनते थे उसे जाकर फिर-फिर रात-दिन देखते थे और क्षण-भर के लिए भी विश्राम नही करते थे।

विशेष—(1) सुमेरू पर्वत के बारे मे कहा जाता है कि यह एक सोने का पहाड है और इस पर धन का देवता कुबेर रहता है।

(2) इसमे अनुप्रास तथा पुनरुक्ति अलकार है।

तिन्ह महं अहा जो नाम परेवा, हिए सवरि चित्रावलि सेवा।
उत्तर दिसा दीप अति भला, धौलागिरी पर्वत कहं चला॥
प्रथमहिं (क) नगर कोट कर फेरी, काशमीर पुनि तिब्बत हेरी।

हरद्वार गै गंग अन्हावा, मांगी हींछा सिभ मनावा ॥
सिरीनगर गढ़ देखि कुमाऊं, खिसिया लोग बसहिं तेहि गाऊं ।
पुनि बदरी केदार सिधारा, ढूंढा फिरि फिरि सकल पहारा ॥
दुरगम देखि मगन कर देसा, चला ताकि नेपाल नरेसा ।
बांक कोट बसगित बहुत, औ चारिहुं दिसि ताल ।
अमर पुरी जानहुं बसी, जाउ धरा नैपाल ॥2॥

शब्दार्थ—तिन्ह=उन । कोट=पर कोटा । दिसा=दिशा । भला=अच्छा । होरी=देखा । अन्हावा=स्नान करना । हींछा=इच्छा । गढ=किला । गाऊं=गाव । दुरगम=दुर्गम । मगन=मग्न । बाक=टेढ़ापन । बसगित=वसति ।

व्याख्या—कवि कहता है कि उनमे से एक का नाम परेवा था । उसने अपने हृदय मे चित्रावली की सेवा की ठान रखी थी या बात बिठा रखी थी । उत्तर दिशा की ओर एक अच्छा-सा दीप है । वहां पर धौलागिरी नाम का पर्वत है । सबसे पहले उसने नगर के परकोटा का चक्कर लगाया । काश्मीर देखने के बाद तिब्बत की ओर दृष्टि घुमाई । हरिद्वार जाकर गंगा मे स्नान किया । शिव की उपासना कर उसने मनाया कि वह उसकी इच्छा की पूर्ति करें । कुमायूं में श्रीनगर का किला देखा । उस गांव मे खिसिया जाति के लोग रहते थे । फिर वह बद्रीनाथ और केदारनाथ गया और इस प्रकार सारे पहाड़ों पर घूमता-फिरा । इन प्रदेशों की दुर्गमता को देखकर वह मग्न हो गया । नेपाल के राजा को देखकर चलने लगा अर्थात् नेपाल देश की ओर चलने लगा । उसने देखा कि वहां का किला बहुत टेढा-मेढ़ा या भयकर था और वहां पर चारों दिशाओं में तालाब-ही-तालाब थे । ऐसा लगता था मानो वहा पर इन्द्र की पुरी बसी हुई हो और उसका नाम नैपाल रख दिया हो ।

विशेष—(1) उत्तर दिशा मे नैपाल के मार्ग में पड़ने वाले नगरों के नाम गिनाए हैं ।

(2) इसमे अनुप्रास तथा पुनरुक्ति अलंकार है ।

पतिहि अपूरब ताल सुहावा, इसिकंदर जनु रतन बनावा ।
घाट बंधाए सब चिकनाई, चहुं दिसि फेर आरसी लाई ॥

तिरहिं होइ पानी कर धोखा, देखि पिआस पाव संतोखा।
पुनि दुइ नदी सुहावनि बही, उत्तम वेदव्यास जस कही॥
नागमती अहि मुख ते आई, बागमती नाहर मुख पाई।
तीरथ जानि जगत चलि आवा, अंग धोइ सब पाप नसावा॥
बारह मास पटन पुनि घिरी, बरहो मास जातरा भिरी।
नर नारी सुंदर सबै, ससि मुख अधर रसाल।
नैन परेवा थकित रह, देखि नगर नैपाल॥3॥

शब्दार्थ—अतिहि=बहुत। अपूरब=अपूर्व। सुहावा=सुन्दर। इसिकंदर=सिकन्दर। जुलकरन=जुन कर नैन सिकन्दर (रूमी) की उपाधि। खनावा=खुदवाया। गच=पक्का फर्श। आरसी=शीशा, सीढ़ी। तिरहि =किनारे। पटन=पट्टन शहर।

व्याख्या—कवि नैपाल नगर के तालाब तथा नदियों का वर्णन करते हुए कहता है कि वहा पर बहुत ही अपूर्व तालाब शोभायमान थे। इसे जुलकर नैन सिकन्दर ने खुदवाया था। इसके चारो ओर घाट, तथा चिकना पक्का फर्श बनवाया गया था। फिर चारो ओर सीढ़िया भी बनवाई गई थी। वहा किनारे पर पानी का धोखा हो जाता था और प्यासे को पानी देख कर संतोष हो जाता था। फिर वहा पर दो सुन्दर नदियां भी बहती थी। इनकी उत्तमता का बखान वेदव्यास जी ने भी किया था। इनमे से एक नागमती साप के मुख से निकलती थी तथा नागमती शेर के मुख थे। इन स्थानो को तीर्थ मानकर सारा ससार चला आता था। यहां पर अपने अग धोकर या स्नान करके वे अपने पापो को नष्ट करते थे। बारह महीने शहर तीर्थ-यात्रियो की भीड से भरा रहता था। यहा की यात्रा बारहो मास चलती थी। इस नगर के रहने वाले सभी नर-नारी सुन्दर थे। उनके मुख रूपी चन्द्रमा पर सुन्दर ओंठ थे। नैपाल नगर के दृश्य को देखकर परेवा के नेत्र थक गये अर्थात् वह ठगा-सा देखता ही रह गया।

विशेष—(1) इसमें नैपाल नगर का महात्म्य बताया गया है।

(2) लोग तीर्थ-यात्रा करके पुण्य-लाभ प्राप्त करते थे। इस तथ्य पर भी कवि ने प्रकाश डाला है।

(3) इसमे अनुप्रास तथा रूपक अलंकार है।

घर घर नगर लीन्ह तहं फेरी, राउ रंक देखे तहं हेरी।
रूप सरूप लोग सब आहा, सो न मिलै जा कहं चित चाहा॥
जहं न होइ सो प्रान पियारा, बसत देस सब जानु उजारा।
चला नगर तजि परबत ओटा, परी दिष्टि एक कंचन कोटा॥
हीरा रतन पदारथ मोती, जगमगाइ सब मानिक जोती।
कहेसि जाइ देखों एहि ठाऊं, लागत अतिहि सुहावन गाऊं॥
हियें चाउ भइ पाव व लावा, जोगी जाइ न नगर नियरावा।
आइ सींव दिन नियर भौ (क) लीन्ह अतीथा बोलाइ।
धरमसाल जहं हुत रची, तहं ले गए लिवाइ ॥4॥

शब्दार्थ—राउ=राजा। रंक=गरीब। सरूप=सुन्दर। प्रान=प्राण। परबत=पर्वत। दिष्टि=दृष्टि। पदारथ=पदार्थ। मानिक=माणिक। जोती=ज्योति। ठाऊँ=स्थान। चाउ=चाव। नियरावा=पास। सींव =सीमा। अतीथ=अतिथि।

व्याख्या—कवि नैपाल नगर के लोगों का वर्णन करते हुए कहता है कि परेवा ने नैपाल नगर के प्रत्येक घर में घूम लिया तथा वहां के राजा और रंक दोनों को देखा। सभी लोग उसे सुन्दर तथा रूपवान लगे। कोई भी ऐसा नहीं मिला जिसे देखकर चित में चाहना उत्पन्न न हो अर्थात् सबसे मिलने की इच्छा होती थी। कोई भी ऐसा नही था, जो प्राण-प्यारा न लगता हो अर्थात् सभी प्राणो से प्यारे लगते थे। देश को उजिआरा या सामर्थवान व्यक्ति के अधीन जानकर सभी वहां बसना चाहते थे, परेवा नगर को छोडकर पर्वत की ओट में चला गया, वहां उसकी दृष्टि एक स्वर्ण से बने किले पर पडी उसमे हीरा और रतन तथा मोती आदि पदार्थ लगे हुए थे तथा सभी माणिक अपनी ज्योति के कारण जगमगा रहे थे या अपनी ज्योति फैला रहे थे। उसने (अपने मन में) कहा कि इस स्थान को भी चल कर देखना चाहिए। यह स्थान तो बहुत ही सुन्दर लगता है और देखने का मन करता है। इस प्रकार उसने अपने हृदय में उस स्थान को देखने का भाव-भर लिया और जरा भी देर नही लगाई, और उधर चल दिया, किन्तु वह जोगी उस नगर के निकट नही गया। उसे नगर की सीमा के निकट आया हुआ देखकर राजा के सेवकों ने उस अतिथि को बुला लिया और

राजा धरमसाल ने जहां अतिथिशाला बनवा रखी वहां लिवा ले गये ।

विशेष—(1) इसमें नैपाल के राजभवन की सुन्दरता तथा उसके वैभव का वर्णन किया गया है ।

(2) इसमे अनुप्रास एवं पुनरुक्ति अलंकार है ।

गै जोगी तहं देखै व्याहा, अतिथि सहस एक बैठे आहा ।
ठाढ़े सबै राउ औ राना, सेवा करहि जैसा मनमाना ।।
भांति-भांति पकवान जेंवावहिं, औ अपने कर पान खियावहिं ।
जो इच्छा मन मांगे कोई, बेगहिं आन पुरावै सोई ।।
देखि अतीथ सबै रहंसाए, सेवा कहं चलि आगे आए ।
आदर सहित आनि बैसारा, पहिलें लै जल पांव पखारा ।।
ला पाछें लाए पकवाना, खेउं गोसाईं जो मन माना ।
जोगी कछू न जेंवई, पूछें कहे न बैन ।
चरचै आनन चहू दिस, कीन्हें चंचल नैन ।। 5 ।।

शब्दार्थ—अतिथि=मेहमान । ठाढे=खड़े । मनमाना=मन की इच्छानुसार । जेवावहि=जिमाना । वेगहि=शीघ्र । पुराके=पूरी करते हैं । रहसाए=आनन्दित हुए । बैसारा=बिठाना । पखारा—धोया । पाछें=पीछे । गोसाईं=स्वामी । जेंवई=खाता । चरचें=जाचता था ।

व्याख्या—कवि राजा की अतिथिशाला का वर्णन करते हुए कहता है—कि परेवा जोगी के वेश मे जब वहां पहुँचा तो उसने देखा कि वहा पर एक सहस्र अतिथि एक साथ बैठे हुए हैं । वहां राजा और राणा सभी लोग खडे हुए हैं और उन अतिथियो की मनोइच्छा के अनुसार सेवा कर रहे हैं । वे उन्हे अनेक प्रकार के पकवान खिला रहे थे और भोजन खिलाने के पश्चात् अपने हाथ से उन्हें पान खिला रहे थे । जो कोई अपने मन में इच्छा कर कुछ मागता था, शीघ्र ही उसकी वही इच्छा पूरी कर दी जाती थी । अतिथियो को देखकर सभी आनन्दित हो रहे थे और उन्हे देखकर सब उनकी सेवा करने के लिये आगे बढ आते थे । उसे आदर सहित बैठाया जाता था फिर पहले पानी लेकर उसके पैर धोए जाते थे । उसके पश्चात् उसके खाने के लिए पकवान लाये जाते थे जिससे कि स्वामी रूपी अतिथि मनमाना भोजन खा सके । जोगी (का वेष धारण किए परेवा) ने कुछ भी

नही खाया और कोई कुछ पूछता तो बोलता भी नही था। वह अपने नेत्रों को चंचल बनाकर सभी लोगों को परख रहा था।

विशेष—(1) प्राचीन समय में भोजन करवाने से पूर्व अतिथियों के पैर धुलवाये जाते थे। उसके पीछे उद्देश्य यही था कि पैदल चलकर आये अतिथि के पैर धूल और कीटाणु रहित हो जाएं क्योंकि खाना खाने की प्रथा बैठकर खाने की थी।

(2) इसमें अनुप्रास तथा पुनरुक्ति अलंकार है।

जोगि न जेंवा रहे जेंवाई, काहू कहा कुंअर पहं जाई।
धरमसाल एक जोगी आवा, चित्त चंचल बैराग जनावा॥
नहि जानहि दुहुं का चित जानी, अन्न न खाइ पियै नहि पानी।
पूछें कहै न एकौ बाता, पियर बदन जस ब्याकुल राता॥
चंचल नैन चहूं दिस हेरा, चरचै पुनि आनन सब केरा।
पलक न लाउ जानु नहि सोवा, ढूंढत फिरै जानु कछु खोवा।
धरमसाल की नीत न होइ, भूंखा जाइ इहां हुत कोइ॥
भइ आयसु ऐसी कहा, वेगिहि आनहु सोइ।
मैं चूक्यों सेवा कछू, तातें रिसि जिय होइ॥6॥

शब्दार्थ—जेंवा=जीमना या भोजन करना। काहू=किसी ने। धरम साल=धर्मशाला, अतिथि शाला। दुहुं=द्वन्द्व। पियर=पीला। राता= अनुरक्त। चरचै=परखना। नीत=नीति, नियमा हुत=से।

व्याख्या—कवि कहता है कि जोगी के खाना न खाने की तथा उसकी दशा की बात कुंअर तक पहुँची। भोजन करवाने वालों ने देखा कि जोगी भोजन नहीं कर रहा। उनमें से एक ने जाकर कुंवर से कहा कि धर्मशाला में एक जोगी आया है। उसका चित्त बड़ा चंचल है किन्तु वह ऊपर से वैरागी बना हुआ है। उसके चित्त मे क्या द्वन्द्व चल रहा है यह बात हम नहीं जानते। न वह अन्न खाता है न पानी पीता है। कोई उससे पूछता है तो एक भी बात का उत्तर नही देता है। उसका मुख पीला पड़ा हुआ है जैसे उसे किसी से प्रेम हो। उसके नेत्र चंचल हैं और वह चारों ओर देख रहा है और सबके मुखों को भली भांति परख रहा है। वह पलक भी नहीं झपकाता और लगता है मानो वह काफी समय से सोया भी नहीं है। वह ऐसे ढूंढ़ता फिरता है मानो उसका कुछ खो गया हो। यह धर्मशाला की नीति

या नियम नही है कि वहां से कोई व्यक्ति भूखा चला जाए। यह बात सुनकर कुअर ने कहा शीघ्र ही उसे यहां लेकर आओ। मुझसे किसी की सेवा करने में कोई गलती हो गई है इसलिए वह अपने मन में क्रोध ठाने बैठा है।

कुंअर पास तब जोगी आना, जोगी कुंअर देखि पहचाना।
चित रहसा जानहुं निधि पाई, कंथा महं जोगी न समाई।
पीत बरन जु अहा भा राता, अति हुलास कपेउ सब गाता॥
देखि कुंअर आदर बहु कीन्हा, निकट पाट बैठन कहं दीन्हा।
विनती कीन्ह सुनो हो देवा, कस न धरम कै मानहु सेवा॥
हम सेवक तुम्ह देव गोसाईं, सेवक हुते चूक बहु ठाईं।
रिस तजि जेंवहु जेंवन देवा, होउं सनाथ आज तुम्ह सेवा॥
कहेसि कुंअर सुनु धरमतरु, अस लागेउ तुअ भाग।
जरि पताल पाली सरग, हौंठा फल तेहि लाग॥7॥

शब्दार्थ—चित=मन। रहसा=रहस, आनंद। राता=लाल। पाट आसन। हुलास=हुलसित, प्रसन्न। गोसाईं=स्वामी। चूक=गलती। रिस=क्रोध। जेंवन=भोजन। भाग=भाग्य। जरि=जलना। पाली=पाला, किनारा।

व्याख्या—कवि कहता है कि कुंवर की आज्ञानुसार जोगी को कुंवर के पास लाया गया। जोगी कुंवर को देखते ही पहचान गया। उसका चित्त आनदित हो उठा। उसे लगा मानो उसे कोई खजाना मिल गया और वह जोगी अपनी कथा में फूला नही समा रहा था। उसका पीला वर्ण अनुराग के कारण लाल हो गया और अति प्रसन्नता से उसका सारा शरीर कापने लगा। कुंवर ने उसे देखकर बहुत अधिक आदर दिया तथा अपने निकट बठने के लिए आसन दिया। वह कहने लगा कि मेरी तुमसे विनती है देव उसे सुनो। आपने धर्मशाला के अतिथि सत्कार को क्यों नही स्वीकार किया। तुम हमारे देवता हो, स्वामी हो, हम आपके सेवक है। यदि किसी स्थान पर सेवक से कोई गलती हो गई हो तो आप अपने क्रोध को छोड दीजिए और हे देव! जाकर भोजन कीजिए। जिससे हम लोग आपकी सेवा करके सनाथ हो जाएं। कुंवर के इतना कहने के बाद जोगी ने कहा हे धर्मतरू सुन! हम तेरे भाग्य से आये हैं। तुझे मनोकामना रूपी फल के मिलने के कारण पाताल

जल गया है तथा स्वर्ग पर पाला पड़ गया है। या पाताल से लेकर स्वर्ग के किनारे तक सब जल गये हैं।

विशेष—(1) घरमतरू में रूपक अलंकार है।

> जा दिन तें हम गुरु बिछोवा, अन्न न जेंवा नींद न सोवा।
> भूख नाहिं औ नाहिं पियासा, नांउ अधार रहइ घट सांसा॥
> दक्खिन देस जात्र जिन्ह देखा, रूपनगर कबिलास बिसेखा।
> बसे गुरु तेहि नगर सोहावा, चेला देस बिदेस फिरावा॥
> जोग अगिनि जब हिए प्रचारी, पल महं कीन्ह भसम रिसिजारी।
> काया जोग अहे रिसि रोगू जो रिसि करै सो नासै जोगू।
> कुंअर कहा कस देस तुम्हारा, औ को देस बसावन हारा॥
> मो सौं देस बखान करु, कैस नगर कस भूप।
> कौन लोग तहवां बसें, पुनि गुन कौन अनूप॥ 8॥

शब्दार्थ—बिछोवा=बिछोह। जेंवा=खाया। नाऊं=नाम। घट=शरीर। कबिलास=कैलाश। बिसेखा=विशेष। बिदेस=विदेश, परदेश। प्रचारी=परचाया, सुलगाया। बसावनहारा=राजा। अनूप=उपमा रहित, बेजोड़।

व्याख्या- योगी कहने लगा कि आप जिस दिन से अपने गुरु से बिछुड़े हैं, उस दिन से हमने न पेट भर अन्न खाया है और न नींद भर कर सोये हैं। न हमें भूख लगती है, न प्यास। केवल उसके नाम के आधार पर ही हमारी सांस चल रही है। दक्षिण दिशा मे जाकर जिन्होंने देखा है वे जानते हैं कि रूपनगर विशेष रूप में कैलाश के समान है। उसी सुन्दर नगर में हमारे गुरु रहते हैं और उनके चेले देश-विदेश में फिरते हैं। जब हृदय में योग की अग्नि जलाई, तो पल-भर में सारे क्रोध को जलाकर भस्म कर दिया। शरीर ने जोग धारण कर लिया है और अब क्रोध रोग के समान है। यदि क्रोध को प्रकट किया जाता है तो योग नष्ट हो जाता है। भाव यह है कि इसीलिए इस बारे में कुछ भी नहीं कह सकते। कुंअर ने पूछा कि तुम्हारा कौन-सा देश है। मुझे उसके बारे मे बताओ। वह कैसा नगर है तथा वहां का कौन राजा है। वहां कौन लोग रहते हैं अर्थात् कौन-सी जाति के लोग बसते हैं और उनमें से कौन से बेजोड़ गुण हैं।

जोगी कथा कहब अनुसारी, सुनहु कुंअर यह बात रसारी।
रूपनगर सो उत्तिम देसा, जनु कबिलास आइ भुइं बंसा॥
(फ) धन सो नग्र धन उत्तिम देसा, चित्रसेन जहं राउ नरेसा।
ऊंच नीच घर ऊंच उंचाए, चित्र कटाउ अनेक बनाए॥
राउ रंक घर जानि न जाई, एक ते एक चाह अछवाई।
बेल चबेली कुंद नेवारी, घर घर आंगन फूलि फुलवारी॥
लीपे चदन मेद अवासा, भीत बैठि लेहि अलि बासा।
मृगमद चोबा कुमकुमा, खोरि खोरि महकाइ।
सुर नर मुनि गंधरब सब, रहे सुबास लुभाइ॥9॥

शब्दार्थ—रसारी=रसीली। कविलासा=कैलाश। धन=धन्य। नग्र=नगर। उत्तिम=उत्तम। राउ=राजा। रंक=गरीब। नवारी=जूही। फूलि=फूली हुई। मेद=भूमि। आवासा=घर। भीत=दीवार। मृगमद=कस्तूरी। जोवा=जोबा, कई सुगन्धित पदार्थों मिला द्रव।

व्याख्या—कवि रूपनगर का वर्णन करता हुआ कहता है कि जोगी ने कुंअर के पूछने के अनुसार कथा कही है कुंअर यह रसीली या मधुर बात सुनो! रूपनगर एक उत्तम देश है उसे देखकर ऐसा लगता हो मानो पृथ्वी पर कैलाश पर्वत उतर आया हो। वह नगर भी धन्य है। वहा का राजा चित्रसेन है। उस नगर के मकान व्यक्तियों की ऊंची और नीची स्थिति के अनुसार ऊंचे और नीचे बने हुए हैं और उनमे अनेक प्रकार के चित्र उरेहे गये हैं। राजा और गरीब के घर मे भेद नही जाना जाता क्योंकि वे लोगों की इच्छा के अनुसार एक से एक अच्छे मकान बने हुए हैं। उन पर चमेली जुही आदि की बेलें चढी हुई हैं तथा कमल खिले हुए हैं। इस प्रकार प्रत्येक घर मे फुलवारी फूलि रही है। लोग अपने मकान की भूमि को चदन से लीपते हैं और उन घरों की दीवारों में भौरों के समान वन्द रहते हैं। कस्तूरी, सुगंधित पदार्थ, कुमकुम आदि से प्रत्येक गली महकती है और वहां की सुगंधि देवता, मनुष्य, मुनि, गंधर्व सभी को लुभाती है। भाव यह कि सुगन्ध के कारण सभी वहा पर आते हैं।

विशेष—इसमे अनुप्रास रूपक तथा अत्युक्ति अलकार है।

चित्रसेन अति राउ भुवारा, जस रवि तपै तेज मनियारा।
जेहि घर विषम दिष्टि परिराई, वैरी तम जिमि जाइ विलाई॥

बड़ परताप अखडित राजू, अगनित शक्ति घोर दल साजू।
गुम विद्या सरि भोज न पावा, पंडितन्ह हियें हेत बहु लावा॥
दुखी न कोऊ सब सुख राता, जहं तहं चलै धरम की बाता।
सब सुखिया कोउ दुःख न जाना, ढूंढत फिरहिं लेइ को दाना॥
देस देस के राजा आवहिं, ठाढ़ तंवाहिं बार नहिं पावहिं।
महथ गरब अति मान तहं, रहै न एकौ अंक।
रूप नगर की खोरि महं, राउ होहिं सब रंक॥10॥

शब्दार्थ—भुवारा=भुआल, राजा। मनियारा=जौहरी, पारखी। विषम=टेढ़ी। दिष्टि=दृष्टि। विलाई=छिप जाना। अनगित=अन-गिनत। हस्ति=हाथी। हेत=भलाई। राता=प्रेम। दाना=अनाज या खाने का सामान। तंवाहि=प्रतीक्षा करना। बार=गुजर प्रवेश। महथ=बड़ा।

व्याख्या—कवि राजा चित्रसेन के बारे में बताता है। परेवा ने राज कुंवर को बताया कि वहां का बहुत बड़ा राजा चित्रसेन है। उसका तेज सूर्य के समान तपता है, जिसे पारखी लोग ही समझ सकते हैं। उसकी टेढ़ी दृष्टि जिस किसी के भी घर पर पड़ जाती है वह शत्रु अधकार के समान शीघ्र ही छिप जाता है। उसका बड़ा प्रताप है और राजा प्रखंड है। उसके पास अनगिनत हाथी और घोड़ों की सुसज्जित सेना है। वह इतना गुणवान तथा विद्यवान है कि भोज जैसा गुणी और पंडित भी उससे जीत नहीं सकते। वह पंडितों की भलाई के लिए बहुत से कार्य करता है। उसके राज्य में कोई दुखी नहीं है और सब लोग सुख और प्रेम से रहते हैं। जहां-तहां धर्म की चर्चा होती रहती है। इस प्रकार सब लोग सुखी हैं और कोई भी दुःख नहीं पहचानता अर्थात् दुखी नही है। वे लोग भूख से पीड़ित व्यक्ति को अनाज देने के लिए ढूंढ़ते-फिरते हैं। वहां पर देश-देश के राजा आते हैं वे खड़े होकर प्रतीक्षा करते हैं क्योंकि उनको (बिना बारी आये) प्रवेश नही मिलता। उस नगर में एक भी बड़ा गर्वीला तथा अति अभिमानी नहीं मिलेगा। रूपनगर की गली में सभी गरीब राव के भांति रहते हैं।

विशेष—(1) कवि ने चित्रसेन के प्रताप, यश तथा वैभव का वर्णन किया है।

(2) इसमे अनुप्रास, अत्युक्ति अलंकार है ।

(3) राजा भोज अपने समय का बहुत गुणी और ज्ञानी था । उसकी संस्कृत मे अनेक पुस्तकें उपलब्ध है । उसके दरबार मे अनेक गुणी पंडित रहते थे तथा देश-देशान्तर से आने वाने गुणी-पंडित का वह समुचित सम्मान करता था ।

तेहि घर पुनि चित्रावलि बारी, मात पिता की प्रान-प्यारी ।
रूप सरूप बरनि नहिं जाई, तीनिहुं लोक न उपमा पाई ।।
दिनकर बिन पावै नहिं जोरा, इंद्र लजाइ देखि मुख ओरा ।
अमरकोष गीता पुनि जाना, चौदह-विद्या केर निधाना ।
संतति आन न तेहि घर आवा, वाही एक ते सब चित्त लावा ।।
भौंह चढ़ाइ जो कबहुं रिसाई, मात पिता कर जिउ निसराई ।
औ जो चाह करै पुनि सोई, लेत देत कछु बरज न कोई ।।
दखिन दिसा पुनि नगर के, सरवर एक खनाइ ।
सखिन साथ चित्रावली, तहं नित जाइ नहाइ ।। 11 ।।

शब्दार्थ—बारी=किशोरी सुन्दर । बरनि=वर्णन । दिनकर=सूर्य । निधाना=निधान, खजाना । संतति=संतान । वाही=उसी । रिसाई=क्रोधित होना । निसराई=निसराना, निकालना । बरज=निषेध । खनाइ =खुदवाना ।

व्याख्या—कवि चित्रावली का परिचय देते हुए कहता है कि उसके घर मे चित्रावली नाम की एक सुन्दर कन्या है। वह अपने माता-पिता को प्राणों से अधिक प्यारी है । उसके रूप-स्वरूप का वर्णन अवर्णनीय है । तीनों लोकों मे उसकी तुलना करने के लिए ढूंढने पर भी कोई उपमा नही मिलती । सूर्य उसके तेजस्वी चेहरे को देखकर सूर्य का दिन या प्रकाश का कोई जोर नहीं चल पाता अर्थात् वह फीका पड जाता है । इन्द्र उसके मुख की ओर देखकर लज्जित हो जाता है । उसे अमरकोष तथा गीता का पूरा-पूरा ज्ञान है । चौदह विद्याओ का उसने अध्ययन किया है और यह विद्याएं उसकी सम्पत्ति के रूप में हैं। उस घर मे और कोई संतान नही हुई इसलिए सब उससे ही अपने चित्त को बहलाते हैं । यदि कभी क्रोध के कारण उसकी भौंह चढ़ जाती है, तो वह अपने माता-पिता पर उतार देती है । वह जो चाहती है

सो करती है, न उन्हें किसी को कुछ लेना देना है और न कोई उसे मना करता है। भाव यह है कि वह अपने माता-पिता की लाडली एकलौती संतान है। नगर की दक्षिण दिशा में एक सरोवर खुदा हुआ है वहां पर चित्रावली नित्य ही अपनी सखियों के साथ स्नान करने जाती है।

विशेष—1. इसमे चित्रावली के गुणों पर प्रकाश डाला गया है।

2. इसमें अनुप्रास, अनन्वय, प्रतीप, अलंकार है।

कहा सराहौं सरावर तीरा, पानि मोति तहं कांकर हीरा।
अति औगाह थाह नहिं पाई, विमल नीर जहं पुहुमि देखाई।।
अति अमोघ औ अति विस्तारा, सूझ न जाइ वारहुल पारा।
घाट बंधाए कंचन ईंटा, सरग जाइ जनु लाग्यो भीटा।।
ऊपर ताल पानि जहं ताईं, ठांव ठांव चौखंडि बनाईं।
औ जहं तहं चौरा कै लीन्हें, निसि दिन रहहिं बिछावन कीन्हें।।
जहां एक दिन करैं निवासा, सोई ठांव होई कविलासा।
सुख समूह सरवर सोई, जग दूसर कोउ नाहिं।
मानुष कर का पूछिये, देवता देखि लोभांहि।।12।।

शब्दार्थ—कहा=क्या। सराहौं=सराहना करना। तहं=वहां। कांकर कंकड़। औगाह=अवगाह, चाहरा। विमल=स्वच्छ। पुहमि=पुहुमी, भूमि। वारहुत=किनारा। पारा=छोर। भीटा=टीला। ताईं=तक। चौखंडि=चार खंड। चौरा=चबूतरा। बिछावन=बिस्तर। छिन=क्षण। कविलासा=कैलाश।

व्याख्या—कवि कहता है कि उस सरोवर के घाट की मैं क्या सराहना करूं। जहां का पानी मोती के समान तथा कंकड़ हीरे के समान चमकते हैं। वह सरोवर अति गहरा है और उसकी गहराई का पता नहीं लगता। उसका पानी इतना स्वच्छ है कि उसके नीचे की भूमि भी दिखाई पड़ती है। वह अति अमोघ है और बहुत ही विस्तृत है। पानी की अधिकता से उसके किनारे का छोर भी दिखाई नही पड़ता। उस पर सोने की ईंटों से घाट बनाया गया है। उससे लगा हुआ इतने ऊचे टीले हैं मानो वह स्वर्ग को जा रहा हो। ऊपर से जहां तक पानी दिखाई देता है वहा तक तालाब ही तालाब है। उस पर जगह-जगह चार खड के बुर्ज बनाये गये हैं और जहां

तहां चबूतरे भी बनाये गये हैं। वहां पर दिन-रात बिस्तर आराम करने के लिए बिछे रहते हैं। जहां एक क्षण के लिए भी कोई रह जाता है वही स्थान कैलाश के समान पवित्र हो जाता है। वह सरोवर सब प्रकार के सुखों का समूह है और उसके समान संसार मे दूसरा कोई स्थान नही है। मानव की क्या बात पूछना अर्थात् क्या कहना, उस स्थान को देखकर तो देवताओ के मन मे भी वहा रहने का लोभ आ जाता है।

विशेष—1. सरोवर के अलौकिकत्व का चित्रण किया गया है।

2. इसमें अनुप्रास, उल्लेख, उत्प्रेक्षा उपमा अतिशयोक्ति अलंकार हैं।

भीतर सरवर पुरइन पूरी, देखत जाहि होइ दुख दूरी।
फूले कवल सेत औ राते, अलि मकरंद पियहिं रस माते॥
बासर कुसुम कुमुद रह फूला, सब निसि नषत चांद रह भूला।
तोरि कंवल केसर झहराही, केसरि बास आव जल माही॥
हंस झुण्ड कुरिलहिं चहु ओरा, चकइ चकवा पौरहिं जोरा।
संवरत ताहि सिरायो हीया, चातक आइ पानि सो पीया॥
औ जित पंछी जलके आए, केलि करत अति लाग सोहाए।
रहसहिं क्रीड़ा वृंद बस, भौंर कंवल (क) कहरांहि।
निसि दिन होंहि अनंत तहं, देखत नैन सिरांहि॥13॥

शब्दार्थ—पुरइन=कमल का पत्ता। सेत=श्वेत। राते=लाल। बासर=दिन। कुमुद=रात को खिलने वाला कमल। नषत=नक्षत्र, तारे। भूला=खोया सा। झहराही=खिलना। कुरिलहि=क्रीड़ा करना। पौरहिं=तैरना। सवरत=सभलना। सिरायी=ठडा होना। हीया=हृदय। वृंद=झुंड। सिरहिं=सराहना।

व्याख्या—कवि कहता है कि सारा सरोवर कमल के पत्तो से भरा हुआ है जिसे देखकर दुख दूर हो जाते हैं। वहां पर श्वेत और लाल वर्ण के कमल खिले हुए है। भौरे उनका रस-पान करके मस्त होते हैं। दिन में कमल तथा रात्रि को कमुदिनी खिलते हैं। उसकी सुन्दरता को देखकर रात्रि में सभी नक्षत्र और चन्द्रमा खोया सा रह जाता है। कमल को तोड़ने पर केशर झड़ने लगती है और केशर की सुगधि जल मे व्याप्त हो जाती है। हंस के झुण्ड चारो ओर क्रीडा करते रहते है। चकवा चकई के जोड़े तैरते रहते है। उनके

संभलते देखकर हृदय में ठंडक पड़ जाती है। चातक आते हैं और उसका पानी पीते हैं। जितने भी जल-पक्षी यहां आते हैं, वे सब तरह-तरह की क्रीड़ा करते हुए बड़े सुन्दर लगते हैं। इन जल पक्षियों के झुण्ड की क्रीड़ा में एक रहस्य छिपा है।·कमलों पर भौंरों की पंक्ति फहराती हुई दिखाई पड़ती है। रात-दिन यहां पर इतनी अधिक क्रीड़ा होती है कि उसको देख-देखकर नेत्र सराहना करते हैं।

विशेष—1. कवि ने सरोवर की अलौकिकता का वर्णन किया है। इसी कारण कमल नाल से केशर झड़ने लगती है तथा चातक जो केवल वर्षा की प्रथम बूंद पीता है वह भी उसका पानी पी लेता है।

2. इसमें अनुप्रास तथा अतिशयोक्ति अलंकार है।

सरवर तीर पछिम दिसि जहां, चित्रावलि की बारी तहाँ।
सीतल सघन सुहावन छाहीं, सूर किरिण (ख) तहं संचरै नाहीं॥
मंजुल डार पात अति हरे, औ तहं रहहि सदा फर फरे।
तुरंज जंभीरी अति बहुताई, नेबू डारन गलगल जाई॥
अमिरितकर औ दाड़िम दाखा, संतति जियै निमिष जो चाखा।
नरियर और सोपारी लाई, कटहर बड़हर कोऊ न खाई॥
आंब जमुनि लै एक दिसि लाए, बर पीपर तहं गनत न आए।
मूर सजीवन कलपतरु, फल अमिरित मधु पान।
देउ दइत तेहि लाग भर्जाहि, देखत पाइय प्रान॥14॥

शब्दार्थ—पछिम=पच्छिम। दिसि=दिशा। बारी=घर। सघन=घने। किरिण=किरण। संचरै=संचार करना, पहुंचाना। मंजुल=सुन्दर। डार=डाल। फर=फल। फरे=फलते हैं। तुरंज=चकोतरा। नेबू=नींबू। गल गल=एक फल नींबू की जगह खटास के लिए प्रयोग होता है। दाड़िय=अनार। दाखा=अगूर। निमिप=क्षण। कटहर=कटहल। बड़-हर=खट्टा मिट्ठा फल। देउ=देव। दइत=दैत्य।

व्याख्या—कवि कहता है कि उस सरोवर के किनारे की पश्चिमी दिशा मे चित्रावली का घर है। वहां पर सघन वृक्षों के कारण बहुत ही शीतलता है तथा सुहावनी छाया छाई रहती है। वहां पर सूर्य की किरणें नीचे भूमि पर नही संचार करती या पहुंचती थी। उन वृक्षों की डालें बहुत ही

सुन्दर थीं तथा उनके पत्ते बहुत ही हरे-भरे थे। वहां सदैव फल फलते रहते हैं। वहां पर चकोतरा नीबू तथा जँभीरी बहुत अधिक मात्रा में होती है। नीबू तथा गलगल डालों पर लगी रहती है। अनार तथा अंगूर अमृत के समान रसीले होते हैं। जो एक क्षण के लिए भी चख लेता है उसकी संतान भी जीने लगती है। नारियल और सुपारी का तो लोग उपयोग कर लेते हैं। कटहल तथा बड़हर को कोई नहीं खाता है। आम और जामुन तो एक दिन आते हैं। बड़ तथा पीपल के वृक्ष इतनी अधिक संख्या म ह कि उनकी गिनती ही नही हो सकती। वहा संजीवनी (बूटी) तथा कल्पवृक्ष के भी अनेक वृक्ष हैं तथा वे अमृत के समान मधुर रस से युक्त होते हैं। देवता और दैत्य वहां पर भजन करते हैं तथा उस स्थल के सौंदर्य को देखकर प्राण पाते हैं। अर्थात् उन्हें नया जीवन मिलता है।

विशेष—(1) यहां पर तालाव के किनारे के अनेक वनस्पतियां तथा फलदार वृक्षो का वर्णन किया गया है।

(2) इसमे अनुप्रास तथा उपमा अलंकार है।

कोकिल निकर अंमिरित बोलहिं, कुंज कुंज गुंजत बन डोलहिं॥
सारी सुआ पढ़ं बहु भाखा, कुरलहिं बैठि बैठि तरु साखा।
पवई आपन आपन जोरी, छकी फिरहिं कुरलहिं चहुँ ओरी॥
खंजन जहं तहं फरकि देखावें, दहिअल मधुर वचन अति भावें।
मोर मोरनी निरतहिं बहुताई, ठौर ठौर छवि बहुत सोहाई॥
चलहिं तरहिं तहं ठुमुकि परेवा, पंडुक बोलहिं मृदु सुख देवा।
बहु कटनास रहहिं तेहि पासा, देखि सो संग भाग जेहि वासा (क)॥
भंगराज औ भृंगी, हारिल चात्रिक जूह।
निसि वासर तेहि बारिमहं, कुरलहिं पंछी समूह॥15॥

शब्दार्थ—कोकिल=कोयल। अमिरित=अमृत। कुंज=छोटे पेड़ों के नीचे बैठने का स्थान। सारी=सारिका, मैना। सुआ=तोता। भाखा=भाषा। कुरलहि=कलरव करना। जोरी=जोड़ी। फरकि=फड़फड़ाकर। निरतहि=नृत्य करते हैं। ठौर=स्थान। तरहि=तरह। पडुक=कबूतर की जाति का हल्के कत्थई रंग का पक्षी। कटनस=नीलकंठ। वासा=जुर्रा एक शिकारी चिड़िया। भंगराज=एक चिड़िया, भंगरा। भृंगी=एक

कीड़ा । चाजित=चातक । जूह=झुण्ड । वारिमेंह=घोंसलों मे ।

व्याख्या—कवि का कथन है कि उस तालाव के पास कोयल अमृत के से मीठ स्वर में बोलती थी तथा अपनी बोली से वहां के कुंजों-कुंजों मे डोल कर गुंजा देती थी । वहां पर रहने वाली मैना और तोता अनेक भाषाओं को सीखते है । तब वे पेडों की शाखाओं पर बैठ-बैठकर कलख करते हैं । अपनी-अपनी जोडी बनाकर वे चारों ओर खूब छककर कलख करते फिरते है । खजन पक्षी जहां-तहां अपने पंखों को फड़फड़ा कर दिखाता है। दहिवल पक्षी अपने मधुर स्वर मे गाता हुआ सभी को अच्छा लगता है । मोर मोरनी के जोड़े बहुत नृत्य करते हैं और स्थान-स्थान पर उनकी सुन्दरता बहुत ही सुहाती है । परेवा पक्षी जहां-तहां तरह-तरह-तरह से ठुमकि कर चलते है । पंडुक पक्षी कोमल ध्वनि मे बोलता हुआ बहुत अच्छा लगता है और सुनने वालों को सुख देता है । उसी के पास बहुत से नीलकंठ पक्षी भी रहते हैं । उसके साथ ही एक भाग मे जुर्रा नाम की शिकारी चिड़िया भी रहती है । मंगरा नामक चिड़िया और मृगी नामक कीडा या भौंरे, तोते, चातको के झुंड के झुंड रहते हैं । रात-दिन वे वहा अपने-अपने घोंसलों मे इन पक्षियों के समूह क्रीड़ाएं एवं कलरव करते रहते है ।

औ पुनि रहै मांझ जहं बारी, चित्रावलि लाई फुलवारी ।
सोनजरद नागसेर फूले, देखि सुदरसन दिष्ट जो भूले ।।
जाही जूही अति बहुताई, अनवन भांति सेवती लाई ।
बनवेला सतवर्ग चंबेली, रायबेल फूली सुखवेली ।।
करना केतकि वास नेवारी, चंपकली जनु कुंदि उतारी ।
कदम गुलाव लाग बहु भांती, औ बसाहि बकुचन की पांती ।।
लौलचिदी फूली औ मूदी, जनु सिगार हरावलि गूंदी ।
पौंण बसेरा लेहिं निसि, तेहि फुलवारी पास ।
भोर भए जग प्रगटइ, तिन्ह फूलन्ह की बास ।।16।।

शब्दार्थ—माझ=मध्य । बारी=बडे पेडो का बाग । नागसेर=नाग-केसर । सुदरसन=सुदर्शन, प्रियदर्शन । सेवती=सफेद गुलाव । अनवन=विविध । चंबेली=चमेली । नेवारी=जूही या चमेली की जाति एक छोटा फूल । कुंदि=कुंद, सफेद फूल का एक पौधा, कनेर का पेड़, कमल । बकु-

चन=हाथ जोड़कर। हरावलि=हड़ावलि, अस्थिमाला । बसेरा=रात बिताने का स्थान ।

व्याख्या—कवि चित्रावली के बात का वर्णन करते हुए कहता है, कि वहां पर वड़े पेड़ों से घिरे वन के मध्य मे एक फुलवार है जिसे चित्रावली ने लगवाया है ! वहां सोनजर्द और नागकेसर के फूल फूले हुए है। वे फूले पुण्य प्रियदर्शनीय है और जो भी उन्हें देख लेता है वह ठगा-सा देखत रह जाता है। वहां पर जूही का फूल वहुत अधिक मात्रा में फूला हुआ है वहां विविध भांति के सफेद गुलाव खिले हुए है। वहा वनवेला तथा सात प्रकार के चमेली के पुष्प भी खिले हुए है। बेलों में रायबेल, सुखवेली के समान फूली हुई है। उस फुलवारी मे केतकी तथा नेवारी के पुष्पों की सुगध भरी हुई हैं। चम्पा की कली फूली हुई है ऐसी लगती है मानो कनेर का पेड़, या फूले कमल उतर आया हो। कदम्ब तथा गुलाव के अनेक प्रकार के पौधे लगे हुए है। वे दोनों पौधे इस प्रकार पंक्ति मे लगे हुए है जैसे उन्होंने हाथ जोड़ रखे हों। मौलश्री के कुछ फूल खिले हुए हैं और कुछ खिले नहीं हैं। इन्हे देखकर ऐसा लगता है मानो सिगार के लिए अस्थियों की माला गूथी गई हो। उस फुलवारी के पास रात्रि मे पवन टिकता है और सवेरा होते ही उन फूलों की सुगन्ध लेकर ससार मे प्रगट हो जाता है।

विशेष—(1) चित्रावली की फुलवारी का वर्णन करते हुए कवि ने अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्पों का वर्णन किया है।

(2) इसमे अनुप्रास, उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है।

ललित लवंग लता जहं फूली, भौंरा भौंरि कुसुम तेहि (ख) भूली ॥
नगर नगर तहं डारं जूही, गंधराज फूलहिं संवूही ॥
कस्तूरी सुगंध बिगसाहीं, ठौर ठौर सो अधिक बसाही ।
भुइंचंपा फूली बहु रंगा, मानहु दरसा रूप अजंगा ॥
सूरज भांति भांति अति राते, देखत बनं बरनि नहि जाते ।
उड़हिं पराग भौंर लपटाहीं, जनु विभूति जोगिन लपटाहीं ॥
भरकंडी भौंरन संग खेली, जोगिन संग लागि जगु चेली ।
केलि कदम नवमल्लिका, फुल चंपा सुरतान ।
छः ऋतु बारह मास तहं, ऋतु बसंत अस्थान ॥ 17 ॥

शब्दार्थ—ललित=सुन्दर। लवंग=लौंग। कुसुम=पुष्प। गंजराज=मोगरा, बेला। संबूहो=पूर्णरूप से। विगसाहीं=विकसाही विकसित होना। भुइं=भूमि। अनंगा=कामदेव। सूरज=सूर्यमुखी। विभूति=भस्म। भरकंडी=एक कीड़ा। नवमल्लिका=चमेली। फुल=फूलना, प्रसन्न होना। सुरतान=सुलतान।

व्याख्या—चित्रावली की फुलवारी का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि जहां पर सुन्दर लौंग की लता फूली हुई थी, वहां पर भौंरा और भौंरी सामान्य फूलो को समझ कर भूलकर आ जाते है। उस राज्य के शहर-शहर मे जूही के पौधो की डाल फैली हुई है और मोगरा की बेल पूर्णरूप से फूली हुई है। वस्तूरी की सुगध भी चारो ओर फैल रही है तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर अधिक थी। उस भूमि पर विविध रंगों की चम्पा फूली हुई है। उसे देख ऐसा लगता है मानो कामदेव अपना रूप दिखा रहा हो। सूर्य मुखी के अनेक भांति के पुष्प खिले हुए वहुत ही सुन्दर लग रहे है। उनकी शोभा देखते ही बनती है और उनका वर्णन नही किया जा सकता। उन फूलों से पराग (सुगंधी) उड़ती है और उनसे भौंरे ऐसे लिपट जाते है। मानो योगिनी भस्म मे लिपट गई हो या लपट गई हो। भरकंडी नामक कीड़ा भौंरों के साथ ही खेलता है। उसे देख ऐसा लगता है मानो योगिनी के सम चेली है। वहां पर कदम्ब, चमेली, अनेक प्रकार के खेल करती हैं तथा चम्पा सुलतान के समान उन्हे देखकर प्रसन्न होती है। वहां पर छः ऋतुएं तथा वारह मास सदैव रहते है तथा वह वसंत ऋतु का घर जैसा लगता है।

विशेष—यहा पर अनुप्रास, उत्प्रेक्षा तथा उपमा अलंकार है।

औ पुनि जहां मांझ फुलवारी, तहं चित्रावलि की चितसारी।
चंदन मेद कपूर मिलावा, इन्ह तिहुं मिल कै कीन्ह गिलावा॥
हीरा ईंट लगाइ ऊंचाई, देखत वनै वरनि नहिं जाई।
चुनी चूरि कै कीन्हो खोहा, मोती चूरि गच्च जग मोहा॥
अति निरमल जग दरपन कीन्हा, तहां जाइ पुनि आप न चीन्हा।
मंदिर एक तह चारि दुआरी, नगिन जरी पुनि लागु केवारी॥
कनक खंभ तहं चारि बनाए, हीरा रतन पदारथ लाए।

ठौर ठौर सब जग जरित, अस होइ रहेउ अंजोर।
जहं न रैन दिन जानिए, औ न सांझ नहि भोर ।।18।।

शब्दार्थ—मांझ=मध्य। मेद=चर्बी। गिलावा=गीली मिट्टी, गारा। चूरी=पीसकर या चूर्ण करके। खोहा=कन्दरा, गुफा। गच्च=छत बनाने का मसाला। निरमल=निर्मल, स्वच्छ। चीन्हा=पहचानना। नगीन जरी=नग जड़े हुए हों। केवारी=द्वार। अंजोर=प्रकाश।

व्याख्या—कवि चित्रावली की चित्रसारी का वर्णन करते कहता है कि उस फुलवारी के मध्य में चित्रावली की चित्रसारी है। उसमें चदन, चर्बी और कपूर मिलाया। इन तीनों के मिलने पर गारा बन गया। उससे हीरे की ईंट की चिनाई काफी ऊंचाई तक की गई। उसे देखते ही बनता है, और उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। चुने हुए मोतियों का चूर्ण किया वहां गुफा बनाई गई है मोतियों के चूर्ण को मिलाकर छत बनाने का सामान तैयार किया गया, जिसे देखते ही ससार मोहित हो जाता है। वहा का संसार दर्पण की भांति स्वच्छ है। वहां जाने पर अपने आपको पहचानना कठिन है। वहा एक मन्दिर या घर है जिसके चार द्वार है। उसके दरवाजों पर भी नग जडे हुए हैं। उसमे स्वर्ण के चार खंभे बनाए गए हैं तथा उसमें हीरा आदि रतन पदार्थ जड़े गए है। वहा के स्थान-स्थान पर वहा का ससार जडा हुआ है और उनका प्रकाश फैल रहा है। वहा रात नही होती। अतः प्रत्येक समय दिन समझना चाहिए क्योंकि वहा न प्रात होती है और रात।

विशेष—(1) चित्रावली की चित्रसारी का वैभवपूर्ण चित्रण है।

(2) इसमें अनुप्रास, अत्युक्ति तथा अतिशयोक्ति अलकार है।

तेहि मंह चित्रावलि गुन ग्यानी, आपुन चित्र लिखें अस जानी।
जौ लौं सखी दरस नहि पावहिं, भोरहिं आइ सीस तेहि नावहिं।।
और जो चित्र अहहिं तेहि माहिं, सो चित्रावलि की परछाहीं।
अस विचित्र केहि लावो जोरी, अस्तुति जोग जीभ नहिं मोरी।।
वही रग अपने रंग माहीं, ओहि के रग और कोउ नाहीं।
सौंहा न जाइ चित्र मुख हेरा, धन सो चित्र औ धन सो चितेरा।।
मानुष कहा सो देखें पावें, देवता जाहि जोहारे आवें।

कोटि चित चितसारि महं, देखत एको नाहिं।
जौं दिनकर उद्योत ही, नखत सबै छिपि जाहिं ॥ 19 ॥

शब्दार्थ—ग्यानी=ज्ञानी। आपुन चित्र लिखें=अपने चित्र बनाती है। तेहि माहि=उस स्थान पर। अस=ऐसी। अस्तुति=प्रशंसा। जोग=योग। मोरी=मेरी। ओहि के=उसके। सौहां=सोंह, सामने। हेरा=देखा। धन=धन्य। चितेरा=चित्रकार। जोहारे=जुहार करना, नमस्कार करना। मँह= में। उद्योत=प्रकाश। नखत=नक्षत्र।

व्याख्या—कवि कहता है कि उसमे गुणवती तथा ज्ञानी चित्रावली रहती है। वह अपने आप चित्र बनाती है तथा उसके बारे मे (उसका ज्ञान काफी समृद्ध है।) जानती है अर्थात् वह उन चित्रों की व्याख्या भी कर सकती है। जो सखी उसका दर्शन नहीं कर पाती वह प्रातः होते ही उसे आकर शीश झुकाती है। और जो अनेक चित्र वहां पर है वे सब चित्रावली की परछाइं मात्र हैं। उस विचित्र अर्थात् रूपवती, गुणवती तथा सुलक्षणा की जोड़ी को कहां से लावें। उसकी प्रशंसा करने के लायक हमारी जिह्वा की सामर्थ्य नहीं है। वह अपने रंग की अपने आप ही है। उसकी तुलना के योग्य कोई भी नही है। उसकी-सी सुन्दरता का और कोई नहीं मिलेगा। उसके मुख के सामने (प्रत्यक्ष दर्शन) चित्र कुछ भी नहीं है। वह चित्र भी धन्य है और उस चित्र को बनाने वाला चित्रकार भी धन्य है। मनुष्य की भला क्या विसात जो उसे देख पावे अर्थात् सामान्य जन की उस तक पहुंच नहीं है। देवता भी वहां आते हैं और उसको नमस्कार करके चले जाते हैं। चित्रावली की चित्रसारी मे सहस्रों चित्र हैं, किन्तु चित्रावली के प्रत्यक्ष दर्शन के समक्ष उनमे से एक भी नही दीखता। क्योंकि उसके मुख मण्डल से सूर्य का-सा प्रकाश निकलता रहता है, जिसे देखकर सब नक्षत्र छिप जाते हैं अर्थात् उनका प्रकाश फीका पड़ जाता है।

विशेष—(1) यहां चित्रावली के अत्यन्त सौदर्य का चित्रण कर कवि ने अन्त मे उस पर पारलौकिक नूर का भी आरोपण कर दिया है, जिससे वह सूफी सिद्धान्तो के अनुसार ईश्वर का प्रतिरूप हो जाती है।

(2) 'मानुष कहा जो देखे पावें' का भाव यह है कि कुंवर को जब देव सोता हुआ उस चित्रसारी में छोड़ आए थे, तो वह अपना चित्र चित्रावली के

चित्र के पास बना कर छोड़ आया था। यहां परेवा उसको याद दिलाकर यह बात स्पष्ट कर देना चाहता है कि उस चित्रासारी मे पुरुष का प्रवेश निषिद्ध है और वहां पर कोई नहीं आ जा सकता।

(3) इसमे उपमा, अनुप्रास, अनन्वय तथा अतिशयोक्ति अलंकार है।

लखो लिलाट दूजि कर चंदा, दूजि छाड़ि जग यो कहं बंदा।
भौंह धनुष बरुनी विषबाना, देखि मदन धनु गहत लजाना।।
बरुनी बान गडे जेहि हीये, बहुरि न निकसै जब लहुं जीये।
लोचन विमल जानु सम जोवा, निमिष जो देख जनम भर रोवा।।
अधर सुरंग जनु खाए तंबोला, अवहीं जनु चाहै हसि बोला।
लंक छीन जेहि भुंग लजाहीं, कोउ कह आहि कोऊ कह नाहीं।।
फीली चरन सराहौं काहा, अबहिं रहसि चलै जनु चाहा।
गुपुत रहै चित्तसारि महं, जग जानै सब कोइ।
सपने जो कोइ देखई, सौतुक जोगी होइ।।20।।

शब्दार्थ—लिलाट=ललाट। दूजि=दूज। बरुनी=पलको के बाल। हीये=हृदय। बहुरि=फिर। लहुँ=तक। लोचन=नेत्र। विमल=स्वच्छ जोवा=जोहना, खोजना। निमिष=क्षण भर। अधर=ओंठ। सुरंग=अच्छे रंग। तँबोला=पान। लंक=कमर। भुग=भुजंग, सूर्य। फीली=पिंडली। साराहौं कहा=क्या सराहना करूं। सौतुक=सौतुख, सामने। रहति=एकांत स्थान।

व्याख्या—कवि चित्रावली की देह यष्टि का चित्रण करते कहता है कि उसका ललाट दूज के चाद के समान दिखाई पड़ता है। दूज के चाद को छोड़करससार मे कोई और वन्दा नही है जिससे उसकी तुलना की जा सके। उसकी भौहे धनुष के समान हैं तथा पलकों के बाल जहर से बुझे हुए बाण के सदृश्य हैं। जिन्हे देखकर कामदेव का धनुष भी लजा जाता है। बरुनी रूपी बाण जिसके हृदय मे गड़ जाते है, वह जब तक जीवित रहता है तब तक नही निकल पाते अर्थात् उसके हृदय मे ही कसकते रहते हैं। उसके नेत्र स्वच्छ हैं और ऐसा लगता है मानो वह सदैव कुछ खोजते रहते हैं। जिसने उन नेत्रो को एक क्षण के लिए भी देख लिया वह जन्म भर रोता है अर्थात् पुनः देखने के लिए विकल हो जाता है। उसके ओठ सुन्दर रंग के ऐसे

लाल-लाल हैं मानो उसने पान खा रखा हो। उसके अधरों पर स्मित सदैव बनी रहती है। जिसे देखकर ऐसा लगता है मानो वे अभी हंसकर बोल पड़ेंगे। उसकी कमर इतनी पतली और लचीली है कि उसके समक्ष सर्प भी लजा जाते हैं। कोई कहता है कि यह है और कोई कहता है नही है। भाव यह कि कपट क्षीणता के कारण स्पष्ट दीखायी नही पड़ती। उसके चरण और पिंडली की क्या सराहना करूं उन्हे देखकर ऐसा लगता है मानो वह अभी गुप्त स्थान की ओर चलना चाहते हैं (अर्थात् चित्र वाले प्रेमी पुरुष की उतावली से प्रतीक्षा कर रही है। सारा संसार इस बात को जानता है कि वह अपनी चित्रसारी में गुप्त रूप से रहती है अर्थात् उसे कोई नही देख सकता। जो कोई भी उसे स्वप्न में अपने सामने देखता है (प्रत्यक्ष दर्शन करता है) वह तो कोई योगी ही हो सकता है।

विशेष—(1) चित्रावली के विभिन्न अंगों के सौंदर्य के चित्रण के साथ-साथ कवि ने इस तथ्य पर भी प्रकाश डाला है कि वह अपने प्रेमी की बड़ी उतावली के साथ मिलने की प्रतीक्षा कर रही है।

(2) चित्रावली के आलौकिक रूप का कवि ने वर्णन किया है।

(3) इसमें उपमा, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, प्रतीप तथा अन्योक्ति अलंकार हैं।

सुनी कुंअर जो चित्र की बाता, हिए हुलास कंपेउ सब गाता।
सचक भयो चित औ मन गुना, सपन जो देखा सौंतुक सुना॥
सोवत भाग अहे सो जागे, श्रवन भए सुनि जाहि सभागे।
मोहि परतीति करम की नाहीं, कहत आहि कोउ सपने माहीं॥
जौ निश्चय हौं सोअत अहौं, जनि जगाउ विधि हाहा कहौं।
कौन धरी यह आह सुभागी, देखऊ सोइ सुनेऊं सो जागी।
कौन बार यह आह सरेखा, सरवन सुना नैनन जो देखा (क)॥
यहि अंतर जनु विरह अहि, बंधन देई छुड़ाइ।
विथुरि गयो विष सकल तन, लहर चढ़ी जनु आइ॥21॥

शब्दार्थ—हिय हुलास=हृदय उल्लासित हुआ। कंपेउ=कांप गया। सचकित=सचकित, विस्मित। भाग=भाग्य। सभागे=सौभाग्य से युक्त। परतीति=प्रतीति, विश्वास। करम की नाहीं=कर्म की नहीं (चित्रावली

के चित्र के साथ अपना चित्र बनाने का कर्म)। निहचय=निश्चय। घरी= घड़ी। सरेखा=ज्ञानी।

व्याख्या—कवि कहता है कि कुअर ने जब चित्र की बात सुनी। उसका हृदय उल्लसित हो गया किन्तु उसका शरीर कांप कर रह गया। वह अपने मन मे सारी बातो का मनन करने लगा और विस्मित हो गया। उसने स्वप्न में जो कुछ भी देखा था वह सब उसने प्रत्यक्ष रूप में सुना। उसका मानो सोता हुआ भाग्य जाग गया उसके कान उन बातो को सुनकर सौ-भाग्य से युक्त हो गए। मुझे अपने कर्म का विश्वास नही है अर्थात् वह चित्र स्वप्न मे बनाया गया था। इस बात को सुनकर ऐसा लगता है जैसे कोई स्वप्न में कह रहा हो यह निश्चय है कि मैं वहा (गुफा के द्वार पर) सोया था किन्तु जब विधि ने मुझे जगाया तब से ही मैं हाय-हाय कर रहा हूं। कौन सी ऐसी यह सौभाग्यवती घड़ी आयेगी कि उसे मैं देखू और जागने पर सारी बात सुनाऊं। कौन द्वार पर यह ज्ञानी आया है जिसके बारे में जो कानो से सुना था वही नेत्रों से देखा। मेरे हृदय को मानो विरह रूपी सर्प ने जकड रखा है, कोई उसके बन्धन से छुडा दे। उसका विष सारे शरीर में फैल गया है और उस विष की लहर मानो शरीर मे ऊपर चढ़ी आ रही है।

विशेष—(1) इसमे राजकुमार की सूफी साधना के अनुसार मारिफत की दशा का वर्णन है क्योकि समस्त विचार हृदय प्रसूत है।

(2) इसमें राजकुमार अनुभूति का अंश गहरा है। सुजान उस घटना का स्मरण कर रहा है जबकि वह शिकार मे अपने साथियो से बिछुड़ कर देव की एक गुफा के द्वार पर जा सोया था। वह देव अपने मित्र के साथ राजकुमार को चित्रसारी मे सुला गया और स्वय चित्रावली की वर्ष गाठ के उत्सव को देखने चला गया। राजकुमार की रात्रि में आंख खुली तो वह स्वयं को चित्रसारी मे देखकर आश्चर्य-चकित रह गया। उस स्थिति मे उसने चित्रावली के चित्र के पास अपना चित्र बनाकर रख दिया और सो गया। देव उत्सव समाप्त होने के बाद उसे उठा लाए और गुफा के द्वार पर ही छोड दिया। इस प्रकार चित्रावली की चित्रसारी मे जाने की, चित्र बनाने की समस्त घटना स्वप्न ही बन रही।

(3) इसमे अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, स्मरण तथा उपमा अलंकार है।

गुपुत पीर परगट पुनि भई, सुलगत आगि फूंकि जनु दई।
उठी आगि सिर पालहु जरा, धाइ कुंअर जोगी पग परा॥
रही न सकेउ हिय गह भरि रोआ, नैन नीर जोगी पग धोआ।
विरह अनल जल में चखु ढरा, लोचन नीर जोगि तव जरा॥
दुहं हाथ गहि सीस उठावा, पूछत वात बकुर नहिं आवा।
सांप डसा जनु विष छहराना, घूमत रहं सुनि नहिं काना॥
दिष्टी भुअंग बंद जनु कीन्हीं, ते पढ़ि मंत्र खोलि जनु दीन्हीं।
तव जोगी कर नीर लै, मुख छिरकेसि करि हेत।
पहर एक बीते भयौ, बहुरि कुंअर चित चेत॥22॥

शब्दार्थ—गुपत पीर=विरह जन्य, गुप्त पीड़ा। सुलगत=सुलगने लगी। पालहु=पाला। धाई=दौड़कर। परा=पड़ा। गह भरि=शक्ति भर, जहां तक हो सके। अनल=आग। चखु=आंख। बकुर=शब्द। छहराना=फैला। घूमत=चक्कर खाता, मत्त। दिष्टी=दृष्टि। छिरकेसि=छिड़का। हेत=भलाई के लिए। प्रहर=पहर।

व्याख्या— राजकुमार ने जब अपने प्रेम की गहरी अनुभूति कर ली, तो उसकी गुप्त विरह जन्य पीड़ा फिर से प्रकट हो गई। उस समय ऐसा लगा मानो किसी ने उस आग को फूंक-फूंक कर पुनः सुलगा दिया हो। उसके सिर से ऐसी आग उठी जिसमें पाला जल गया। कुंअर सुजान उठा और वह योगी के चरणों में गिर पड़ा। वह अपने आपको रोक न सका और जहां तक हो सका वह रोया। उसने अपने नेत्रों के जल अर्थात् अश्रुओं से योगी के पांव धो डाले। विरह की आग आंखों के जल के साथ निकलने लगी। आंखों का नीर जब योगी पर पड़े,तो वह जलने लगा। उस योगी ने अपने दोनों हाथों से कुंअर का शीश ऊपर उठाया। योगी उससे बात पूछने लगा पर कुअर के मुंह से एक शब्द भी नहीं निकल रहा था। उस समय ऐसा लगा मनो उसे सांप ने डस लिया हो और उसका जहर फैल रहा हो। उसे चक्कर आने लगे और वह एक भी शब्द कान से नहीं सुन पा रहा था। उस विरह रूपी सर्प ने उसकी आंखो को मानो बन्द कर रखा हो। उस समय योगी ने मन्त्र पढ़ा तो कुंअर ने अपनी आंख खोल दी। तब योगी ने उसकी भलाई के लिए अपने हाथ में पानी लेकर उसके मुंह पर छींटे मारे। इस प्रकार एक पहर बीत

गया तब जाकर कहीं कुंअर को होश आया।

विशेष—(1) सूफी साधना में मानसिक स्तर की ओर संकेत करने के लिए चतुर्विध सोपानों को माना जाता है। मारिफत के भावावेशमय रूप का नाम प्रेम है। यह सूफी साहित्य का प्रिय विषय है। इस दशा तक पहुंच कर साधक अपने आपको विस्मृत करना आरम्भ कर देता है। विस्मृति की अवस्था द्वितीय सोपन है। कुंअर की मानसिक स्थिति इस सोपन के अन्तर्गत ही आती है।

(2) इसमे प्रत्युक्ति, उत्प्रेक्षा, उपमा तथा अनुप्रास अलकार हैं।

बहुरि जो कुंअरउ सोइ कै जागा, बैठ संभारि गहेसि सिर पागा।
तो पुनि कहेस ऊभ लै सांसा, ए देनिहार निरासहि आसा॥
वोह सो चित्र जो मोहि दुख दीन्हा, बरबस जीउ मोर हरि लीन्हा।
जीउ लेइ तन दूरइ डारा, हौं तो वही चित्र कर मारा॥
वही चित्र में सपने दीठा· चित माँहि वहि चित्र बईठा।
वही चित्र बिनु जीउ बिहूना, जिउ हरि लीन्ह कीन्ह तन सूना।
यही चित्र जो नैन समाना, सौं तुक सपन जाइ नाँहि जाना।
वही चित्र हम हिये महं, जो तै कीन्ह बखान।
हौं अब रहा सरीर होइ, वह भो जीउ समान॥23॥

शब्दार्थ—बहुरि=फिर। गहे कि=पकडकर। पागा=पगड़ी। ऊभ=लम्बी-लम्बी। देनिहार=देने वाले ने। निरासहि=निराशा ही, झूठी। बरबस=जबर्दस्ती। हरि लीन्हा=हर लिया। दूरइ=दूर डारा=डाला। दीठा=देखा। बईठा=बैठा। बिहूना=विकल। सौंतुक=कौतुक। तै=तुमने। बखान=वर्णन किया।

व्याख्या—कवि कहता है कि कुंअर सोकर जागा अर्थात् उसकी चेतना लौटी और उसे सब कुछ याद आने लगा तब वह सम्भल कर बैठ गया। उसने अपने सिर की पगड़ी ठीक की। फिर वह लम्बी-लम्बी सासें भर कर कहने लगा कि उस देने वाले (विधाता) ने मुझे निराशा ही दी या झूठी आशा ही दी है। वही एक चित्र है जिसने मुझको इतना दुख दिया है। उसने तो मेरे हृदय को जबर्दस्ती निकाल लिया है। उसने मेरे जीव को ले लिया है। तथा शरीर को दूर फेंक दिया है। मैं तो उसी चित्र का मारा हुआ हू।

उसी चित्र को मैंने स्वप्न में देखा है। मेरे मन में वही चित्र बैठा है। उसी चित्र के बिना मेरा हृदय विकल है। उस चित्र ने मेरे हृदय को हर लिया और शरीर को सूना कर दिया है। वही चित्र मेरे नेत्रों में (रात-दिन) समाया रहता है। यह कौतुक जो स्वप्नवत् हुआ था उसे मैं समझ ही नहीं पाया। वह चित्र जिसका आपने वर्णन किया है वह मेरे हृदय में बसा हुआ है और अब वह चित्र जीव के समान मेरे हृदय मे बसा हुआ है।

विशेष—(1) यहां कुंअर ने अपने हृदय की जिस स्थिति का बार-बार वर्णन किया है और बाद में यह स्वीकार किया है कि वह चित्र ही उसके हृदय का स्थान ले चुका है। इससे प्रेम-साधक की मानसिक स्थिति का लक्ष्य के प्रति उसकी एक निष्ठता का ज्ञान होता है।

(2) इसमें उल्लेख तथा व्यतिरेक अलंकार है।

जेहि दिन ते नैनन भा लाहा, बहुरि न पायौं कतहूं चाहा।
पंथ न पावउं केहि दिसि जाऊं, पूछौं काहि न जानउं नाउं॥
मैं निरास औ बिनु जिउ आहा, आस दई तैं जिउ घट बाहा।
आजु आसु तैं पुरएसि मोरी, तन मन धन न्योछावरि तोरी॥
अब कछु पंथ गवन जेहि पावों, चलउं बेगि खिन बिलंब न लावों।
तुम्ह जहं चहहु सिधारहु तहां, मोहि अब कहहु पंथ सो कहां॥
कै अब जाइ चित्र सो पावों, कै अपान वहि पंथ लगावों।
जिउ चित्रसारी महं रहा, देह रही हम साथ।
देहु सोई उपदेस मोहि, जेहि जिउ आवै हाथ॥24॥

शब्दार्थ—लाहा=लाभ। चाहा=इच्छा। दिसि=दिशा। नाऊं=नाम। आहा=आह। बाहा=डाला। पुर हसि=पूरी करो। पंथ गवन=किसी रास्ते पर चलना है। खिन=क्षण भर। चहहु=चाहो। अपान=पांच प्राणों में से एक, भीतर खींची जाने वाली सांस। जिउ= जीव।

व्याख्या—कुंअर अपनी अवस्था का वर्णन करते हुए योगी को बताता है कि जिस दिन से इन नेत्रों को चित्र दर्शन करने का लाभ मिला है तबसे किसी और को देखने की चाह इन नेत्रों में नही रह गई है किन्तु बेवस हूं मुझे मार्ग ही नही मिलता कि मैं किस दिशा मे जाऊं? किससे पूछूँ क्योंकि मैं तो उसका नाम भी नही जानता। मैं पूर्ण रूप से निराश हो चुका हूं और

उसके बिना यह जीव (हृदय) आह भरता रहता है अर्थात् उसको बिछुडने का दुख रात दिन अनुभव करता रहता है। आज मेरी आशा आप पूरी करो। मैंने तो आप पर ही अपना तन, मन, धन न्योछावर कर दिया है। अब मुझे बताओ कि किस मार्ग पर चलने से उसे साक्षात् रूप से पा सकता हूं। तुम शीघ्र ही चलो और क्षण भर की भी देर न करो। तुम जहां चाहो वहां तत्काल ही चल पडते हैं। मुझको अब बताओ कि किस मार्ग से चला जाय या वहा पहुंचने का कौन-सा मार्ग है। अथवा मैं उस चित्र को कहां पाऊं या अपने प्राण को उसी पथ पर लगाऊं अर्थात् पथ चलने के लिए अपने प्राण को चलाऊ। मेरा चित चित्रसारी मे रह गया और शरीर हमारे साथ लौट आया। अब मुझको वही उपदेश दो जिससे मेरा जीव मेरे साथ वापस आवे अर्थात् मैं उसे प्राप्त कर सकू ं।

विशेष—(1) साधक ने चित्र दर्शन के माध्यम से अपने लक्ष्य को देख लिया किन्तु वह यह नही जानता कि उस तक कैसे पहुंचे। इस कार्य के लिए उसे गुरु की या मार्ग निर्देशक की नितान्त आवश्यकता है। सूफी साधना के अनुसार यहा वह अपने पीर (गुरु) की आज्ञा पालन की शपथ ग्रहण करता है और अपने को उसका मुरीद स्वीकार करता है। ऐसा उसे इसलिए करना पड़ता है क्योकि उसके द्वारा वह क्रमश. रसूल अर्थात् हजरत मुहम्मद के प्रभाव से आगे बढता हुआ स्वयं परमेश्वर के समक्ष तक पहुंच जाता है।

2. इसमे अनुप्रास, स्वाभावोक्ति और अत्युक्ति अलंकार है।

जोगी कहा कुंअर सुनु बाता, अबहीं देखि चित्र तूं राता।
वह सो चित्र तै देखा नाही, जाकर ऐस चित्र परछाहीं ॥
चित्र देखि तै चित्रै जाना, ता महं अहा सो नहि पहचाना ॥
चित्रहि महं सो आहि चितेरा, निर्मल दिष्टि पाउ सो हेरा ॥
जैसें बूंद मांह दधि होई, गुरु लखाव तौ जानै कोई।
जा कहं गुरु न पंथ देखावा, सो अंधा चारिहु दिसि धावा ॥
मूरख सो जो चित्र मन लावै, सेमर सुआ जैस पछतावै ॥

यह मूरति औ चित्र जग, जो विधि सरा सुजान।
परगट देखहि नैन यह, गुपुत जो पूजहि आन ॥ 25 ॥

शब्दार्थ—अबहीं = अभी। राता = प्रेम करना, अनुरक्त होना। मह = में। अगहि = वही। चितेरा = चित्रकार। हेरा = देखता है। दधि = उदधि समुद्र। लखाव = दिखाता। चारिहुं दिसि = चारों दिशा में। धावा = दौड़ता फिरता है। सेमर = एक बड़ा वृक्ष जिसके फूल लाल होते हैं, और फलों से से रुई निकलती है। सरा = रचना की। पूजहि = पूजना।

व्याख्या—जोगी (गुरु) ने कहा हे कुंअर! तू मेरी बात ध्यान से सुन कि उस चित्र को अभी देख, जिसके कारण तू उससे प्रेम करने लगा है। वह चित्र (प्रत्यक्ष दर्शन) तो तुमने अभी देखा ही नहीं है यह चित्र तो उसकी परछाहीं मात्र है। उस चित्र का दर्शन करके ही उस असली चित्र को जाना जा सकता है। उस चित्र मे जो सौंदर्य है अहा उसे सहज मे नही पहचाना जा सकता। उस चित्र में तो वह चित्रकार या उसका बनाने वाला स्वय ही रहता है और उसको केवल निर्मल दृष्टि से देखने के बाद ही पाया जा सकता है। जिस प्रकार समुद्र में से निकलने वाली बूंद में समुद्र रहता है किन्तु जब गुरु दिखाता हैं तो उसको कोई जान सकता है। जब तक गुरु पंथ नही दिखाता तब तक व्यक्ति अन्धे के समान चारों दिशाओं में भागता फिरता है। वह मूर्ख है, जो इस चित्र की सत्यता की बात अपने मन में लाता है उसे इसी प्रकार पछताना पड़ता है जैसे तोता समेर के फूल की लालिमा को देखकर आकर्षित होता है और उसे रूप और गन्धहीन पाकर पछताता है। यह मूर्ति सत्य है और वह संसार चित्र के समान असत्य है। हे सुजान! उस विधाता ने इन दोनों की ही रचना की है। नेत्रों से इसके प्रगट रूप के दर्शन किए जा सकते हैं और जो उपासना या पूजा इत्यादि करते हैं वहीं इसके गुप्त रूप को या उसकी आंशिक प्रतिच्छवि को देख पाते हैं।

विशेष—(1) सूक्तियों के अनुसार मानव सृष्टि का चरमोत्कर्ष है और वही ईश्वर के स्वरूप की पूर्ण अभिव्यक्ति है अर्थात् जो कुछ मानव के शरीर मे निर्मित है वह ईश्वर की आंशिक प्रतिच्छावि जगत से भी अधिक है और वह उसका पूर्ण प्रतिरूप कहा जा सकता है। यही तथ्य इस चौपाई और दोहे मे व्यक्त किया गया है।

(2) इसमें अनुप्रास, उल्लेख, उत्प्रेक्षा अलंकार है।

अति सरूप चित्रवलि बारी, जनु विधि नै कर चित्र संवारी।
चित्रहि कहां जोति छवि ओती, यह सजीव यह बिनु जिउ जोती ॥
चित्र अबोल होई जग गूंगा, वोहि का बोल जस मानिक मूंगा।
चित्र कटाच्छ भाव बिनु नैना, वोहि क नैन सब मोहन सैना ॥
चित्र अडोल न डोल डोलावा, वोहि गौनत जनु हंस सोहावा।
सायक बरुनि भौंह धनु ताना, सौंरत जाहि लागु उर बाना ॥
चंदबदन तन चंपक सारी, अलि सँग फिरहि जानि फुलवारी।

कालि लगावौं उपमतेहि, अच्छर पूज न छाँहि।
सुर नर मुनि गन पथ नरहिं, दरसन पावहि नाँहि ॥26॥

शब्दार्थ—सरूप=सुन्दर। बारी=घर। विधि=विधाता। जोति=ज्योति। छवि=सुन्दरता। प्रोती=ओत-प्रोत, भरी हुई। सजीव=जीवित रूप में। जिउ=जीव सजीव। अबोल=बिना बोलने वाले। कटाच्छ=कटाक्ष। सैना=कटाक्ष। अडोल=स्थिर। डोल=हिलना-डुलना। गौनत=गमन, चलना। सायक=वाण। चन्द्र बदन=चन्द्रमुख। अलि=सखी। अच्छर=अक्षर।

व्याख्या—कवि चित्रावली के घर का वर्णन करते हुए कहता है कि चित्रावली का घर बहुत सुन्दर है उसे देखकर ऐसा लगता है मानो विधाता ने स्वयं अपने हाथों से चित्र बनाकर उसे सजाया है। किन्तु उस चित्रों में वह परम ज्योति की छवि कहां जो चित्रावली में है। चित्रावली में वह ज्योति की छवि सजीव रूप में दिखाई पड़ती है और ये चित्र बिना सजीव ज्योति के ज्योति हीन हैं। चित्र कोई शब्द बोल नहीं सकते और सारा संसार गूंगा हो गया है। उसके (चित्रावली) बोलने पर प्रत्येक शब्द ऐसा लगता है जैसे मानिक और मूंगा बरस रहे हों। चित्र में चित्रित नेत्र बिना भाव और कटाक्ष के हैं जबकि उसके नेत्र में सब प्रकार से मोह लेने की शक्ति है तथा वे कटाक्ष कर सकते हैं। चित्र स्थिर है, वे डुलाने या हिलाने पर हिल-डुलें नहीं सकते। वह चलते हुए ऐसी सुन्दर लगती है मानो हंस चल रहा हो। अर्थात् उसकी हंस की सी चाल है। उसकी भौंह धनुष के समान तनी रहती हैं तथा पलकों के बाल वाण के समान खड़े रहते हैं जिसके हृदय में ये वाण चुभ

जाते हैं वही उसके प्रेम में अनुरक्त हो जाता है। उसका मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है तथा शरीर पर चम्पई रंग की साड़ी डाल रखी है। सखियों के साथ घूमती हुई ऐसी लगती है मानो फुलवारी घूम रही हो। उसकी उपमा किससे दी जाए क्योंकि अक्षर तो उसकी छांह को भी नही पुज सकते (अर्थात् परछाई के लिए उपमान रूप में कोई शब्द नहीं है तो उसकी बात क्या ?) देव, मनुष्य, मुनिगण, प्रयत्न करते-करते मर जाते हैं, पर उसके दर्शन नही पा सकते।

विशेष—(1) इसमें चित्रावली के अलौकिक रूप का चित्रण कर कवि ने चित्र में चित्रित चित्रावली और वास्तविक चित्रावली के अन्तर को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

(2) इसमें अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा तथा अत्युक्ति अलंकार है।

बदन जोति केहि उपमा लावौं, ससिहर पटतर देत लजावौं।
ससि कलंक पुनि खंडित होई, हैं निकलंक संपूरन सोई॥
ससि बंदी जब दूजिक दोसा, ओहि बंदी नित देहि असीसा।
जो मुख खोलि करै उजियारा, नखत छपहिं होइ ससि तारा॥
नैन कुरंग कहे नहिं पारौं, खंजन मीन ताहि पर बारौं।
तीन रंग जा महंनित लहिये, तेहि कुरंग कहुं कैसे कहिये॥
जाकहुं नैन एको छन हेरा, सो विष बान क भयो अहेरा।
ऐसन चित्र अहेरिया, मारि न खोज करेइ।
जेहि उर लागे बान सो, रहसि-रहसि जिउ देइ॥72॥

शब्दार्थ—बदन=मुख। पटतर=उपमा। निकलंक=निष्कलंक सम्पूरन=सम्पूर्ण। दूजिक=मुसलमान लोग द्वितीया के चाद को देखकर वंदना करते हैं। रमजान के महीने मे मास भर रोजा रहकर द्वितीया के दिन ईद मानते हैं। वंदी=वन्दीजन, प्रशंसात्मक या वंदना के गीत गाने वाले। नछन=नक्षत्र। छपाहि=छिप जाते हैं। कुरंग=हिरन। मीन=मछली। वारौं=न्योछावर करना। कुरग=कुत्सित रंग का। छन=क्षण। अहेर= शिकार।

व्याख्या—कवि कहता है कि उसके मुख से निकलने वाली ज्योति को

उपमा किससे दी जाए यदि चन्द्रमा से उसके मुख की उपमा दी जाती है तो वह उसके मुख की ज्योति के सामने लजा जाता है अर्थात् हीन ठहरता है। चन्द्रमा मे कलक है फिर वह खडित भी होता है (पन्द्रह दिन चन्द्रमा कम होते-होते अमावस्या को छिप जाता है) इसकी तुलना मे चित्रावली का मुख निष्कलंक है और अपने आप मे पूर्ण है। रमजान के महीने मे सब चन्द्रमा की पूजा करते हैं और द्वितीया के चन्द्रमा को देखकर ईद जैसा पवित्र त्यौहार मनाते हैं। इस चन्द्रमा (चित्रावली) की नित्य ही वन्दीजन वंदना करते है और उसे आशीर्वाद देते है। यदि चित्रावली अपने मुख पर से पर्दा हटा दे या मुख खोल ले तो सब जगह प्रकाश फैल जाए। नक्षत्र इसकी ज्योति को देखकर छिप जायें तथा चन्द्रमा तारे के समान दिखाई पड़ने लगे। उसके (चित्रावली) के नेत्रो की विशालता से हिरन भी पार नही पा सकते अर्थात् उसके नेत्र हिरन के नेत्रो से भी बड़े है। उनकी चचलता पर खंजन पक्षी और मछली (की चचलता) को न्यौछावर किया जा सकता है। उसमे तीन रग (श्वेत, श्याम और रतनार (लाल) सदैव ही रहते है। इन तीनो रगो के परस्पर साथ रहने से इन्हे कुरग या बुरा रग कैसे कहा जा सकता है। जिसके (चित्रावली के) नेत्र एक क्षण के लिए भी जिस पर पड़ जाते है वही तड़पने लगता है जैसे किसी ने जहर से बुझा बाण मार कर उसका शिकार कर लिया हो। ऐसे ही चित्रावली का चित्र भी शिकारी की भाति कार्य करता है देखने वाले को वह मार देता है और उसका कोई नही मार पाता। चित्र को देखने वाले के हृदय मे वह बाण के समान लगता है किन्तु एकात मे वह उसके हृदय को बहुत आनन्द देता है।

विशेष—(1) इसमे इस्लाम धर्म के अनुसार द्वितीया के चन्द्रमा के महत्व को स्पष्ट किया गया है।

(2) नेत्र तीन रगो के बारे मे आलम कवि का एक दोहा प्रसिद्ध है—

> अमिय हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार।
> जियत मरत झुक-झुक परत, कोइ चितवन इक बार॥

(3) इसमे अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा तथा अत्युक्ति अलकार है।

औ तेहि संग अनेग सहेली, सबै सरूप अनूप नवेली।
उन्हक रूप विधि अपूरब कीन्हा, करि करि चित्र आनु जिउ दीन्हा॥
कोउ कुमुदिनी कोउ पंकज कली, एकतें एक चाहि अति भली।
कवँहि सबै कली मुंदमूंदी, भौंर चरन तें बेलिन खूंदी॥
नव चित्रिनि औ पदुमिनि जाती, सेवा करत रहत दिन राती।
आग्या होइ करहिं पै सोई, मेटि न सकै रजायसु कोई॥
औ निति ठांइ करहिं बिसरामा, जपत रहहिं चित्रावलि नामा।

निसि बासर ठाढ़ी रहहिं, लीन्हे आपन साज।
जो पउवहिं सिख एककहुं, धाइ करहिं दस काज॥२४॥

शब्दार्थ—अनेग=अनेक। सरूप=सुन्दर। अनूप=अनुपम। नवेली=नई उम्र की। अपूरब=अपूर्व। पंकजकली=कमल की कली। कली मुंद मूंदी=बन्द कली। बेलिन=चोट। जाती=जाति। आग्या=आज्ञा। रजायसु=आज्ञा।

व्याख्या—कवि चित्रावली की सखियों का वर्णन करते कहता है कि उसके साथ अनेक सखियां हैं। सब-की-सब अनुपम सौंदर्य वाली तथा नई उम्र की हैं। विधाता ने उन सभी को अत्यन्त रूपवान बनाया है। उनको एक-एक चित्र के समान पहले बनाया मानो फिर उनमें प्राण डाला। कोई कुमुदिनी के समान सुन्दर है तो कोई कमल की कली के समान। वे सभी एक से एक बढ़कर अच्छी हैं। उन्हें देखकर ऐसा लगता है मानो कलियों ने अपनी पंखुड़ी रूपी मुंह को बन्द कर रखा हो और भौंरों ने अपने पैरों की चोट से उस बेली को रूंद दिया हो। उन्हें जो काम करने

पुनि सो चित्र लिखै भल जाना, उनसों जगत न कोक सयाना।
आपन चित्र आपुनै लीखा, और को लिखै जान नहिं सीखा।
जगत चितेर रहे पचि हारी, ओकर चित्र न सकै संवारी।
जो कोई आपन चित मानै, अंतरजामी सबहीं जानै॥
आपन चित्र छीन कै लेई, सो तेहिं देस निकारा देई।
आपन चित्र जाहि लिखि दीन्हा, तें सो घालि हिये मो लीन्हा।

एहि डर कोक न वीसरै, अहनिसि आठो जाम।
लिये रजायसु नित रहहिं, जपत फिरहिं सो नाम॥29॥

शब्दार्थ—लिखै=बनाया। सयाना=होशियार। लीखा=बनाना। जान=जानना। चितेर=चित्रकार। पचि=थक। ओकर=उसका (ईश्वर का) आपन=अपना। दिस निकला=देश निकाला। घालि हिये मो लीन्हा =हृदय अंकित करना। वीसर=भूलना। अहनिसि=रात-दिन। रजायसु =आज्ञा।

व्याख्या—कवि कहता है कि जिसने चित्र को बनाया है वह उसे भली प्रकार जानता है। उससे अधिक चतुर व्यक्ति ससार मे और कोई नही है। अपना चित्र अपने आप बनाना (यह बहुत बड़ी बात है) क्योंकि लोग तो औरों के बनाए चित्र को भी वांचना या पहचानना नही जानते। संसार रूपी चित्र के चित्रकार को समझने के लिए लोग थककर हार गए और उसके (ईश्वर के) द्वारा बनाए गए चित्र को वे आज तक ठीक न कर पाए। जो कोई अपने चित्र को अच्छी तरह पहचानता है वह अन्तर्यामी है। और उसके कार्य को देखकर ही लोग उसे पहचान पाते है। जो अपना चित्र छीन-कर या जबर्दस्ती ले लेता है। उसे तत्काल ही देश निकाला दे दिया जाता है, अर्थात् उसकी हस्ती मिट जाती है। अपने चित्र को जो बना देता है, उसे हृदय में अंकित कर सुरक्षित कर लिया जाता है। इसी डर से कोई भी रात-दिन के आठो पहर भूलता नही है और नित्य ही आज्ञा पाने के तैयार रहते है और चलते-फिरते उसका नाम जपते रहते है।

विशेष—ईश्वर तत्व के सम्बन्ध में मुस्लिम दार्शनिक विचार प्रधानतः तीन प्रकार के दीख पड़ते है पहला वर्ग इजादिया लोगो का है जो ईश्वर

का अस्तित्व जगत से पृथक मानते है, और इस बात में विश्वास करते हैं कि उसने इस सृष्टि को कुछ नही अथवा शून्य से उत्पन्न किया है, इसे हम शुद्ध एकेश्वरवाद कह सकते है। दूसरा वर्ग शुद्ध दिया कहलाता है जिनका विश्वास है ईश्वर इस संसार से परे है किन्तु उसकी सभी बातें इसमें किसी दर्पण के भीतर प्रतिबिम्ब की भांति दिखाई पड़ती है। यह सिद्धान्त सर्वात्मवाद है। तीसरा सिद्धान्त उन लोगों का है जो वुजूदिया कहलाते है। उनके अनुसार ईश्वर के अतिरिक्त वास्तव मे अन्य कोई वस्तु नही। पहला सिद्धान्त इस्लाम तथा दूसरा तीसरा सूफी मत के निकट है। उस ईश्वर (चित्रकार) ने सृष्टि रूपी (चित्र) को पृथक रहकर बनाया है। साधक को चित्र और चित्रकार दोनों मे तादात्मय बिठाने के लिए परिश्रम करना पड़ता है।

औ तेहि संग निपुंसक जाती, पठवै जहां जाहि लै पाती।
गुन विद्या सब जाना बुझा, निरमल दिस्टि पंथ भल सूझा॥
अन्न न खाहि पानि नहि पीयहि, नाउं अधार रैनि दिन जियहि।
काम क्रोध तिसना मन माया, पंचभूत सौं तिन्ह की काया।
अग्या काज बिलंब न लावा, करहि सोइ जेहि दोष न पावा।
सबकी बात जनावहि जाई, अग्या होई कहहि सो आई।
अग्या बिना पेग जो धरहीं, अनल-तेज-सिखा लहि जरहीं॥
दूरि रहहि तेहि गनति नहि, निकट रहहि ते चारि।
रचना सिरजनहार की, जाथै पुरुख न नारि ॥30॥

शब्दार्थ—निपुंसक=नपुंसक, हिजडा। जाती=जाति। पाती=पत्र। निरमल=निर्मल। जनावहि=जताई। गनति=गिनती। सिरजनहार=सर्जनहार, ईश्वर। तेहि=उसकी।

व्याख्या— कवि कहता है कि चित्रावली के साथ नपुंसक या हिजड़ा जाति के लोग रहते थे। उन्हे चिट्ठी-पत्री लेकर जहा भेजा जाता है वहीं जाते हैं। वो सब-के-सब गुणी है, विद्यावान है, तथा समझदार है। उनकी दृष्टि निर्मल है तथा वह अपने पंथ या रास्ते को भली प्रकार से पहचानते हैं। वे न अन्न खाते हैं, न पानी पीते है। केवल नाम जाप के आधार पर

रात-दिन जीवित रहते हैं। काम, क्रोध, तृष्णा की भावनाएं उनमे भी है तथा मन भी सांसारिक माया के लिए रहता है क्योंकि उनका शरीर पंचभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश आदि तत्वों से बना है। जिस काम को करने की उन्हे आज्ञा दी जाती है उस कार्य को पूरा करने में वे विलम्ब भी नही लगाते, किन्तु वे उन्ही कामों को करते है जिनमें उन्हे किसी प्रकार का दोष दिखाई नही पड़ता। सबकी बात वे सबको जता देते हैं और जो उनको आज्ञा दी जाती है वह बात भी वे कह आते हे। आज्ञा के बिना यदि वे पैर बाहर निकालते हैं, तो स्वय ही वे तेज अग्नि की लौ में अपना आत्मदाह कर लेते हैं। दूर रहने पर कोई उनको कुछ गिनता नहीं या मानता है, किन्तु पास रहने पर वे चार के बराबर है। ईश्वर की रचना बडी विचित्र है न वे पुरुष हैं न स्त्री।

विशेष—(1) यहां पर ईश्वर की विचित्र रचना हिजड़ों की ओर कवि ने सकेत किया है कि उन्हें भी काम, क्रोध, तृष्णा व्यापी है तथा उनके शरीर का निर्माण भी पंचभूतों से हुआ है। इतना होने पर भी वे न स्त्री है न पुरुष, शायद ईश्वर की भूल है।

(2) इसमें अन्न न खाहिं…आदि कहकर कवि ने नाम जाप की महत्ता एवं स्थिति पर प्रकाश डाला है।

(3) इसमें अनुप्रास तथा अत्युक्ति अलंकार है।

हौं तेहि माहं परेवा नाऊं, सेव कुरौं चित्रावलि ठाऊं।
वह सो गुरु मैं ओकर चेला, वहिक नाउ हम मुंदरा मेला॥
वही पंथ मोहि दीन्हा देखाई, वेहि के वचन सिद्धि मै पाई।
औ सुमिरन दीन्हीं वोहि केरी, वेहि के नाऊं सुमिरौं हरि फेरी॥
भूख नाहि औ नींद पियासा, चित्रिनि सुरनि ध्यान घट आसा।
मा माग्या करि साज महेसू, दिन दस फिरहुं देस परदेसू॥
जो लगु फिरत होइ नहिं रोगी, तौ लगि सिद्ध होइ नहिं जोगी।

भसम अंग पग पांवरी, सीस कलपि करि केस।
कंथ पहिरि लै दंड कर, देखन निसरयौं देस॥31॥

शब्दार्थ—तौ=मैं। तेहिं मां=उनमे से। नाऊ=नाम। सेव=सेवा।

ठाऊं=पास। वहिक=उसका। मुंदरा=माला। वहि=उसी। सुमिरन=स्मरण। अग्या=आज्ञा। महेसू=शिव। पांवरी=खड़ाऊं। कंथ=जोगी का वस्त्र, कंधा। दंडकर=हाथ में दण्ड ग्रहण करना। निसरयां=निकला।

व्याख्या—मैं उनमें से एक परेवा नाम का सेवक हूं। चित्रावली के पास रहकर उसकी सेवा करता हूं। वह(चित्रावली) उसकी गुरू है और वह (परेवा) उसका चेला। उसके नाम की माला ही हम फेरते रहते हैं। उसने मुझको (ईश्वर आराधना का) यह पंथ दिखाया है। उसी के वचनों को ग्रहणकर मैंने सिद्धि प्राप्त की है। उसने मुझे जो सुमिरन करने के लिए (मंत्र) दिया उसी का मैंने जाप किया है। उसी के नाम को द्वारिका नाम समझकर मैं बार-बार फेरता हूं या स्मरण करता हूं। उस समय न मुझे भूख लगती है न प्यास और न ही नींद आती है। चित्र (दर्शन) के माध्यम से उससे प्रेमकर उसको ध्यानकर मन में बिठा लिया है और अब उससे मिलने की आशा में जागता रहता हूं। उसकी आज्ञा से शिव का साज या योगियों का भेष धारण किया है। पिछले दस दिन से मैं देश-परदेश मे घूम रहा हूं। जब तक मनुष्य घूमता-फिरता है, तब तक रोगी नहीं होता तथा जब तक सिद्धि प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक वह योगी नही होता! शरीर पर भस्म, पैरों में खड़ाऊं तथा शीश के बालों की जटा बनाकर, कंथा पहनकर, हाथ में दंड धारण कर देश देखने के लिए या देशाटन के लिए निकला हूं।

विशेष—(1) यहा पर कवि ने नाम स्मरण के माध्यम से सिद्धि प्राप्त करने की बात की है।

(2) सूफियों में 'बका' की स्थिति में जीव की जगत के प्रति बनी असक्ति लोप हो जाता है। और वह ईश्वर के प्रति पूर्ण अनुराग तथा उसकी अधीनता मे अवस्थित हो जाता है यहा परेवा ने अपनी हालत का वर्णन कर प्रकारान्तर से राजकुमार की हालात का चित्रण किया है तथा चित्रावली के प्रति उसके प्रेम को उतप्त किया है।

(3) इसमें अनुप्रास तथा उदाहरण अलंकार है।

सुनत कुंअर जोगी के बैना, उघरे दोऊ हिये को नैना।
मन महं कहेसि सांचु यह साजा, वह सो कौन जाकर उपराजा॥

जेहिक चित्र अस जिउ लेनिहारा, दुहुं कस होइहि सिरजनहारा।
साजा होइ मेटि पुनि जाई, सघु संरीर न कोटः मिटाई॥
जो न आपु आपुहि पहिचाना, आन क पेम कहां हुत जाना।
जैसे कुबुध जानि कै देवा, बहुत करहिं पाहन की सेवा॥
पाहन पूजि सिद्धि किन पाई, सेमर सेइ सुआ पछिताई।
कस न बूझि खोजौं सोई, जेहिक चित्र सब कीन्ह।
जीउ देइ जो चाहई, लेई जो चाहै लीन्ह॥32॥

शब्दार्थ—वैना=वाणी। सांचु=सत्य। उपराजा=राजा का प्रतिनिधि। जेहिक=जिसका। अपुन=हमारे। दुहु=कौन जानता है। सिरजनहारा=सृजन करने वाला, ईश्वर। प्रेम=प्रेम। पाहन की सेवा=मूर्ति पूजा। सेमर=एक फूल।

व्याख्या—जोगी के वचनो सुनकर कुअर के हृदय चक्षु अन्तर्चक्षु खुल गये। उसने मन में कहा कि यह भेष धारण करना सच है। वह कौन है जिसका यह प्रतिनिधि है जिसके चित्र ने हमारे जीव को ले लिया है। उस सृजनहार ईश्वर को कौन जानता है। जिसका सृजन होता है उसी का नाश होता है, किन्तु शिव का भेष धारण करने वाले शरीर को कोई भी नही मिटाता है। जो व्यक्ति अपने आपको ही नही पहचानता, वह दूसरे के प्रेम को कैसे पहचान सकता है। जिस प्रकार से कुबुद्ध लोग पत्थर की मूर्ति को ही ईश्वर मानकर उसकी सेवा करते हैं वे लोग इसी प्रकार पछताते हैं जैसे सेमर के फूल को सेने पर तोता पछताता है। (भला कहीं) पत्थर को पूजने से सिद्धि मिली है। जिसके चित्र ने यह सब किया है (मेरी यह हालत बना दी है) उसके बारे में क्यो न पूछकर, क्यों न उसे खोजा जाए जो चाहिए वह जीव (चित्रावली) मिल जाए फिर भी (इसके बदले मे) जो चाहे ले ले।

विशेष – (1) इसमें कुअर की मानसिक दशा तथा दृढ संकल्प शीलता का चित्रण किया गया है।

(2) इसमें अनुप्रास तथा दृष्टान्त अलंकार है।

कुअंर कहा अब सुनहुं परेवा, मैं तोरि सीष मोर तं देवा।
मैं तजि पंथ जात बौराना, तं गहि बांह पंथ पर आना॥

डूबत मोर नाउ मंझनीरा, तूं खेवक होइ लाइसि तीरा।
सोअत हौं जो अहा सो जागा, मन तजि चित्र चितेरहिं लागा॥
चित्र देखि न चितेरा जाना, बिनु चितेर अब दृष्टि न आना।
अब फिरि कहु चित्रावलि बाता, जेहि केह रूप आजु मन राता॥
सुनतहि नाम दूरि भइ दाहा, दहुं मुख देखत होइहै काहा।
मरत जियाए जोइ कहि, फिरि-फिरि कहु सो बात।
सुनिबे कहं अमिरित कथा, श्रवन भए सब गात॥33॥

शब्दार्थ—तोर=तेरा। सीष=शिष्य। मोर=मेरा। बौराना=पागल, बावला। मंझनीरा=मझधार। खेवक=खेने वाला। दृष्टि=दृष्टि। राता=अनुरक्त होना।

व्याख्या— कुंअर ने अपने मन को संकल्प कर कहा कि परेवा अब मेरी बात सुन! मैं तेरा शिष्य हूं और तुम मेरे गुरू हो। मैंने पंथ को छोड़ दिया था और इस लिए बौरा गया था विरह के कारण पागल-सा हो गया। मैं पुनः सत्य पंथ पर आने के लिए तेरी बांह पकड़ना चाहता हूं मेरा नाम अर्थात् मैं मझधार में डूब गया हूं। तू मुझे खेकर किनारे पर लगा दे अर्थात् चित्रावली के पास तक पहुँचा दे। मैं अभी तक सो रहा था किन्तु अब जाग चुका हूं अब मेरा मन चित्र को छोड़कर उस चित्रकार की ओर लग गया है। चित्र को देखकर भी मैं चित्रकार को नही पहचान सका। अब चित्रकार को देखे बिना मेरी दृष्टि में कुछ भी नही आ सकता (अर्थात् चित्रकार से मिलने की प्रबल इच्छा हो गयी है) अब तुम पुनः चित्रावली की बात बताओ उसके रूप-सौन्दर्य का वर्णन करो जिससे मेरा मन उसमें अनुरक्त हो जाये। उसका नाम सुनते ही विरहाग्नि की जलन कम हो गई है। उसका प्रत्यक्ष दर्शन कर लूंगा तब क्या होगा? कौन जानता है। जिसका नाम लेते ही मरता भी जीवित हो जाता है। फिर उसी का नाम लेकर उसकी बात करो (चित्रावली की कथा अमृत के समान ही है उसकी कथा को शरीर के सभी रोम-रोम श्रवणेन्द्रिय बनकर सुनना चाहते हैं।

विशेष—(1) इसमें साधक के दृढ मानसिक संकल्प का चित्रण किया गया है।

(2) इसमें गुरु की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है जो साधक को

की सुगंध आती है, जिसे लेकर उचित पंथ दिखा सकता है।

(3) "शुवन भये सब ग्राह, में कथा की अलौकिकता तथा साधक की उत्कृष्ट उत्सुकता पर प्रकाश पडता है।

(4) इसमे अनुप्रास, अनसूक्ति तथा अत्युक्ति अलकार है।

जोगी संवरि कहै पुनि वाता, वह चित्रावलि जेहि रंगराता।
वदन मयंक मलयागिरि अंगा, चंदन वास फिरहिं अलि संगा।।
जो अलि अंग वास वह पाई, सो तजि आन फूल नहिं जाई।
बहुतन्ह सिर करवट गहि सारा, हिछा करि मधुकर औतारा।।
बहुत नाऊं सुनि जोगी भये, मूंड मुंडाइ दसंतर गए।
ससि सूरज औ नखतन पांती, वरने होहिं दिवस औ राती।।
भूषन सोभ पाव तेहि अंगा, ताते निसि दिन छाड़ न संगा।
चांद न सरवर पावई, रूप न पूजै भानु।
अव सुनु तन मन कान दै, नख-सिख करौं बखानु।।34।।

शब्दार्थ—रगराता=प्रेम के रंग में अनुरक्त। मयक=चन्द्रमा। मलयगिरि=चंदन। अलि=भौंरे। वास=सुगंध। सिर करवट गहि मारा=मोक्ष प्राप्त करने के लिए लोग आरे से सिर कटवा देते थे। कासी करवट प्रसिद्ध है। हिछा=इच्छा। दसंतर=देश, विदेश। नखतन=नक्षत्र।

व्याख्या—कुअर की वात सुनकर योगी सभल गये है और फिर उस चित्रावली की वात कहने लगा जिसके प्रेम में कुअर का मन अनुरक्त था। उसने कहा (चित्रावली का) मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है तथा उसके शरीर के सभी अंगों मे से चंदन की सुगध आती है। चंदन की सुगन्ध के कारण उसके पीछे-पीछे भौंरे घूमते रहते हैं। जो भौंरा एक वार उसके शरीर की गध पा लेता है। वह उसे छोड़कर (गध के लिए) और किसी फूल के पास नही जाता। वहुत से लोगो ने काशी करवट ली है, या पुनः भौंरे के रूप में अवतार लेने की इच्छा मन मे रखकर अपने सिर को कटवा दिया है। वहुत से लोग चित्रावली का नाम सुनकर योगी वन गए है। उन्होंने अपने सिर मुंडवा लिए हैं और वे देश-देशान्तरों मे घूमते-फिरते और चंद्रमा, सूर्य तथा नक्षत्रों की पंक्ति उस चित्रावली के सौन्दर्य का रात-दिन वर्णन करती है। कुछ आभूषण उसके शरीर पर रहकर ही शोभा पाते हैं इसलिए रात-दिन

वे उसका साथ नही छोड़ पाते। (चित्रावली का मुख चन्द्रमा से अधिक सुन्दर है इसलिए वह डूबने के लिए तालाव चाहता हूं) किन्तु चन्द्रमा को तालाव नही मिलता और रूपवती अपने रूपाभिमान के कारण सूर्य की पूजा नही करती। अब तुम तन मन से तथा कान देकर (ध्यान से) सुनो, मैं चित्रावली के नख-शिख का वर्णन करता हू।

विशेष—इसमें अनुप्रास तथा अत्युक्ति अलंकार है।

> प्रथमहिं कहौं केस की सोभा, पन्नग जनों मयलगिरि लोभा।
> दीरघ विमल पीठि पर परे, लहर लेंहि विषधर विषभरे॥
> कच अहि डसा जनम नहिं जागा, मंत्र न मानै मूरि न लागा।
> वियुरी अलक भुअंगिनी कारी, कै जनु अलि लुवुधे फुलवारी॥
> कै जवु वदन तरनि जो तपा, सिमिटि सुमेरु पाछु तम छुपा।
> किमि कच बरनौं राजकुमारा, मति न समाइ देखि अंधियारा॥
> मृदमदवास आव तेहि केसा, पौन जाइ लइ देस विदेसा।
>
> सिरजी तन विधि स्यामता, जब जग सिरजै लीन्ह।
> ते कच सिरजे सारलै, सेब वांटि कै नीन्ह॥35॥

शब्दार्थ—पन्नग=सांप। मलयागिरि=चंदन। दीरघ=वड़े, लम्बे मूरि=जड़ी-बूटी। विधुरी=फैली हुई। भुअगिनि=सर्पिणी। तरनि= सूर्य। पाछु=पीछे। मृगमदवास=कस्तूरी की सुगध। किमि=कैसे।

व्याख्या—परेवा ने कहा पहले मैं चित्रावली के केश की शोभा का वर्णन करता हूं। उनके वालों को देखकर ऐसा लगता मानो सर्प चदन पर लुब्ध हो गये हैं। वे वडे लम्वे है और श्वेत पीठ पर पड़े हुए ऐसे लहराते है। जैसे जपरीले सर्प लहरा रहे हों। वाल रूपी नाग जिसे एक वार डस ले वह वह इस जन्म मे तो उठ नही सकता क्योकि उसका उपाचार न मन्त्र से हो सकता है और न उसको जड़ी-बूटी का प्रभाव हो सकता है। उसके विखरे वाल काली सर्पिणी है अथवा मानों फुलवारी पर लुब्ध हुए भौरे के समान हैं। अथवा ऐसा लगता है मानो मुख जो सूर्य से तप हो गया हो वह सुमेरु के समान दीप्त रग को समेट वाल रूपी अधकार के पीछे जो छिपा हो। राज-कुमार उसके वालों का कैसे वर्णन किया जा सकता है उसके कारण फैले हुए अधकार को देखकर बुद्धि उस में समाती ही नही। उन बालो में से कस्तूरी

वायु देश-विशेष मे घूमती-फिरती है। ईश्वर ने जब संसार का निर्माण किया था तभी श्यामलता का साकार रूप में सृजन किया था। उस श्यामलता का सार तत्व लेकर उसने बालों की श्यामलता का सृजन किया और शेष को बांट दिया।

विशेष—इसमे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक तथा अत्युक्ति अलंकार है।

सीस सिंगार मांग विधि कीन्ही, तातें ठाउं मांग पर दीन्ही।
सूर किरन करि घालहि धारा, स्याम रैनि कीन्ही दुई फारा॥
पंथ अकास विकट जग जाना, क्यों न जाइ चोहि पंथ भुलाना।
तहां देखि अलकावरि फांसा, पंथिन्ह परा जीउ कर सांसा॥
जीउ परतेजि चलहिं तेहि माहीं, और बाट नहिं केहि दिसि जाहीं।
बेनी सीस मलयगिरि सीसा, मांग मोति मनि माथे दीसा।
सूर समान कीन्ह विधि दीया, देखि तिमिर कर फाटयो हीया॥
स्याम रैनि महं दीप सम, जेहि अंजोर जग होइ।
अछज भुअंगम मांहि बस, दिया मलीन न होइ॥36॥

शब्दार्थ—दुई=दो। अलकावरि=अलकावलि। परतेजि=त्यागकर। बाट=रास्ता। तिमिर=अंधकार। अजोर=उजाला, प्रकाश। दीखा=दृष्टिगत होना। भुअंगम=शीशा।

व्याख्या—परेवा ने राजकुमार से कहा कि हे राजकुमार अब मैं तुमको उसकी मांग के सौन्दर्य के बारे मे बताता हू। विधि ने उसके सिर का श्रृंगार मांग के रूप मे किया है। इसलिए मांग के स्थान पर ध्यान दीजिए। उसकी मांग ऐसी लगती है जैसे सूर्य किरण बालों में (प्रकाश की) धारा बहा दी है और रात्रि (बालों) की श्यामलता को दो भागों विभाजित कर दिया हो। ससार जानता है कि आकाश का रास्ता बड़ा भयंकर है। जो इस तथ्य को नही जानता वही पंथ को भूल जाता है। वहा पर अलकावली का फंदा पड़ा है जिसमे पंथी फस जाता है और वहा पड़ा जीव सांस लेता रहता है। जीव उस स्थान का परित्याग करके चलना चाहता है लेकिन कोई अन्य रास्ता ही नहीं है वह किस दिशा मे जाए। मलयागिरि चोटी के सदृश्य सिर पर वेणी है। उसकी मांग में गूंथे मोती तथा मणि माथे पर दृष्टिगत होते है। विधि ने उस मांग को सूर्य के समान प्रकाशित किया हुआ है यह देखकर

अंधकार का हृदय फटकर रह जाता है। काली रात्रि मे मांग दीप के समान चमकती है। वहीं से संसार मे प्रकाश फैलता है। वह अछूत शीशे मे सुरक्षित है जिससे दीपक का प्रकाश मलिन नही होता।

विशेष—(1) कवि ने माग का वर्णन अलकृत शैली में किया है।

(2) इसमे अनुप्रास, उपमा, उदाहरण अलकार है।

पुनि लिलाट जस दूजि का चंदा, दूजि छाड़ि जग वो कहं बंदा।
पटतर दूजि होति जौ होती, दूजि मांह पूंन्यो कै जोती॥
भाग भरा अस दिपै लिलार, तीनहुं भुवन होइ उजियारा।
होइ मयंक खीन जेहि रोसा, सो लिलाट कामिनि पहं दीसा॥
कुंदन तिलक सेष कस पावा, मानहुं दुइज मां जीउ मिलावा।
मुकुता पांति चहू दिसि पाई, मानहुं मिली किरितिका आई॥
जाहि लिलाट भाग मनि होई, अस संजोग सुभ देखै सोई।
सुभ संजोग वहि एकछिन, जाकहं सनमुख होइ।
जो जग लागै गरह जिमि, धार न बांकै कोइ॥37॥

शब्दार्थ—लिलाट=माथा। वंदा=सेवक। दूजि क चंदा=दूज का चांद। पुंन्यो कै ज्योति=पूर्णमाशी के चन्द्रमा की जोति। मयंक=चंद्रमा। कुंदन=तपे हुए सोना जैसा शुद्ध, कांतियुक्त। मुकुता=मोती। किरितिका =कृतिका। जिमि=जैसे।

व्याख्या—परेवा ने मांग का वर्णन करने के उपरान्त चित्रावली का माथे का वर्णन करना आरम्भ किया। वह मस्तक दूज के चांद के समान है। संसार में दूज के चांद को छोड़कर सेवक और क्या कह सकता है। दूज के चांद की उपमा के लिए यदि कोई अन्य उपमान रूप मे होता है (तो उसका अवश्य प्रयोग होता) दूज के चांद मे ही पूर्णमाशी के चन्द्रमा की ज्योति है। सौभाग्य से युक्त वह मस्तक ऐसा चमकता है कि तीनों लोकों में उजाला फैल जाता है। उस कामिनी के मस्तक को देखकर चन्द्रमा भी क्रोध के कारण घटता (क्षीण) होता जाता है। उसके मस्तक पर कांति युक्त तिलक इस प्रकार शोभा पाता है मानो दूज के चन्द्रमा में प्राण मिला दिए गए हों। उस पर मोतियां की लड़ें चारों दिशाओं में ऐसी लगती हैं मानो कृतिका नक्षत्र मिलने आ गया हो। उस मस्तक के एक भाग में मणि (बेने और

आभूपण मे लगी) लटकी हुई है। जिस पर दुपट्टे का पर्दा पडा रहता है। शुभ सयोग आने पर ही कोई उसे देख सकता है उसके सामने होने वाले क्षण को ही शुभ सयोग कहा जा सकता है। वह संसार ग्रह के समान लग जाता है जिसके कारण कोई भी उसका वाल-वाका नही कर सकता।

विशेष—अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा व्यतिरेक अलकार है।

कुटिल भौंह जानो धनु ताना, इन्द्रधनुष तेहि देखि लजाना।
जानहु काल जगत कहं कढ़ा, निसि दिन रहै पयच जनु चढ़ा।।
भौंह फिराइ जाहि तन हेरा, देखत काल होइ तेहि केरा।
एही धनुष जुध मनमथ लीता, कं परनाम काम तन जीता।
भौंह धनुष लेखि इंद्र संकाना, सब जग जीति सरग कहं ताना।
कौन सो वली जो न गै मारा, तीनहु लोक एक हुंकारा।।
ऐस धनुष जग और न दूजा (क), देवतन्ह आइ बाहुबल पूजा।
अहिपुर नरपुर जीति कै, सुरपुर जीती जाइ।
अब दहु कछू न जानियै, का कहै धरे चढ़ाइ।।38।।

शब्दार्थ—कुटिल=टेढ़ी। धनु=धनुप। कढा=निकला। पयच=प्रत्यंचा। केरा=ओर। जुध=युद्ध। मनमथ=कामदेव। सकाना=शंका होना। सरग=स्वर्ग। अहिपुर=पाताल। नरपुर=भूमि। सुरपुर=स्वर्ग। हुकारा=हुकारा।

व्याख्या—परेवा ने चित्रावली की भौहो का वर्णन करना आरम्भ किया। उसकी टेढी भौहे तने धनुप की भांति प्रतीत होती है। उन्हे देखकर इन्द्रधनुप भी लजा जाता है। उसे देखकर ऐसा लगता है मानो ससार का काल निकल आया हो। क्योकि वहा मानो रात-दिन धनुप की प्रत्यचा चढी रहती है वह भौह फिराकर जिसको भी देख लेती है। जिसकी ओर देखती है उसकी मृत्यु हो जाती है। इस धनुष को कामदेव युद्ध मे लेता है इसके परिणाम स्वरूप कामदेव दूसरों के शरीर को जीत लेता है। भौह रूपी धनुप को देखकर इन्द्र भी शका करने लगा। सारे ससार को जीत कर अब स्वर्ग की ओर क्यो तान दिया। ससार में कौन-सा ऐसा वली है जिसे इसने नही मारा। तीनो लोको में इसका दर्प युक्त (हू) सुनाई पडता है। ऐसा धनुष जगत में

और कोई नहीं है। इसलिए देवता भी आकर यथार्थ ले इसकी पूजा करते हैं। यह पाताल लोक, भूलोक जीतने के बाद स्वर्ग लोक को जीतने जा रहा है अब और कुछ नही जाना जाता कि यह किसके लिए चढ़ाकर रखा है।

विशेष—इसमें अनुप्रास, उत्प्रेक्षा तथा उपमा अलंकार है।

बांके नैन तीख अति दोऊ, जगत जाहि सर पूजि न कोऊ।
राते कौंल मधुप तेहि माहीं, कहत लजाउं तेउ सर नाहीं॥
कौंल देखि ससिहर कुम्हिलाने, ए ससि संग सदा बिगसाने।
स्याम सेत अति दोऊ सोहाए, खंजन जानु सरद ऋतु आए।
कै दुइ मिरिग लरल सिर नीचे, काजर रेख डोर गहि घींचे॥
दोउ समुंद्र जनु उठहिं हलोरा, पल महं चहत जगत सब बोरा।
तीछे हेर जाहिं चषु आछें, चली मीन जनु आगें पाछें॥
बर कामिनी चषु मीन सब, निमिष हेर तन जाहि।
बहुरि जनम भरि मीन जिमि, पलक न लागै ताहि॥39॥

शब्दार्थ—तीख=तीक्ष्ण, प्रखर। सर=समता। कौंल=कमल। मधुप =भौरा। राते=लाल। ससिहर=चन्द्रमा। लरत=झुकना। घीचे= गर्दन। आछे=अच्छी तरह। तीछे=तीक्ष्ण। चषु=नेत्र। निमिष=क्षण भर के लिए।

व्याख्या—परेवा कहने लगा कि चित्रावली के दोनों नेत्र इतने सुन्दर प्रखर है कि संसार में उनकी समता कोई भी नही कर सकता। उसके नेत्र लाल रंग के हैं उनमे काली पुतलिया ऐसी है, जैसे कमल मे भौरा हो। यह कहने मे भी लज्जा आती है कि उसकी समता के लिए कोई उपमान नही है। संसार मे कमल को देखकर चन्द्रमा कुम्हला जाता है अर्थात् उसका मुख मलिन हो जाता है, पर यहां (चित्रावली के प्रसंग में) नेत्र रूपी कमल मुख रूपी चन्द्रमा के साथ सदैव खिले रहते हैं। इन नेत्रों के दो रग श्याम और श्वेत दोनो शोभायमान रहते है। इन नेत्रों की श्वेतता एवं सुहावनेपन को शरद ऋतु समझकर खंजन पक्षी (नेत्रो का लाल रंग) आ गये। (आंखों के श्वेत, श्याम और रतनार रंग होते है। रतनार रंग के लिए खन्जन के नेत्रों से समता की जाती है।) इन दोनों नेत्रों में काजल की रेखा की शोभा को

देखकर मृग का सिर नीचा हो गया और उसकी गर्दन लटक गई। दोनों नेत्रों में चंचलता विद्यमान है। उनके चंचल हो जाने पर ऐसा लगता है मानो समुद्र में हिलोरें उठ रही है। और पल भर मे वे सारे ससार को डुबो देना चाहती हों। उसके नेत्रों में तीक्ष्णता है। जब वह अच्छी तरह देखती है तब लगता है कि मछलियां आगे-पीछे चल रही हों।

इस श्रेष्ठ कामिनी के नेत्र मछली के समान है, जिसके शरीर की ओर वह क्षण भर के लिए भी देख ले तो बहुत जन्मों तक उसके नेत्रों में मछली की सी चंचलता व्याप्त हो जाती है और उसकी पलक नही लगती।

विशेष—इसमें अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अलकार है।

बरुनी बान तीख अउ घने, सोई जानु जाहि उर हने।
मद सिराय ले भाल संवारे, जाके हने सबै मतवारे॥
तापर बिष काजर सों सांधा, सोइ मरै जाहि तन सांधा।
लाग न बरुनि बान जेहि हीया, सो जग मांह अमिरथा जीया॥
जेते अहैं जीव जग माही, साधल जाइ बान सो खाहीं।
जगत खाए होइ रहा निलाना, सकु हौं सौंह मारि तेहि बाना॥
गलि गलि हाड़ रहे जो आई, ऊंठ जो लागि जाइ तो जाई।
एक सूंठ के छाड़ते, लागे बान अलेख।
जग मह ऐसन पारधी, दूसर काहु न देख॥40॥

शब्दार्थ—सिराय=समाप्त हो जाने पर। हने=लगना। तापर=उस पर। सांधा=सधान करना या निशाना लगाना। अमिरथा=व्यर्थ ही। जेते=जितने भी। सकु=चाहे, शायद। हाड़=कुलीनता। सूंठ=एक शक्ति विशेष। पारधी=तीर चलाने वाला। अलेख=अदृश्य।

व्याख्या—परेवा ने कहा है राजकुमार उसकी बरूनियों के बाल बाण के समान तीखे हैं और घने है। ये जिसके हृदय में लगते है, वही जानता है। मद के समाप्त हो जाने पर जब मस्तक को संवारा जाता है, उस क्षण जिसके भी यह लग जाते हैं, वे सब मतवाले हो जाते है। उस पर काजल लगाना ऐसे है मानो उसे विष लगाया गया है। जिसके शरीर का लक्ष्य करके ये छोड दिए जाते हैं वही मर जाता है। जिसके हृदय मेंबरूनि रूपी बाण

नही लगा उसका संसार में जीवित रहना व्यर्थ है। इस संसार में जितने भी जीव हैं वे ऐसे साधन जुटाते हैं जिससे कि वे उस वाण की चोट खा सके। जो इसके पास आते हैं वे सब अपनी कुलीनता (के गर्व) को समाप्त कर आते हैं और उनके वाण लग जाता है तो बैठ जाते हैं अर्थात् इच्छा पूरी होने पर प्रसन्न होते हैं। एक मूठ को छोड़ते ही अदृश्य वाण लग जाते हैं। संसार में ऐसा वाण चलाने वाला और कोई दूसरा दिखाई नहीं देता।

विशेष—इसमें अनुप्रास, उपमा तथा पुनरुक्ति अलंकार हैं।

सुभग सरुप सुरंग अमोला, जनु नारंग 'वरनारि कपोला।
ईंगुर केसर जानु पिसाए, दोऊ विलाह कपोल बनाए॥
और सो देखि कपोल लुनाई, मती हीन कछु बरनि न जाई।
तेहि पर तिल सो बेह अस सोभा, मधुकर जानु पुहुप पर लोभा॥
कै विधि चित्र करत कर धरे (क), करत उरेहु बूंद खसि परे।
सधन सिगार सोभ जो पावा, रहेउ न बिन पुनि सो न उचावा॥
वह तिल जाहि दिष्टि तल परा, भयो स्याम तस तिल तिल जरा।
नहि चीन्हत कोउ काहु कहं, जो जग नाहि न होति।
परछाहीं तिल एक की, सब अंजन्ह महं जोति॥41॥

शब्दार्थ—सुभग=सुन्दर। सरूप=रूप वाला। सुरग=सुन्दर रंग। अमोला=हिस्सा। ईंगुर=लाल रंग का एक खनिज द्रव्य। लुनाई=सलोनापन, सुन्दरता। उचावा=उठावा।

व्याख्या—इस पद में परेवा ने चित्रावली के कपोलों के सौंदर्य का चित्रण किया है। उस श्रेष्ठ नारी के कपोल सुन्दर, रूपवान, सुन्दर रंग के हैं और ऐसे लगते हैं मानो नारंगी के हिस्से हों। (विधाता ने) ईंगुर के साथ केशर को मानो पीसकर उसके दोनो गालों को बनाया है। उसके कपोल अति सुन्दर है और उनको देखकर मैं (कवि) बुद्धिहीन उनका कुछ भी वर्णन नही कर सकता अर्थात् उसके लिए उपमानों का प्रयोग नहीं कर सकता। उस (गाल) पर तिल ऐसे शोभायमान हैं मानो भौंरा पुष्पों पर लुभा गए हों। वह अपने गालों पर जब हाथ रख लेती है उस समय के चित्र को किस प्रकार से चित्रित किया जा सकता है। यदि उसे चित्रित करता हूं (तो घोर परिश्रम के कारण) बूंद खिसक पड़ती है या गिर पड़ती है। जब वह अपने मुख का

शृंगार कर लेती है तो उसकी शोभा बढ़ जाती है। यदि वह अपना हाथ न उठाये तो पुनः दिन नही रहता अर्थात् छिप जाता है। उस तिल के ऊपर जिसकी दृष्टि पड़ जाती है, वह तिल-तिलकर जलकर श्याम रंग का हो जाता है। कोई कुछ भी कहे कोई उसे नही पहचानता। उस एक तिल की परछाही सब नेत्रों मे ज्योति बनकर बसी हुई है। यदि संसार मे वह न होती तो संसार के नेत्रों मे ज्योति ही न होती।

विशेष—इसमें अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, उपमा, अत्युक्ति अलंकार है।

किमि बरनौ नासिका सोहाई, नासिका सुनि मति नियर न आई।
खरग धार कहि आवै हांसी, कौन खरग जेहि उपमा नासी॥
तिल क फूल कबितन्ह चितधरा, उहौं लजाइ पुहुमि खसि परा।
(क) इह रुआंर पुनि कीर कठोरा, उपमा देत मन मान न मोरा॥
उह सुर भौन जगत उपराई, ससि सूरज जहं उदै कराई।
तेहि पर हेरि रही मति मोरी, उपमा नहिं केहि लावौं जोरी॥
बेसरि जो पहिरै रहसाई, नग कुंदन छवि पाउ सोहाई।
मुकुता डोलत निरखि मन, सुर नर इहै गुनाहि।
कहत सोहागिनि नासिका, तिहपुर पटतर नाहि॥42॥

शब्दार्थ—नियर=पास। खरग=खड्ग। खसि=गिर। रुआंट=कोमल। सुरभौन=सुरलोक। उपराई=ऊपर। बेसरि=नाक मे पहनने का आभूषण या छोटी नथ। छवि=कांति। गुनाहि=विचारते हैं।

व्याख्या—परेवा ने कहा कि उस सुन्दर नासिका का वर्णन किस प्रकार करू। नासिका का वर्णन करना यह बात सुनकर बुद्धि पास ही नही आती है। यह कहू कि नाक खड्ग धार के समान है तो हसी आती है। उस नासिका की बराबरी कोई खडग नही कर सकता। इसस यह उपमान भी व्यर्थ हुआ। कवियो के चित्त मे इसका एक अन्य उपमान तिल का फूल है किन्तु वह पुष्प भी लजा कर गिर पडा है। यदि नाक की तुलना तोते की नाक से की जाय तो उपमा देने के लिये मेरा मन नही मानता क्योकि यह (चित्रावली की नाक) कोमल है और तोते की कठोर। ससार से ऊपर यदि सुरलोक मे देखा जाये जहा तक सूर्य और चन्द्रमा उदित होते है, तो वहां पर मेरी मति देखती ही रह जाती है, क्योकि उसकी तुलना करने योग्य कोई

उपमान दिखाई नहीं देता। जब वह नाक में बेसरि पहन लेती है तो उसके नग और स्वर्ण की कांति पाकर और अधिक सुन्दर लगने लगती है। नाक में पड़े मोती को छिलता हुआ देखकर मन, देवता तथा मनुष्य सभी विचार करते रह जाते हैं। वे नाक सौभाग्यवती कहते हैं क्योंकि तीनों लोकों में उसकी उपमा के लिए कुछ भी नहीं है।

विशेष—अनुप्रास, उपमा, व्यतिरेक तथा अत्युक्ति अलंकार है।

अधर सुधा निधि बरनि न जाई, बरनत अति रसना पनियाई।
छुए न काहु अछूते राखे, प्रेम दिष्टि मुख अजहुं न चाखे॥
विद्रुम अति कठोर औ फीखे, सुरंग मृदुल दुख दायक जीके।
बिंब अरुन सो सरि न तुलाना, अति लजान बन जाइ दुराना (ख)॥
बदन मयंक जगत उंजियारा, अमिरित अधर प्रानदेनिहारा।
का बरनौं का मति भइ मोरी, उत्तम अधम लगाएंउ जोरी।
ससि अमिरित देवतन्ह कै जूठा, जगत आन यह अधर अनूठा।
लोभन जाहि कदाच्छ सर, मारि प्रान हरि लीन्ह।
अधर बचन तन खिन दोऊ, अमिय सोंधि जिउ दीन्ह॥43॥

शब्दार्थ—सुधानिधि=अमृत रस। पनियाई=पानी नहीं आता, सूख गई। विद्रुम=लूंगा। फीखे=फीका, बेमजा। जीके=मन के लिये। अरुन =लाल। दुराना=छिप जाना। लोयन=लोचन, आंख। सर=सर करना जीतना।

व्याख्या—परेवा ने राजकुमार को बताते हुए कहा कि उस राजकन्या के अधर अमृत रस से युक्त हैं और उनका अपनी बुद्धि से वर्णन नहीं कर सकता क्योंकि ऐसा करने पर जिह्वा सूख जाती है। उन अधरो का किसी ने भी स्पर्श नहीं किया है और वे आज तक अछूते ही हैं। चित्रावली ने किसी को प्रेम नहीं किया है और उसके अधरों का किसी न रसपान नहीं किया है। यदि इन होठों की तुलना मूंगे से की जाए तो ये अति कठोर और फीके हैं जबकि अधरों का रंग सुन्दर है और वे कोमल भी हैं। ये मन को दु:ख देने वाले हैं। बिम्बा फल की लालिमा की इन अधरों की लालिमा से तुलना नहीं हो सकती। इसीलिए वह अति लज्जित होकर वन में जाकर छिप गया उसके चन्द्र-मुख से ही संसार में प्रकाश फैलता है और

उसके अधर ही संसार को प्राण देने वाले हैं मेरी भोली भाली बुद्धि इनको वर्णन करने में असमर्थ है। इनकी तुलना के अच्छे और बुरे सभी उपमानों का प्रयोग कर लिया। यदि चन्द्रमा से प्राप्त अमृत से इनकी तुलना की जाए तो उसे देवताओं ने झूठा कर रखा है। अत: वह इनकी तुलना के योग्य नही हैं। संसार जानता है ये अधर अद्भुत है उसके लोचन कटाक्ष से जिसे जीत लेने हैं उसे मारकर उसके प्राणों का हरण कर लेते हैं, किन्तु अधरों से निकले वचन तत्क्षण ही उनकी खिन्नता को दूर कर देते है। उसे अमृत से सीचकर और उसके प्राण लौटा देते है या उसे प्राण दे देते है।

विशेष—(1) यहां परेवा गुरु का प्रतीक है तथा वह साधक-सुजान को चित्रावली रूपी ब्रह्म की ओर आसक्त करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार यहां लौकिक अर्थ के साथ-साथ अलौकिक अर्थ भी उतना ही महत्व-पूर्ण हो जाना है।

(2) यहां अनुप्रास, उपमा रूपक तथा अत्युक्ति अलंकार है।

दसन जानु हीरा निरमरे, बदन आनि मुख संपुट धरे।
इक इक नाग दुहुं जग कर मोला, जो जिउ देइ कहै सो खोला ॥
पान खात कछु भए उघारे, दिष्टि परे मंजुल रतनारे।
जनु दुइ लर मुकुता रंग भरे, मंजन लागि आइ मुंह धरे ॥
कै देवतन्ह ससि कीन्ह कियारी, अमिरित सनि बारि अनुसारी।
दाड़िम बीज तहां लै बोए, रखवारे राखे अहि पोए ॥
निसि वासर ते निकर रहाहीं, मकु सुक पिक खंजन जुनि जाहीं।

इक दिन बिहंसि रहति कै, जोति गई जग छांह।
अबहूं सौंरत वह चमक, चौंधि चौंधि चौंधि जिय जाइ ॥44॥

शब्दार्थ—निरमरे=निर्मल। संपुट=कटोरे जैसी वस्तु! उघारे= उघड़ना। मोला=अमूल्य। जिउ=जिव। रतनारे=लाल। कियारी =क्यारी। अमिरित=अमृत। सनि=सने हुए। वारि=सरस्वती वाणी। दाड़िम=अनार। मकु=शायर। सौंरत=स्मरण करना।

व्याख्या—परेवा ने आगे चित्रावली के दातों का वर्णन करना आरम्भ किया कि चित्रावली के दांत निर्मल हीरे के समान है। शरीर मे उन्हे मुख रूपी संपुट में रखा गया है। एक-एक नग दोनो संसार में अमूल्य हैं। जो

जीव देता है, उसकी प्रार्थना पर वे खुलते हैं। अर्थात् वे सदैव ओठों में ही बंद रहते हैं। पान खाने पर वे कुछ उघड़ जाते हैं। तब उसके सुन्दर लाल-लाल मसूड़ों पर दृष्टि पड़ती है। जब वह दांत साफ करने के लिए उन पर मंजन लगाती है तब ऐसा लगता है मानो ऊपर नीचे दोनों दांतों की लड़ में मोतियों का रंग भरा है। अथवा देवताओं ने (अमृत युक्त) चन्द्रमा की रक्षा करने के लिए क्यारी बना दी हो उसी के अनुसार उसकी वाणी अमृत से सनी निकलती है। अनार के बीज रूपी दांतों को वहां बोआ गया है और उनकी रखवाली करने वालों ने उन्हें पिरोकर रखा हुआ है। रात-दिन वे उसके निकट रहते हैं क्योंकि शायद शुक (नासिका) कोयल (वाणी) खंजन (नैन दृष्टि) उनको चुराकर न ले जाए ! एक दिन वह मुस्कराई तो उसकी ज्योति सारे संसार में छा गई। अभी भी जब उसकी चमक का स्मरण करता हूं तो मेरा हृदय चौंके-चौंके जाता है।

विशेष—(1) इस दोहे में कवि ने अध्यात्मिक अर्थ की ओर संकेत किया है। उसी ब्रह्म का प्रतिबिम्ब संसार की समस्त वस्तुओं में झलकता है।

(2) अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा तथा रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

तेहि भीतर रसना रस भरी, कौंल पांखुरी अमिरित भरी।
दसन पांति महं रही छिपानी, बोलत सो जनु अमिरित बानी ॥
बोलत बैठा अमी जनु चूआ, सुनत जियै बरखन कर मूआ।
जे मन अहि कुंतल के खाए, बोलि बोलि घन सबै जियाए ॥
जाके सेवन बचन उन डारा, ताकर बचन जीउ देनिहारा।
उकतिन बोलत रतन अमोली, आंब चढ़ी जनु कोइल बोली॥
ब्याकरनौ जानै संरीता, पिंगल अमर पढ़हिं पुनि गीता।

रहहिं रैनि दिन बाद महं, चित्रिनि चखु औ बैन।
त्यों त्यों रसन जियावई, ज्यों ज्यों मारहिं नैन ॥45॥

शब्दार्थ—रसना=जिह्वा। कौंल=कमल। बरखत=बरसना। मूआ =निगोड़ा, मरा हुआ। कुंतल=बाल। गन=बादल। जियाए=जीवन दान देना। सवन=श्रवण। उकितिन=उक्ति से। अमोली=अमूल्य। आंब =कांति, चमक। पिंगल=छन्दशास्त्र : अमर कोष। बाद=बहस। चख =नेत्र।

शब्दार्थ—उसके भीतर रस युक्त जिह्वा है। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानों पांखुरी से युक्त कमल या बन्द कमल में अमृत भरा हुआ है। दांतों की पंक्ति मे छिपी हुई है। जब वह बोलती है तो मानो अमृत से युक्त वाणी बोलती है। बोलने पर मानो वाणी से अमृत टपकने लगता है जिसे सुनकर यह भरा हुआ मन बरसने लगता है या हर्षाने लगता है। जिनके मन काल रूपी सापों के खाये हुए हैं उनको यह वाणी बादल बरस कर जीवन दान देते है। जिसके वचन सुनकर लोग डर जाते है, उनको यह वचन जीव देने वाले हैं। अमूल्य रत्नो की भाति यह उक्तिया बोलती है, जिसे सुनकर ऐसा लगता है मानो आव पर चढी हुई कोयल की बोली हो। इसे व्याकरण और सगीत का ज्ञान है। इसने पिंगलशास्त्र, अमर कोष तथा गीता का पूर्ण अध्ययन कर रखा है। वह रात-दिन शास्त्रो पर बहस करती रहती है उस उस समय उसके नेत्र और वाणी देखने लायक होते है जैसे-जैसे नेत्र कटाक्ष मारते हैं वैसे-वैसे वाणी जीवन दान देती है।

विशेष—इसमें अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा तथा अत्युक्ति अलंकार है।

आंब सूल सम ठोढ़ी भई, वह आमिल यह अमिरित भई।
तेहि तर गाड़ अपूरब जोवा, पाक आंब जनु अंगुरी टोवा॥
पाका आंब गात पियराना, वह कुमकुम जनु ईंगुर साना।
चिबुक कूप अति नीर गंभीरा, बिब अधर सजीव जेहि नीरा॥
अमिरित कुंड अगम औगाहा, जो तहं परा निकास न चाहा।
साहि कूप ढिग रहस न जाहीं, बूड़न कहं मुनि लाल कराहीं॥
परहि जाइ मन रहइ न देई, कुंतल कांट काढ़ि कै लेई।
नैन पियासे रूप जल, पीवत जेहि न अघाहि।
कूप चिबुक जो मन परै, बूड़ि-बूड़ि रह साहि॥46॥

शब्दार्थ—आव=शोभा। सूल=नोक। अमिल=सिद्ध। तर=नीचे। अपूरब=अपूर्व। जोवा=जोहना। पाक आंब=आव में पकाना। टोवा=टोहना, खोजना। पियराना=पीला पड़ना। ईंगुर=सिंदूर। औगाहा=अथाह। ढिग=पास। रहस=रहस्य। लाल=चाव, इच्छा। काट=कांटा।

व्याख्या—चित्रावली की ठोढी शोभा नोक के समान है। वह (चित्रा-

वली) सिद्ध है और यह अमृत है। उसके नीचे अपूर्व शोशा गड़ी हुई है उसके निकलने की ऐसी प्रतीक्षा है जैसे आंब को पकाकर अंगूरी शराब के निकलने की जाती है। जब आंबा पक जाता है, तो शरीर पीला पड़ जाता है। उस समय कुमकुम के सदृश्य और यह सिंदूर (पीला लाल मिश्रित) में सना हुआ प्रतीत होता है। ठोढी अति गहरे पानी वाले कुएं के समान है उस पानी में अधरों की परछाही अति गभीर रूप में पड़ती है। वह अमृत कुंड के सामान्य अगम्य और अथाह है। जो उसमें गिर पड़ता है, वह चाहने पर भी निकल नहीं पाता है। उस कुएं का रहस्य नहीं जाना जाता। मुनि गण भी उसमें डूबने की इच्छा रखते हैं। यदि उसमें मन डूब भी जाता है तो कोई उसमें पड़ा नही रहने देता। बालों की लट रूपी कांटे से उसको बाहर निकाल लेता है। नेत्र उस रूप-रूपी जल को पीने के प्यासे हैं उसको पीते-पीते थकते नही। कूप रूपी चिबुक में जो मन गिर पड़ता है वह डूब-डूब कर वहीं रह जाता है।

विशेष—अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा तथा अत्युक्ति अलंकार है।

सिधु सुता सम सवन अमोला, जल सुत बचन लागि विधि खोला।
जे अमोल नग जगत बखाने, नारि सेवन महं सबै समाने ॥
ग्यान बात बिनु आन न सुना, सुनत मोति तबहीं सिर धुना।
निसि दिन मुकुता इहै गुनाही, कंजन झांकि-झांकि जिमि जाहीं ॥
कंचन खुटिला जा न बखाना, गुरु सिष देइ लाग ससिकाना।
राहु मुड कहं सपरि निसंका, मुहुं कर लीन्हे सेलि मयंका ॥
औ पुनि सोभै खुमी सोहाई, अबही तखिन बढ़ा न जाई।
कलम दसन खँभिया दोऊ, सोऊ पट तर नाहिं।
एक छिन देखें जनम भरि, खुभी रहैं जिन माहिं ॥47॥

शब्दार्थ—सिधु=सुता। सम=सीप के समान। सवन=श्रवण, कान। जल-सुत=मोती। विध=विधाता। अमोल=अमूल्य। खुटिला=कर्णफूल। सिद्ध=शिष्य। ससि काना=समकाना, घबराना। सेलि=ढकेलकर, धक्का देकर। सपरि=दल। खुम्भी=एक आभूषण। तरिवन=कर्णफूल, तरकी या फूल की तरह का गहना। कलम=हाथी का बच्चा।

व्याख्या—परेवा ने चित्रावली के कान का वर्णन करते हुए कहा—हे

राजकुमार । उसके कान अमूल्य सीपी के समान हैं। उसमे जब मोती रूपी वचन लगते हैं तभी वे खुलते हैं। संसार उनका वर्णन अमूल्य रत्न के रूप में करता है उस नारी के श्रवन में वे सभी समा जाते हैं। वह ज्ञान की बात के अतिरेक और कुछ सुनती ही नही। और ज्ञान की बात सुनते ही उसमें पड़े-मोती अपना सिर धुनने लगते हैं। रात-दिन मुक्त लोग इन्ही बातों पर विचार करते हैं। खंजन रूपी नेत्र वहां झांक-झांककर देखते है और चले जाते हैं। उसमें सोने का सम्पूर्ण फूल पडा हुआ है, उसका वर्णन नही किया जा सकता। क्योंकि उसे देखकर गुरु और शिष्य दोनों ही घबरा उठते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो चन्द्रमा को जीतने के लिए राहु दल के साथ निसंक होकर युद्ध करने आया है और उसने आते ही चन्द्रमा को दोनो हाथों से पीछे धकेल दिया हो। उसके कानों मे खुम्भी शोभायमान हो रही है। किन्तु कर्णफूल से बढकर उसकी शोभा नही है अर्थात् उसकी तुलना मे हीन है। दोनों कानो की उपमा हाथी के बच्चे के कानों से दी जा सकती है किन्तु वह भी उसके योग्य नही है क्योंकि जो एक क्षण के लिए भी देख लेता है उसके हृदय में जन्म भर के लिए खुम्बी का सौन्दर्य प्रतिभासित हो जाता है।

विशेष—इसमे अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, तथा अत्युक्ति अलंकार है।

अब सुनु बरनों गींव सुहाई, विधि कर चाक भंवाइ चढ़ाई।
अंगुरिन बीच रही जो रेखा, सोई चीन्ह रेखा जो देखा॥
केलि समै कौतर की रीसा, तत बिन चलो लाइ भुइं सीसा।
नाचत मोर गींव सर जोवा, तबहीं सीस पाइ धरि रोवा॥
संख न सम भा सांझ संकारा, तातें जहं तहं करै पुकारा।
तवही छरन जान अपछरा, भूषन लाग न बांधै छरा॥
वोहीं कंठ जानु जिन्ह दीठी, अमिरित चाहि न पूरै मीठी।

सोहत हांस जराउगर, बदन हेठ निकलंक।
सर न मयंक सूर जनु, दुरत राहु के संक॥48॥

शब्दार्थ—गीव=गर्दन। मवाई=घुमाकर। कातर=कबूतर। घिन=क्षण। भुई=भूमि। छरन=क्षरण, हीनता। अयछर=अप्सरा। छरा=बीबी। हांस=हंसुली। सर=बरावरी न कर सकना। मयक=चन्द्रमा।

दुरत=छिप जाता है। संक=शंका, डर से।

व्याख्या—परेवा ने कहा अब सुनो मैं तुमको उसकी सुन्दर गर्दन के बारे में बतलाता हूं। विधाता ने उसे स्वयं ही चाक पर घुमाकर बनाया है। विधाता की उंगलियो के बीच में जो रेखाएं हैं वे रेखाएं ही उसकी गर्दन पर उभरी रेखाओं के सदृश्य दीख पड़ती हैं। केलि के समय कबूतर उसकी गर्दन से स्पर्धा करना चाहता है किन्तु न कर पाने पर शीघ्र ही उसका सिर भूमि की ओर झुक जाता है। नाचते हुए मोर की गर्दन भी उसकी बराबरी नही कर पाती इसलिए वह भी ऐसा शीश पाने पर भी रोता है। उसकी गर्दन की बरावरी शंख कर सकते हैं इसलिए संध्या के समय इधर-उधर पुकार करके संकेत करते हैं। अप्सरा की गर्दन भी उसकी (चित्रावली की) गर्दन की बरावरी नही कर सकती यह जानकर उसमें हीनता की भावना आ जाती है और वह न आभूषण पहनती है और न नीबी बांधती है अर्थात् सब कुछ उतार कर फेंक देना चाहती है। उसी कंठ को जिसने देख लिया उसे न अमृत की चाह रहती है और न किसी मिठाई की। उसके गले में जड़ाऊं हंसली सुशोभित होती है। इस पर भी मुख हठपूर्वक निष्कलंक बना रहता है। उसकी बरावरी सूर्य या चन्द्रमा भी नहीं कर सकते, क्योंकि वे राहु के डर से छिपे रहते हैं।

विशेष—इसमें उपमा, अनुप्रास, प्रतीत तथा व्यतिरेक अलंकार है।

दीरघ बाहु कलाई लोनी, अति सुंदर जग भई न होनी।
दुहुं पौनाल सोऊ सर जाहीं, तातें रंध कलेजे माहीं।
सुभ्र सुजन पर टांड सोहाई, टांड तहां छवि पाव सवाई।।
देखि धुनहि गन गंध्रव माथा, एक सो इंद्र वज्र पुनि हाथा।
देखि सो मंजुल सुभ्र कलाई, को न गयो बनफलं सिधाई (क)।।
यहि संग देखु जो जुरी हथोरी, कौंल पांगुरी ईंगुर बोरी।
विद्रुम बेलि सो अंगुरी दीसी, वह कठोर यह मूंगफली सी।।

अंगुरिन मुंदरी जरित की, सोह छला प्रति पोर।
असीकरण नग आंखि जनु, गांडि कनक के जोर।।49।।

शब्दार्थ—दीरघ=दीर्घ। लोनी=सुन्दर नायिका। पौनाल=कमल

की नाल या डंडी। रंध=छेद। टांड=एक आभूषण। गंध्रव=गंर्धव। हथोरी=हथेली। कौंल=कमल। विद्रुम=मूगा। अमीकरन=चन्द्रमा।

व्याख्या—उस चित्रावली की बांह लम्बी है तथा उसकी कलाई सुन्दर है। वे इतनी अधिक सुन्दर है कि ऐसी संसार मे और हो भी नही सकती। दोनों कमल की नाल के समान कोमल हैं किन्तु वे उनकी बराबरी नही कर सकती, इसीलिए उनके कलेजे मे छेद है। उसकी उज्ज्वल वर्ण वाली कलाई पर टांड नामक आभूषण सुशोभित है जहां पर वह आभूषण है वहा उसका सौंदर्य सवाया हो गया है। यह गंधर्वगण अपना माथा पीटने लगते है। एक तो वे इन्द्र के समान सुन्दर है दूसरे उनके हाथ मे बज्र नामक आयुध है इसलिए उज्ज्वल, कोमल या सुन्दर कलाई की तुलना में उनकी कलाई कहां ठहर सकती है। वन फल की सिधाई में कौन नही गया अर्थात् सभी गये हैं। उसके साथ ही जो हथेली जुड़ी हुई है। उसे देखो तो ऐसा लगता है मानो कमल की पंखुड़ी सिदूर मे डूबी हुई हो। वा मूंगे की बेल रूपी हाथ मे ये अंगुलियां दिखाई पड़ती है, किन्तु वह (बेल) कठोर है और यह (अंगुली) कोमल है। उस चित्रावली ने हाथ की अंगुलियों में जडी हुई अंगूठिया पहन रखी हैं और उसके पोर-पोर में छल्ले सुशोभित है। देखने पर ऐसे लगते हैं मानो प्रत्येक गांठ स्वर्ण से जुड़ी हो और उस पर चन्द्रमा रूपी नग लगा हो।

विशेष—इसमें अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा एवं अत्युक्ति अलंकार है।

—

कौंलावती खंड

सागर-गढ़-पति सागर राजा, सागर नाउं ओहि पै छाजा।
बारिद गहा आउ जो दुखी, एकन लहर करै पै सुखी॥

तेहि कै सुता कौंलापति बारी, सखिन साथ आई फुलवारी।
सब मुगुधा जोवन अंगिराता, कोइ ज्ञाता कोइ अज्ञाता॥
काहू तन अजहू लरिकाई, काहू घेरि लीन्ह तरुनाई।
जोबन सिसुता सम तन काहू, कोउ न जान होई कस नाहू॥
सबै कंवल जनु सूर न देखा, सब कुमुदिनि जनु चांद न पेखा।

अजहूं मनमथ उपनत, पेम म जानहि नाम।
अजहूं काहू देखा नहीं, सुरति सेज संग्राम॥50॥

शब्दार्थ—दाग्दि=दारिद्रय। मला=पकड़ा। वारी=किशोरी। मुगुधा=मुग्धा। लाता=जात यौवना। अलाता=अलात यौवना। नाहू=नाथ। उपनत=उत्पन्न। पेम=प्रेम। सुरति=संभोग। सेज=शय्या।

व्याख्या—सुजान सागर तट पर गिरने के पश्चात घूमता-घूमता सागर गढ़ राज्य में पहुंचा। सागर गढ़ का स्वामी का नाम राजा सागर है। उस पर सागर नाम (के गुण भी छाए हुए हैं। जिसे दरिद्रता ने पकड़ रखा है और जो दुखी है यदि वह यहां सागर तट आ जाए तो लहर उसे सुखी बना देती हैं (इसी प्रकार राजा सागर उसे इतना अधिक दान देता है कि उसकी दरिद्रता मिट जाती है।) उसकी कौंलावति नामक किशोर अवस्था वाली कन्या अपनी सखियों के साथ फुलवारी में आई। वे सब-की-सब मुग्धा नायिकाओं की भांति हैं। उनके शरीर यौवन अगड़ा रहा है। जो यौवन के आने पहचानती है। वे ज्ञात यौवना और जो नहीं जानती वे अज्ञात यौवना नायिका के सदृश्य है। किसी के शरीर मे अभी तक लडकपन है और किसी को तरुणता ने घेर लिया है, किसी के शरीर मे यौवन और शिशुता सम अवस्था मे है। कोई नहीं जानती कि किसका कौन स्वामी होगा। सभी उस कमल के समान ह जिन्होने सूर्य को नही देखा। या सभी उ कुमुदिनी के समान हैं जिन्होंने चन्द्रमा को नही देखा। अभी उनमें कामवासना ही नही हुई इसलिए वे प्रेम नामक भावसे परिचित नही हैं। और न अभी तक उन्होंने किसी को शय्या-सग्राम या सभोग करते देखा है।

विशेष—इसमें अनुप्रास, उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकार हैं।

कौलावलि गुन सागर रानी, पढ़ी अमर पिंगल सुर ज्ञानी।
लागी तजन गात सिसुताई, आए संचार कीन्ह तरुनाई॥
आइ जो रतिपति गात समाना, भूषन चाउ हिये अधिकाना।
घरी घरी पुनि लाज सुहाई, लोचन दसन झाँपि कै जाई॥
भौंह धनुख उतंग होइ चढ़ी, लोचन कोर दुहूं दिसि बढ़ी।
उर अंगिरत भांति अति भली, कंचन बेलि कपूर की कली॥
राजत रोमावली सोहाई, कुंदन को विदार सी खाई।
सिसुताई तन कोटि गही, रही अटक दिन चारि।
चलि निकसि पुनि हरि कै, तरुनाई बरि आरि॥51॥

शब्दार्थ—गुन=गुण। अमर=अमर कोष। पिंगल=छन्द शास्त्र। सुर=स्वर, सगीत। रतिपति=कामदेव यौवन। चाउ=चाव। घरी=घडी। झांपि=ढककर। धनुख—धनुष। उतंग=ऊंचा। कोविदार=कचनार का पेड़ या फूल। कोटि=किनारा। अटक=ठहरता। निकालि=निकलकर। आरि=हठपूर्वक।

व्याख्या—कौलावती रानी गुणों में सागर की भांति है। इसने अमर कोष, पिंगल शास्त्र तथा संगीत शास्त्र पढा है, एवं उसे इन सबका ज्ञान है। अब उसका शरीर से शिशुता घट रही है तथा तरुणता आ रही है। उसका शरीर कामदेव के समान सुन्दर हो गया है। उसके हृदय में अधिक से अधिक आभूषण पहनने का चाव बढ गया है। घड़ी-घडी उसमे लज्जा की भावना आ जाती है जिससे वह और अधिक सुन्दर लगने लगती है। उस समय वह अपने नेत्र और दांतों को ढककर चलती है। उसकी भौंह धनुष को भांति ऊपर की ओर चढी रहती हैं जिससे कि उसके नेत्र दोनों किनारे से और भी बढ जाते हैं जब उसका हृदय अंगडाई लेता है उस समय वह बडी अच्छी लगती है उस समय ऐसा लगता है मानो स्वर्ण की बेल पर कपूर की कली खिल आई हो। उसके शरीर की रोमावली बड़ी सुन्दर है, वह ऐसी लगती है मानो शुद्ध स्वर्ण से युक्त शरीर की रक्षा के लिए खाई के समान चारों ओर कचनार की बाढ है। कौलावती के शरीर के किनारे को शिशुता ने पकड़ रखा है और वह चार दिन के लिए ही अटकी

है, या ठहरी हुई है। तरुणावस्था के हठपूर्वक चले आने से अब वह पुनः हार कर निकलना ही चाहती है।

विशेष—इसमें अनुप्रास, उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है।

कौंलावती आइ फुलवारी, फैलि गईं चहुं दिसि सब बारी।
देखि पहुप चित भयो हुलासा, लागी तोरन कुसुम सुबासा।।
गूंथहि हार गींव लै डारहि, करहि गेंद आपुस महं मारहिं।
मारत सीस केस मुकुलाई, धावत उर अंचल फहराई।।
खेलहि तिया सबहि बिलरहाई, रति के रूप रंभ की जाई।
साजि गेंद कौंलावति रानी, सखी एक कहं मारि परानी।।
हंसति आइ धाइ कै तहवां, कुंअर सुजान बैठ हुत जहवां।।
देखत रूप कुंअर कर, रही अचक होइ ठाढ़ि।
जम होइ हिये समाइगा, लीन्हेसि जिउ जनु काढ़ि।।52।।

शब्दार्थ—चहुं=चारों। बारी=किशोरी। पहुप=पुहुप, पुष्प। गींव=गर्दन। मुकुलाई=खुल जाना। धावत=दौड़ती है। बिलम्हाई=विलमाना, देर लगाना। रति=सौंदर्य के देवता कामदेव की पत्नी। रम्भा=इन्द्र लोक की एक सुन्दर अप्सरा। परानी=भागी। जमहोइ=न टलना।

व्याख्या—कौंलावती फुलवाड़ी में आई और उसके साथ की किशोरी सहेलियां चारों ओर फैल गईं। वहां पर पुष्पों को देखकर उनका चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ और वे लोग सुगन्ध से युक्त पुष्पों को तोड़ने लगी। उन्होंने उन फूलों की माला गूंथकर गले मे डाल ली और फूलों को गेंद की तरह एक-दूसरे के मारने लगी। फूलों को मारते समय उनके बाल खुल गए। जब वे दौड़ती थी तब उनका आंचल फहराने लगता था। वे स्त्रियां देर तक या देर लगाकर खेलती रही। वे रति और रम्भा के समान रूपवती थी। कौलावती रानी ने एक गेंद बनाकर एक सखी के मारी और भाग गई। वह हंसती हुई आई और उसको पकड़कर वहां ले गई जहां कुंअर सुजान बैठा हुआ था कुंअर का रूप देखकर वह भौचक्की होकर खड़ी रह गई। वह वहां से टली नही और उसका हृदय उसमे (कुंअर मे) समा गया। उसे ऐसा लगा जैसे किसी ने उसका हृदय निकाल लिया हो।

विशेष—इसमें अत्युक्ति तथा उपमा अलकार है ।

आनन देखि रही खिन खरी, पुनि मुरछाइ पुहुमि खसि परी ।
प्रान परा प्रेमानल आचा, उड़िगा रहा हाथ पै सांचा ।।
सखी सबै चहुं दिसि तें धाई, देखि चरित सब रही ठगाई ।
करहिं संभार न जागै रानी, मेलहिं दसन खोलि मुख पानी ।।
घरी एक बीते भा चेतू, आहि अचेत भाउ हिय चेतू ।।
पूछहिं बात उत्तर नहिं देई, घूमत रहै सांस पै लेई ।
करहिं बसन लै मुख परछाहां, कहहिं भयो का खेलत माहां ।।
पुनि जो देखिन विरिछ तर, तपसि एक अनचीन्ह ।
कहा सबन मिलि निहचै, ए जोगी कछु कीन्ह ।।53।।

शब्दार्थ—आनन=मुख । खिन=क्षण । पुहुमि=भूमि । खसि पीर=गिर पड़ी । प्रेमानल=प्रेम रूपी अग्नि । सांचा=ठटरी । ठगाई=विस्मित होना । दसन=दांत । वसन=वस्त्र । निहचै=निश्चय ही ।

व्याख्या—कौलावती क्षण भर खड़ी-खड़ी उसका (सुजान का) मुख देखती रही, फिर वह मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी । उसके प्राण प्रेम रूपी अग्नि मे जा पड़े । उसका मन उड चला और हाथ पर ठठरी रह गई । चारों दिशाओ से उसकी सभी सखिया भागी आईं, और कौलावती का यह चरित्र देखकर वे ठगी-सी देखती रह गईं । वे कौलावती को अनेक प्रकार से सम्भालने का प्रयत्न करने लगी, किन्तु वह न जागी । उन्होंने उसके दातों को पकड़कर खोला और मुख मे पानी डाला । ऐसा करने पर एक घड़ी बाद कौलावती की चेतना लौटी । वह (शरीर) अब भी अचेत-सा था, किन्तु हृदय सजग हो गया । उसकी सखियां उससे बात पूछती है, पर वह उनका उत्तर नही दे पाती है । उसके शरीर मे सास ही घूमती रही अर्थात् वह सांस लेती रही और छोड़ती रही । उसकी एक सखी ने वस्त्र लेकर उसके मुह पर छाया कर दी और उससे कहा खेलते-खेलते यह क्या हो गया । फिर उन्होंने जो पेड के नीचे एक अनजाने तपस्वी को बैठा देखा, तो सब मिलकर कहने लगी कि इस योगी ने ही निश्चय कुछ कर दिया है ।

विशेष- इसम अनुप्रास उपमा अलकार है ।

छरी काहु एहि खेलत माहीं, अब धों इहां रहे भले नाहीं।
पुनि जो एकमत होइ सब आईं, डाँड़ि घालि मंदिल लै आईं॥
औ पुनि सबै गईं लै तहाँ, कौंलावति की माता जहां।
गंगा नाउं उदधि की जोरी, धन जननी जेहि बिमल किसोरी॥
बोलीं सखी नैन भरि पानी, खेलत कंवल कली कुम्हिलानी।
दाडिम डार गहे हुति खरी, कै दानो कै चुरइलि छरी॥
सुनतहिं लहरि चढ़ी चित गंगा, होइ गइ बिकल भयो सुखभंगा॥

देखि अवस्था धीय कै, उठी करेजे पीर।
बूड़ि गई नख सिखर लौं, दुहु लोचन भरि नीर॥54॥

शब्दार्थ—छरी=छली, मन्त्र मारना। डांडि=डोली। घालि=डालकर। मदिल=घर। उदधि=सागर। दाडिम=अनार। डार=डाल। छरी=आवेश मे आ गई। धीय=बेटी। बूडि गई=जी डूबना, मूर्च्छा आना। दाना=दानव।

व्याख्या—कौलावती की सखी ने कहा कि खेलते-खेलते किसी ने इसे मंत्र मार दिया इसलिए अब यहा और रुके रहना-अच्छा नही है। फिर सब सखिया एकमत होकर वहां आईं और कौंलावती को डोली में डाल कर घर ले आईं। वे सब मिलकर उसे वहाँ ले गईं जहां पर कौंलावती की माता थी। उसका नाम गंगा था और वह राजा सागर की जोडी (पत्नी) थी। वह माता धन्य है जिसकी ऐसी सुन्दर किशोरी कन्या है। कौंलावती की सखी अपने नेत्रों मे आसू भरकर बोली कि यह कमल की कली खेलते ही खेलते कुम्हला गई। अनार के पेड़ की डाल पकड़कर यह खड़ी हुई थी कि कोई दानव अथवा कोई चुडैल आवेश मे आ गई। यह बात सुनते ही गगा के मन में क्रोध की लहर चढ़ आई और उसका सुख भग हो गया तथा वह व्याकुल हो गयी। अपनी बेटी की ऐसी अवस्था देखकर उसके कलेजे मे दु:ख उठा। वह नख से शिख तक उसमे डूब गई और उसके दोनो नेत्रों मे आसू भर आये।

कंठ लाइ मुख चूमै रानी, धोवै बदन नैन के पानी।
पूछे बात प्रान कहु मोरा, काहे बुड़ि गयो जिउ तोरा॥

कै तुइ तन कोउ पीर उपाई, कै कछु दिष्टि परा हुतआई।
कहसि बेगि जेहि औषद मागों, प्रान होइ तो देत न खांगो॥
बैद बुलाइ खिलावौं बरी, जोगिन्ह आनि बंधावौं जरी।
जोगी नांम कान जब परा, बहुरा चित जो चित हुत हरा॥
देखा नैन खोलि चहुं ओरा, देखेसि सीस माता की कोरा।
लाज सकुच चित ऊपजी, उठी बेगि अकुलाई।
बैठि ओढ़ि संभारि पट, लोचन भए सुखाई॥55॥

शब्दार्थ—बूडि गयो जिउ=जी बूड़ना, मूर्च्छा आना। उपाई=उत्पन्न हुई। दिष्टि=दृष्टि। बेगि=शीघ्र। औषद=औषधि। खागो=कमी करो। बरी=वाटिका, गोली। जरी=जड़ी, औषध। परा=पडा। चित हुत हरा=चित हरा होना, प्रसन्न होना। चहुं=चारों। पट=वस्त्र।

व्याख्या—रानी ने अपनी पुत्री को कंठ से लगाया तथा उसके मुख को चूमने लगी और अपने नेत्रों के जल से उसके मुंह को धोने लगी। मेरे प्राण कहो कहकर वह बार-बार बात पूछने लगी—तेरा जी किस लिए डूब गया है। अथवा तेरे शरीर में कोई पीडा उत्पन्न हो गयी है, अथवा तेरी दृष्टि में कुछ पडा था अर्थात् तूने कुछ देखा था। फिर उसने कहा—शीघ्र जाओ और औषधि मागकर लाओ। इसके प्राण रह जाएं अर्थात् यह ठीक हो जाए तो मूल्य मे कोई कमी न करो। वैद्य जी को बुलाओ और इसे दवा की गोली खिलाओ। जोगी को बुलाओ वह इसके जड़ी (गडा आदि) बांध जाए। योगी का नाम जब कौलावती के कान मे पड़ा तो उसका चित्त वापस लौटा और वह प्रसन्न हो गया। उसने अपने नेत्र खोल कर चारों ओर देखा। माता की ओर शीश करके उसने देखा, तो उसके मन में लज्जा की भावना उत्पन्न हुई और वह सकुचा गई और वह शीघ्र ही अकुला कर उठ बैठी, उसने अपने वस्त्र को सभाल कर ओढा तथा उसके नेत्रों मे सुख छा गया।

रहसि रानी जब देखसि चेतू, कंठ लाइ पूछै करि हेतू।
नित गौननि खेलति फुलवारी, आजु विकल काहें भइ बारी॥
कहेसि सखी संग अपने जाई, भंवति फिरत हुति बाल लुभाई।
फिरत सीस चखु भा अंधियारा, तांवरि आइ परी बिकरारा॥

तुम माता जनि बिस्मै करहू, अब जिय कुशल, हियें जनि डरहू।
सुनि रानी जिय भयो अनंदू, छाढ़ेउ राहु पून कर चंदू ॥
परतिहार सों कहा हुकारी, अब जनि जान देहु कहुं वारी।
दिन भर आय यहं छइन, परी सांझ जब आइ।
विकल भई कौंलावती, चढ़ि धौराहर जाइ ॥56॥

शब्दार्थ—नित=नित्य। गौनति=छिपाना। भवति=भ्रमित, घूमती हुई। सुभाइ=स्वभाव। तावरि=झाई। विस्मै=विस्मय। पून=पूनो, पूर्णमाशी। परति हार=प्रतिहारी, रखवारा। छइन=क्षय हुआ।

व्याख्या—रानी ने जब यह देखा कि कौलावती की चेतना लौट आई है तो उसने उसे कंठ से लगा लिया और पूछा कहो क्या बात हुई। तुम तो रोज ही फुलवारी में लुक छिपी का खेल खेलती थी। हे किशोरी आज तुम क्यों व्याकुल हो गई। उसकी संग की सखी ने अपने जान मे कहा कि बाल स्वभाव वश यह इधर उधर घूमती-फिरती थी कि इसका सिर एकदम चकरा गया और आंखों के सामने अन्धेरा छा गया और झाई सी आ गई फिर यह व्याकुल होकर गिर पड़ी। तुम माता हो इसलिए इस बात का पर अचम्भा करती हो अब इसका जी ठीक है या कुशल से है और इसके लिए मन में डरने की आवश्यकता नहीं है। यह बात सुनकर रानी के मन में आनन्द छा गया ऐसा लगा मानो राहू ने पूर्णमाशी के चन्द्रमा को छोड़ दिया हो। उसने जोर प्रतिहारो से कहा कि किशोरियों से कहो कि अब चलो चलना है दिन भर यहां आए हो गया और उसका (दिन का) समाप्त हो गया है संध्या घिर आई अब चलना है यह सुनकर कौंलावती व्याकुल हो गई और डोली में चढकर धौराहर (किले) की ओर चल दी।

विकल कंवर अथ एव जनु सूरा, हृदय जमेउ बिरह अंकूरा।
लोचन नीर सेज सब बूड़ी, कौंलहि अछज भई जर जूड़ी ॥
दहकि सरीर अगिनि जनु लाई, जहं जहं भीजै जाइ सुखाई।
सायक अनिल अनल भई ससी, सांपिनि सेज अंग अंग डसी ॥
भवन भयउ निखंड अंधियारा, बोली चुरइलि नाहर द्वारा।
कुमुदिनि नाउं सखी एक अही, तासों बोलि बिथा सब कही ॥

सुनु कुमुदिनि तैं कंवल की जोरी, संगिहु सन ना भावै चोरी।

हम तुम्ह ठॉइ एक सग, सव प्रगटेउ सोइ नात।
तेहि सो कहो उघारिकै, सुनै न पावै मात ॥57॥

शब्दार्थ—अछत =अक्षत। दहकि=जलना। सायक=वाण। अनिल =वायु। अनल=अग्नि। ढारा=ढहार, गर्जन। विथा=व्यथा। नात= सम्वन्ध।

व्याख्या—कौलावती सोचती है कि वह कुअर भी विरह में व्याकुल है, अथवा कोई शूरवीर है उसके हृदय में विरह का अंकुर जम गया है। उसके नेत्रो से अश्रु बहते रहे उसमे सारी शय्या डूब गई या भीग गई। कौलावती ऊपर से तो अक्षत रही किन्तु जडै बुखार के कारण कमजोर हो गई। उसका शरीर दहकने लगा मानो किसी ने उसके शरीर मे आग जला दी हो इसी कारण जहा-जहा से वह भीगती थी वही-वही से सूख जाती थी, अग्नि (विरह की), अनल (उच्छवास, छोड़ी हुई गर्म सास) के वाण भी अव चन्द्रमा की भाति शीतल हो गए। विरह रूपी सर्पिणी ने शय्या के अंग-अंग को डस लिया है अर्थात् शय्या पर पड़े-पडे विरह अधिक व्याकुल करने लगा। घर मे जव घना अन्धकार छा गया, तव विरह रूपी चुडैल ने शेर की भांति गर्जन किया। कौलावती की कुमुदिनी नामक एक सखी थी। उसने उस सखी से अपनी सारी व्यथा कही। हे कुमुदिनी! सुन वे लोग (हम दोनों कमल की जोडी के समान है। अत: साथवाले से चोरी करना या वात छिपाना अच्छा नही होता। हम तुम एक साथ ही खड़ी थी, जब यह नाता (कुंअर से प्रेम) जुडा। इसीलिए तुमसे यह इसी से सारी बात बतला रही हूं, जिसे कि माता न सुन पावें।

तेहि सो कहौं जो मोर मन माना, परै न पाउ आन के काना।
कालि जो गई सखी संग वारी, बीनत आहि फुल फुलवारी॥
जोगी एक अहा तहां लोना, देखत जनु सिर मेलसि टोना।
भौंह धनुष वरुनी सर सांधा, मारेसि हियें बान विष वांधा॥
सुधि न रही वुधि लैगा हरी, बिनु जिउ होइ पुहुमि खसि परी।
मैं अचेत वह अहा अचेतू, गयो बिछोहि हिय दै हेतू॥
नहिं जानों वहुका भा जोगी, भइ जाहि कारन हौं रोगी।

खोजहूं सखी सो जोगना, जो रे गयो मोहि मारि।
नाहि तो करिबौं कांथरी, तन दुकूल में फारि ॥58॥

शब्दार्थ—मोर=मेरा। पाउ=पाये। आन=दूसरे। कालि=कल। बारी=फुलवारी। लोना=सुन्दर। टोना=टोटका। बुधि=बुद्धि। पुहुमि=भूमि। बिछोहि=निर्मोही। रोगी=प्रेम की रोगी। कांथरी=गुदरी, कंथा, जोगी का वस्त्र।

व्याख्या—कौलावती ने कहा तुझसे मैं अपने मन की बात कहती हूं। यह बात दूसरे के कान में नही पड़नी चाहिए। कल जो सखियों के साथ वाटिका गयी थी। इसी फुलवारी मे से यह फूल (प्रेम को) बीन लायी हूं। वहां पर एक सुन्दर जोगी था। उसे देखते ही ऐसा लगा मानो किसी ने सिर पर टोटका कर दिया हो। उसने भौह रूपी धनुष पर बरुनी रूपी बाण साधा हुआ था। वह बाण विष (विरह) में डूबा था, उसने वह बाण मेरे हृदय में मार दिया। उसके लगते ही मैं बेसुध हो गयी और उसने मेरी बुद्धि हर ली। बिना जीव के (चेतना के) होने के कारण मैं भूमि पर गिर पड़ी। मैं अचेत थी तो वह अचेत था इसी लिए वह निर्मोही मेरे हृदय में प्रेम का भाव जगा गया। मैं उस योगी के बारे बहुत कुछ नहीं जानती। उसी के कारण मैं रोगी (विरह के कारण) हो गई हूं। हे सखी उस जोगी को खोजो, जो मुझे मारकर चला गया, नही तो मैं भी अपने कपड़े फाड़ कर कांथरी धारण कर लूंगी या इन कपडो की ही कांथरी बना लूंगी।

विशेष—(1) चित्रावली की मानसिक दशा का चित्रण किया गया है।
(2) इसमे अनुप्रास तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है।

अबही एही नगर महं सोई, पावै बेनि जो खोजै कोई।
आजु जो यहां खोज सो पावा, कालिह जो जाइ रहै पछतावा ॥
पंथिन्ह दया होइ सुनु थोरी, मन महं रमै चलै तेहि ओरी।
हौं अधीन वह अति निरदई, दुहुं केहि भांति निबाहै दई ॥
पंथी पंछी थिर को राखा, छिन-छिन बैठ आन तरु साखा ॥
ओहि सुपंख बहु तरुवर डारा, हौ पींजर महं करौं पुकारा।
कौन सो हितू मिलै अब आई, ब्याधा होइ फंदावै जोई ॥

हाथहु तें जो उड़ि गयो, पुनि कहुं दिष्टि न आउ ।
तेहि पंखी के पाछे महं, जनि बूझि जिय घाउ ।।59।।

शब्दार्थ—अबही=अभी । बेनि=वेणी । कलिह=कल । थोरी=थोडी । निरदई=निर्दयी । थिर=स्थिर । डारा=डाल । पीजर=पिजरा । फंदावै=फादा लगाकर फसाना । व्याधा=शिकारी । घाउ=घाला, लगाया ।

व्याख्या—कौलावती ने अपनी सखी से कहा कि वह जोगी अभी इसी नगर मे होगा । उसे जो खोजकर लायेगा, उसे ही वेणी मिलेगी । आज जो खोज लेगा वह उसे पा लेगा । कल जो उसे खोजने जाएगा वह पछतायेगा । सुना है पथिको के मन मे दया थोडी होती है । जब तक उसका मन रमता है तब तब तक वे वहां रहते है नही तो दूसरे स्थान की ओर चल पड़ते है । वह अति निर्दयी है और मैं उसके अधीन हू । विधाता दोनो का (निर्दयी और प्रेम की अधीनता) को किसी प्रकार निर्वाह करेगा (भाव यह है कि निर्दयी निर्मोही होता है, जो मोह करने वाला होता है, वह दयालु होता है यह दोनो गुण पृथक-पृथक है इसी की चिन्ता कौलावती को है ।) पथिक और पक्षियो को ईश्वर ने स्थिर कहा रखा है जैसे पक्षी क्षण-क्षण में एक डाल से दूसरी डाल पर बैठता फिरता है, उसी प्रकार पथी भी एक से दूसरे स्थान की ओर चलता रहता है । पक्षी के पास अच्छे-अच्छे पंख है, और बैठने के लिए बहुत सी डाल है, किन्तु मै पिजरे में बन्द रहकर भी उसे पुकारती रहती हू । अब मुझे कौन सा प्रेमी मिल सकता है, जो शिकारी हो । जो मुझे फदे मे फंसाकर ले जाए । जो पक्षी एक बार हाथ से निकल जाता है, वह पुनि दिखाई भी नही देता । उस पक्षी रूपी पथिक के पीछे मैंने जान बूझकर अपने मन को लगा दिया है । भाव यह है कि मैं उसके प्रेम मे पड़ गई हूं ।

विशेष—(1) इस पद मे कौलावती ने अपनी प्रथम प्रेम-भावना की ओर सकेत किया है ।

(2) इसमे अनुप्रास, रूपक, पुनरुक्ति तथा दृष्टान्त अलकार है ।

कौल बिथा सुनि कुमिदिनी रोई, अस दुख दुखी कहसि जग कोई ।
अबहिं न सूरज किरिन समानी, अनगुन कौल कली कुम्हिलानी ।।

अबहि न बैठि रहस रस कीन्हा, भौंर वियोग आनि विधि दीन्हा।
उपजेउ प्रेम हियें जो आई, करू न चित मैं करव उपाई।।
प्रीतम नेह अगिनि जनु डरिये, एकहि बार धाइ नहि परिये।।
धरै धीर दुख सहै जो बारी, ताहि सो अगिनि होइ फुलवारी।
हौं कुमुदिनि पढ़ि पारथ जानौं, कहसि तो मोहि सरग ससि आनो।।
तोर बिथा सुनि मोर हिय, जामेउ विरह अंकूर।
अब निसि बीते कौंल कहं, भोर देखावौं सूर।।60।।

शब्दार्थ—बिथा=व्यथा। अनगुन=अज्ञात। रहस=रहस्य, प्रेम। भौर=भ्रमर। करव=करना। धाइ=दौड़। पारथ=पार्थ, अर्जन। जामेउ=जामना या पैदा होना।

व्याख्या—कवि का कथन है कि कौलावती की व्यथा को सुनकर उसकी सखी कुमुदिनी रोने लगी। ऐसा भी कही किसी के प्रेम मे दुःखी हुआ जाता है। क्या संसार में कोई ऐसा कह सकता है? अभी तो प्रेमी के प्रेम रूपी सूर्य की किरण भी नही पड़ी या इसमें समायी (अर्थात् अभी तो यह पता ही नही कि कुअर भी क्या इससे प्रेम करता है!) और यह (अज्ञात यौवना) कौलावती रूपी कली उसके प्रेम के विना कुम्हलाने लगी। अभी तो भौंरे ने इस कली पर बैठकर उस रहस्यमय रस का पान ही नही किया और विधाता ने इसे उस भौंरे का वियोग दे दिया। यदि इसके हृदय मे उसके प्रति प्रेम की भावना उमड़ आई है तो मैं क्या उपाय करूं कि यह और अधिक चिंता न करे। प्रिय का प्रेम मानो अग्नि है अतः उससे डरना, बचना चाहिये। एक ही बार में दौड़कर उसमें नहीं पड़ना चाहिए। जो किशोरी बाला धैर्य धारण करती है दुःख सहन कर सकती है, उसकी जीवन रूपी फुलवारी मे प्रेम रूपी अग्नि जलती रहती है। कौलावती ने कहा—हे कुमुदिनी मै तुझे ज्ञान में कृष्ण की भाति मानती हूं, अब तू ही बता कि स्वर्ग से यह चन्द्र मा किस प्रकार आयेगा। कुमुदिनी ने कहा—तेरी व्यथा सुनकर मेरे हृदय में इस बात का पक्का विश्वास हो गया कि तेरे हृदय में विरह का अंकुर जम गया है। अब कौलावती तू ही बता कि यह रात्रि कैसे बीते, सवेरा हो, सूर्य दिखाई पड़े, भाव यह कि प्रातः होने तक तू किसी तरह धैर्य धारण करे।

विशेष—(1) इसमें अज्ञात यौवना कौलावती की विरह व्यथा एवं उसकी अधीरता का वर्णन किया गया है।

(2) इसमें *अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा तथा वक्रोक्ति अलंकार है।*

कुमुदिनी सो मन रचा उपाई, भोर होत गंगा पहं आई।
कहेसि राति मैं सपना दीठी, जोगी संग जनु बार बईठी॥
तिन्ह महं एक सिद्ध जो आहा, कौलावति कर अंचल गाहा।
हौं जनु बरबस जाइ छोड़ाई, जोगी मांगै खपर भराई॥
एको नाहिं जो देखौं जागी, तब से नैन चटपटी लागी।
कह यह सपन कैस बेवहारा, तुम रानी अब करहु बिचारा॥
कालिह जो कंवल अंग भरिआवा, मकु कछु होइ देव कर भावा।

बोली गंगा सांचही, महादेव कर भाव।
जोगिन्ह आनि जेंवाबहु, जाइ कौल अरसाव॥61॥

शब्दार्थ—राति=रात में। दीठी=देखा। उईठी=बैठी। गाहा=पकड़ना। भराई=उजरत। चटपटी=छटपटी, घबराहट। मकु=शायद। भावा=भाव आदेश। सांचही=सत्य ही। कर भाव=स्मरण कर। अरसाव=बाधा।

व्याख्या—कौलावती की व्यथा सुनकर रात्रि में ही कुमुदिनी ने अपने मन में एक उपाय रचा। प्रातः होते ही वह गंगा के पास आई। उससे कहने लगी कि रात मे मैंने स्वप्न देखा है कि मानो द्वार पर मैं योगियों के साथ बैठी हुई हू। उनमें से एक सिद्ध पुरुष भी है। उसने कौलावती का आंचल अपने हाथ से पकड़ लिया। मैंने जाकर उससे जबर्दस्ती, वह आंचल छुड़ाया इस पर वह योगी खरपर की उजरत मांगने लगा। यह देखकर मैं जाग गई और एक पल भी नींद नही आई। तब से नेत्रों मे छटपटाहट है। यह स्वप्न सुनकर उसने कहा—हे रानी! अब तुम्ही विचार करके बतलाओ कि मैं क्या करूं। कल कौलावती के अंग कमल के समान पूर्ण विकसित हो जायेंगे। शायद यह (योगी का आचल पकड़ना) भगवान का ही कुछ आदेश हो। गंगा महादेव जी का स्मरण करके बोली, सत्य है। तुम जोगियो को भोजन कराओ जिससे कि कौलावती की बाधा दूर हो।

कुमुदिनी रहसि रसोई साजी, सगरे नगर दुंदभी बाजी।
जोगी जनु कोई कतहुं न जाई, जो आवै राखो बिलमाई॥
आनि जेंवाहैं अपने दोसा, राजबार कर लेइ परोसा।
पाक रसोइ ठांव संवारा, जत कत गये बुलावनहारा॥
जोगिन पांति आनि बैसाई, कुमुदिनी कौंलावती पहं आई।
चीन्हंहु आइ कौंल रवि मानी, जेहि बिनु रहसि रैंनि कुम्हिलानी॥
को अस जोगि काहि सर जटा, जेहि के बिरह परी हिअ कांटा।
सुनि धाइ कौंलावती, भा अनंद हिय मांझ।
चितवत भई निरासजिअ, होइ गई जनु सांझ॥62॥

शब्दार्थ—सगरे=सारे। दुंदभी=नगाड़ा। जनु=जन। बिलमाई=रोक लो। दोसा=घोसा, दिने। जतकत=जहां-तहां। बैरनाई=बिठाया। रवि=सरदार। कंटा=कांटा। धाइ=तेजी से चली।

व्याख्या—कुमुदिनी ने रानी की आज्ञा पाकर रसोई बनवाई और सारे नगर मे नगाड़ा बजवा दिया कि कोई भी जोगी लोग कहीं न जाएं। जो आये उसे रोक कर रखो। आज के दिन सभी राजद्वार से आकर अपना परोसा ले लें। और जीमे या भोजन खाये। उस स्थान पर भोजन पकाकर सम्भालकर रखा गया। इसके बाद राज कर्मचारी जहा-तहां जोगियों को बुलाने के लिये गये। जोगियों की पक्तियां आई और उन्हे बिठाया गया। तब कुमुदिनी कौंलावती के पास आई। हे कौलावती चलकर उसे पहचानो जिसे तुमने अपना सरदार या स्वामी माना है। जिसके बिना तुम रात भर व्याकुल रही। कौन-सा ऐसा जोगी है और किसके सिर पर जटा है, जिसके विरह में तुम पड़ी हो और जो तुम्हारे हृदय में कांटे के समान चुभ गया है। यह सुनकर कौंलावती तेजी से चली। उसके हृदय में आनन्द छागया। सब योगियों को देखकर उसका मन निराश हो गया और उन्हे देखते-देखते संध्या हो गई।

कहेसि कुमुदिनी एह गन तारा, वह निहं आउ सूर उजियारा।
बेगहिं खोजहु देवसहि जाई, जनि रहि जाई रैंनि हिय छाई॥
आसन आसन बूझहिं दासा, बहु केहि आसन मिलै सो आशा।
कुंअर भवन सर साज संवारा, ततखन आवा राज हुंकारा।

कहेसि आजु है राज बुलावा, जोगिन कतहुं जाइ नहि पावा।
पहिले राजपरोसा खाहू, पाछे जहं भावे तंह जाहू ॥
अग्या राज न मेटइ कोई, का जोगी का भोगी होई॥
जोगिन्ह सुना अतीथ एक, आवा अग्या मानि।
बहु आदर कै लइ गए, सिंह पुरुष पहिचानि ॥63॥

शब्दार्थ—निहं=नही। बेगहिं=शीघ्र। झाई—परछाई। दहु—कदाचित्, शायद। सर—तालाब। ततखन—तत्क्षण। हकारा—सरकारा। अतीथ—आतीथ्य।

व्याख्या—कौंलावती को निराश होते देखकर कुमुदिनी ने कहा यह सभी तारा गण हैं, वह सूर्य के से उजाले वाला जोगी नही आया। दिवस रहते उसे शीघ्र ही खोजकर लाओ। जिस आदमी या जोगी की परछाही इसके हृदय मे रात-भर रही। यह सुनकर दासों ने जोगियों के प्रत्येक आसन को ढूढा। इस आशा में कि शायद किसी आसन पर वह रमता हुआ मिल जाये। तालाब के किनारे कुंअर ने चलने के लिए अपना सामान ठीक किया। तभी वहा राजकीय हलकारा या (बुलाने वाला) आ पहुंचा। उसने आकर कहा कि आज राज्य की ओर निमन्त्रण है इसलिए जोगी कही नही जा सकते। पहले राज परोसा खाओ फिर जहां मर्जी आए वहा जाओ। राजा की आज्ञा कोई नही मिटा सकता चाहे वह जोगी हो या वह भोगी (गृहस्थी) हो। जोगी ने अतीथ्य के बारे में सुना और वे राजा की आज्ञा मानकर आये। उस कुंअर रूपी सिंह पुरुष को पहचान कर सभी लोग आदर के साथ लिवा ले गए।

विशेष—इसमे अनुप्रास, पुनरुक्ति, रूपक अलकार है।

कुमुदिनी देखि कुंअर की ओरी, कहेसि किये अलि पकज जोरी।
निहचै यही बिदेसी जोगी, परगट जोगी गुपुत कोउ भोगी॥
निहचै यही सूर उजियारा, जेहि बिनु कौंल आहि बिकरारा।
निहचै यही सो भौंर उदासी, जेहि बिनु जल महं जलज पियासी॥
निहचै यहि पहं पेम ठगोरी, जो धन देखै होइ सो बौरी।
जानि बूझि कोउ जोव न देई, लोचन कोर छोरि जिउ लेई॥
धनि सो कंवल धनि यह रविसाईं, हम कुमुदिनि कहं लखै तराईं।

गई धाइ सो देखिकै, कंवलावति के पास।
कहेसि कि मलिनाई तजो, सूर कीन्ह परगास ॥64॥

शब्दार्थ—ओरी=ओर। जोरी=जोड़ी। गुपुत=अप्रत्यक्ष। जलज=कमल। ठगौरी=ठगोरी। धन=स्त्री। बौरी=पागल होना। धनि=धन्य। रविसाई=स्वामी सूर्य। तराई=तारा।

व्याख्या—कुमुदिनी ने कुंअर की ओर देखकर कहा कि यही कमल (कौलावती) और भौंरा (कुंअर) की जोडी है। निश्चित रूप से यही विदेशी जोगी है। यह प्रगट रूप में जोगी बना हुआ है किन्तु अप्रत्यक्ष रूप में यह कोई भोगी है। निश्चित रूप में यही सूर्य के से प्रकाश वाला है। जिसके बिना कौलावती इतनी व्याकुल हो गई है। निश्चत रूप से यही उदासी भौंरा है। जिसके बिना जल में रहता हुआ भी कमल प्यासा है। निश्चित रूप से यही ठगोरी या प्रेम मे ठगने वाला है। जो भी स्त्री इसे देखती है वही उसके प्रेम में पागल हो जाती है। कोई भी जान-बूझकर अपने प्राण नहीं देता। यह नेत्रों के किनारे के छोर से उस जी (प्राण) ले लेता है। वह कमल (स्त्री) भी धन्य है और स्वामी सूर्य भी धन्य है। कुमुदिनी कहती है कि हम इन्हे ताराओं की भांति देख सकते हैं। यह देखकर वह कौलावती के पास तेजी से गई। उसने जाकर कहा कि अपनी मलिनता या खिन्नता छोड़ो, क्योंकि अब सूर्य अपना प्रकाश फैला रहा है अर्थात् कुंअर आ गया है।

विशेष—इसमें अनुप्रास, रूपक और दृष्टान्त अलंकार है।

सुनत सूर कौंलावति रानी, अति हुलास चखु भरि गए पानी।
तब कुमुदिनी हंसि पूछा बाती, कहु दहुं मोहिं सूर परभाता॥
जहं हुलास तहं हंसी बखानी, लोचन पानि भरे क्या जानी।
कौंलावति तब उत्तर दीन्हा, सुख कर ठांव दुःख हुत कीन्हाँ।
निसि जो अथैगा पीतम सूरा, हिय सर रहा दुःख जल पूरा (क)।
अब पिउ आइ चाह तोइं दीन्हा, सुनि सुख हंस फुरहुरी लीन्हा॥
तेहि की पांख पानि जो अरा, सो दुहु लोचन कै मगु ढरा।
दिष्टि लपेटी सुरति पिय, अब दरसन होइ।
दुहुं लोचन के नीर सों, बेगिअ डारों धोइ ॥65॥

शब्दार्थ—हुलासू=प्रसन्न। चखु=चक्षु। परभाता=प्रभात, प्रातः। बखानी=बखान करने लगी, कहने लगी। पानि=पानी। ठाव=स्थान। अथैगा=अटेगा, अटकेगा। पीतम=प्रियतम। फुरहुरी=पंखों को फड़फड़ाना। पांख=पंख। मगु=रास्ता।

व्याख्या—कुमुदिनी की यह बात सुनकर कौलावती रानी अति प्रसन्न हुई और प्रसन्नता के कारण उसके नेत्रों मे अश्रु उमड आये। तब कुमुदिनी ने उससे हंसकर बात पूछी और कहा कि मैंने तुमसे पहले ही कहा था सूर्य का प्रभात तो होने दो। जहां प्रसन्नता होती है वहा हंसी की बात की जाती है। नेत्रों में पानी किस कारण भर गया इसे कौन जानता है। कौलावती ने तब उत्तर दिया कि सुख के स्थान पर यह दुःख क्यों उत्पन्न हुआ। रात्रि में जो शूरवीर प्रियतम अटक गया था उसके कारण हृदय रूपी तालाब में दुःख रूपी जल भर गया। कुमुदिनी ने कहा अब वह प्रियतम आ गये हैं जिसकी तुझे चाह थी। यह सुनकर कौलावती रूपी हंस ने फुरहरी ली या अपने पंखों को फड़फडाया। इन पखों पर जो पानी ठहर गया था, वही दोनो नेत्रो के रास्ते से वह निकला। कुमुदिनी ने कहा अब तुम अपने दोनो नेत्रों को उनके जल से शीघ्र धो डालो अर्थात् यह रोना समाप्त करो या नेत्रों को स्वच्छ कर लो। अब सुनो तुम्हें तुम्हारे प्रिय के दर्शन होने वाले हैं इसलिए अपने नेत्रों में इस प्रिय के प्रति प्रेमभाव ले आओ उसकी सुरति में लपेट लो।

कौल आइ दिनकर पहिचाना, भा रतनार बदन पिअराना।
दरसन देखि दंडवत करी, कहेसि कि एही अली हौं छरी॥
यही मोर जिउ लीन्ह चोराई, यही मंत्र पढ़ि हौं बौराई।
जेहि बिनु राति अही कुम्हिलानी, सो तैं सूर देखावा आनी॥
तैं बरबस हौं चेरी कीन्हा, औ बिनु दाम मोल पुनि लीन्हां।
ओहि के हेरत हिय न सेराई, नियर जाउं करु सोइ उपाई॥
असमन आवै होउ जो होना, नियर जाइ मुख देखौं लोना।

कह कुमुदिनी संसय कछु, जनि जिअ माहि करेहु।
अपन हाथ परोसि कै, भोजन जोगहि देहु॥66॥

शब्दार्थ— दिनकर=सूर्य । रतनार=लाल । पिअराना=पीला पड़ना । छरी=छली । चोराई=चुरा लिया । चेरी=अनुचरी । सेराई= सिरहाना, तृप्त होना । अस मन=ऐसा मन मे ।

व्याख्या—कौलावती ने आकर कुंअर रूपी सूर्य को पहचान लिया । उसका मुख प्रेम भावना के कारण उत्पन्न लज्जा से पहले लाल हुआ । फिर यह सोचकर कि उस योगी से प्रेम का किसी को पता न चल जाये वह भयभीत हो गई इससे वह पीला पड़ गया । उसने दर्शन कर कुंअर को दण्डवत नमस्कार किया । उसने सखियों से कहा कि यही मुझको छलने वाला है । इसी ने मेरा मन या जीव चुरा लिया है । इसी ने मन्त्र पढ़ा जिसके कारण मे बौरा गई । इसके विना मैं रात भर कुम्हलाई-सी रही और किसी प्रकार या मुश्किल से सूर्य को देख पाई । इसने मुझको जबर्दस्ती अपनी अनुचरी बना लिया है और इसने मुझे बिना दाम के खरीद लिया है उसको देखते रहने से मेरे मन की तृप्ति नहीं होती । इसलिए कुछ ऐसा उपाय करो जिससे मैं उसके पास जा सकू । ऐसा मन मे विचार आता है कि जो होना है तो हो जाए, मैं तो पास जाकर उनके सुन्दर मुख को देखना चाहती हूं । मेरे जी की दशा जानकर तुम कुछ करो । सखी की यह बात जानकर उसकी सखी कुमुदिनी ने कुछ संशय के साथ कहा कि तुम अपने हाथ से भोजन परोस कर जोगी को दो ।

विशेष—इसमे अनुप्रास और उल्लेख अलंकार है ।

कौल सोरहो साज बनाई, रहसि संभु सेवा कहं आई ।
अपने हाथ परोसा लेई. दुनों हाथ जोगिन कहं देई ।।
दइ भोजन बिनवं कर जोरी, मन अरु नैन कुंअर की ओरी ।
कुंअर न देखं सीस ऊंचाई, रहा नैन दुइ पाएन्हं लाई ।।
कौलावति कहं सबं सिगारा, अंग-अग होइ लाग अंगारा ।
जाहि लागि सब साज सो साजा, देख जो सो न आव केहि काजा ।
बहुरि हिये महं करं बुझाऊ, जो न देख तौ का पछिताऊ ।

मोरे मुख सों सहसगुन, सुंदरता ओहि पाउ ।
जौ दिन दीप न दीखई, यहि कर का पछताउ ।।67।।

शब्दार्थ—सोरहो सूरज=सोलह श्रृंगार। सभु=शिव, योगी। दुनौ=दोनों कहं देई=कह देगें। विनवँ=विनती। अगारा=आग का अगारा। जाहि लागि=जिसके लिए। केहि काजा=किस काम का। वुझाऊं=समझाने लगी।

व्याख्या—कुमुदिनी की सलाह मानकर कौलावती ने सोलह श्रृंगार किए और वह शिव रूप जोगी की सेवा मे आई ! अपने हाथ में उसने भोजन का परोसा लिया और दोनो हाथों से उसे जोगी को दे दिया, ऐसे लगा कि वे हाथ सब कुछ कह देगें। भोजन देकर उसने दोनो हाथ जोड़कर विनती की। ऐसा करते समय उसके मन और नैन कुँअर की ओर ही लगे रहे। कुंअर ने अपना सिर ऊपर उठाकर भी नही देखा। और उसके दोनो ओर नेत्र कौलावती के चरणों की ओर ही लगे रहे। कौलावती ने सम्पूर्ण श्रृंगार (नख से सिख तक) किया था और वे श्रृंगार के आभूषण या उपादान उसके शरीर के अग-अग मे अगारे की भाति दहक रहे थे। जिसके लिए उसने श्रृंगार किया था, वह उसको देख ही नहीं रहा था, अतः वह श्रृंगार किस काम का। वह अपने हृदय को समझने लगी यदि वह देखता ही नही। तो पछताने से क्या लाभ ? मेरे मुख से सहस्रगुने उसके पांव सुन्दर है। जैसे दिन में दीपक प्रकाश नही देता उसी प्रकार कुंअर की तुलना में कौलावती की सुन्दरता वहुत कम है, यही कह कर वह पछताने लगी।

विशेष—इसमे साधक कुंअर की उस मानसिक दशा की ओर सकेत किया गया है जिसकी दृष्टि में केवल अपना लक्ष्ये (चित्रावली रूपी ईश्वर) है। इसी कारण वह कौलावती की ओर आंख उठाकर भी नही देखता।

(2) इसमे अनुप्रास, व्याजस्तुति एव प्रतीप अलकार है।

पुनि रानी छर एक आवा, भोजन भीतर हार चोरावा।
तेहि भोजन लो खप्पर भरा, लै सुजान के आगे धरा॥
औ पुनि ठाढ़ भई कर जोरी, सुनहु देव एक विनती मोरी।
बारी गयेंउ कालिह एक घरी, खेलत तहां काहु हों छरीं॥
तेहि घरी सेती अब ताईं, डोलै गात की नाईं।
औ जो चित काहु हुत हरा, अबहीं आइ फेरि घट परा॥
परसन होहु करौं नित पूजा, मोरे तुम विनु और न दूजा॥

देखु न हिये विचारि कै, तोर सबै यह भाव।
करु सुदिष्ट औ कृपा जेहि, जाइ मोर अरसाव ।।68।।

शब्दार्थ—छट=छल, चालबाजी। चोरावा=चोरी से। ठाड़=खड़ी। बारी=फुलवारी। छरी=छल लिया। सेती=से। पात=पत्ता। घट=शरीर। परसन=प्रसन्न। असराव=अरदास, प्रार्थना अभिलाषा।

व्याख्या—कुंअर रूपी जोगी को अपनी ओर आकर्षित करने में असफल होने के पश्चात् रानी ने एक छल किया कि भोजन के भीतर अपना हार चोरी से रख दिया। उस भोजन से उसने खप्पर भरा और ले जाकर सुजान के आगे रख दिया। और फिर वह हाथ जोड़कर उसके सामने खड़ी हो गई तथा कहने लगी—हे देव ! मेरी एक विनती सुनो। कल एक घड़ी के लिए फुलवारी गई थी वहां खेल ही खेल मुझे किसी ने छल लिया। उसी घड़ी से अब तक उसका शरीर पत्ते की भांति हिल रहा है उसका चित्त अब किसी प्रकार से अब हरा हुआ है अभी आकर पुनः वह उसके शरीर मे पड़ा है। यदि तुम प्रसन्न हो जाओ अर्थात् मुझे स्वीकार कर लो तो मैं नित्य ही तुम्हारी पूजा करूंगी। तुम्हारे अतिरिक्त मेरा और कोई नही है। मेरी ओर देखो। अपने हृदय मे विचार कर लो। तेरे लिए मैंने सब शृंगार धारण किया है। यदि तेरी सुदृष्टि मेरी ओर हो जाए तथा तेरी कृपा मुझ पर हो जाए तो मेरी अभिलाषा पूर्ण हो जाएगी।

सुनि के कुंअर हिये तब जाना, चलत पंथ झांखर अरुझाना।
जो बरि चलौं कहैं मति छोटी, अरझत होइ बात पुनि खोटी।
मोरे करत न एकौ होई, विधि करै होए पै सोई।।
यह गुनि ए.-पर झोली पाहा, उठि भा ठाढ़ कौल नहि चाहा।
गुरु के उठत उठे सब चेला, कौलहि भा जनु निसि सौं मेला।।
पंकज सौं कुमुदिनी हंसि बोली, आजु सोह घन बेलि की चोली।
बना अंग अंग सबै सिगारा, पै कस गींव न पहिरे हारा।।
सुनि कै देखेसि उरज कहं, कहेसि अबहि है टूटि।
इहंवहि काहू लीन्स है, और कहूं नहि छूटि ।।69।।

शब्दार्थ—झाखर=कटीली झाड़ी। अरुझाना=उलझना। बरि=

आजाद। मति=बुद्धि। खोटी=बुरी। पाहा=डाला। सोह=सौह शपथ। बेलि=बेल का फल जो शिव पर चढाया जाता है। चोली=चोला। उरज =उरोज।

व्याख्या—कुमुदिनी की सारी बात सुनकर कुंअर ने अपने हृदय में विचार किया तो उसे लगा कि वह रास्ते चलते कटीली झाड़ी से उलझ गया है। यदि वह स्वेच्छा से उठकर चल देता है तो उसकी बुद्धि के अनुसार छोटी बात है। और वह फिर उलझा लिया गया तो बात फिर बिगड़ जाएगी। तो उसने कहा—मेरे करने से कुछ नही होगा जो विधाता करेगा सोई होएगा। उसने उस गुणी (जिसमें हार छिपाया गया था) खप्पर को अपनी झोली मे डाल लिया। वह उठकर खड़ा हो गया क्योंकि उसने कौलावती को नही चाहा था। गुरु के उठते ही सब चेले (अन्य जोगी) उठ खड़े हुए। कौलावती को लगा मानों आज रात्रि में ही सब समाप्त हो जाएगा। उस कमल रूपी सुजान से कुमुदिनी हंसकर कहने लगी आज तुम्हे अपने जोगी के चेले की शपथ है उसे एक बार देख लो। उसने नख से शिख तक तुम्हारे लिए ही सब श्रृंगार किया है। पर जब कुंअर नही माना तो उसने शोर मचा दिया कि गले का हार जो पहनी थी वह कहा गया। यह सुनकर उसने स्तनो की ओर देखकर कहा कि वह अभी कही टूटकर गिर गया है यहीं किसी ने ले लिया होगा वह और कही नही छूटा है।

भा अंधोर सब काहुन जाना, कौलावति कर हार हेराना।
ढूंढहि सखी जहां तहं पूंछी, जोगी झारहि झोली छूछी॥
कौलै नेगिन्ह कहा हंकारी, साधु चोर कै लेहु बिचारी।
ठाढ़ होहु घेरि कै बारू, रोकहु घोंघी और सेवारू॥
एक-एक सब काढ़हु हेरी, सीप सीघरी केका बेरी।
कौतुक देखै सब ससारा, साधु चोर कर होइ बिचारा॥
आजु कसहु कंचन कै ताता, बहुं को पीत होइ को राता।
जोगी बोल सहज सो, मुंद्रा मुकुटा बार।
जाना एही पंथ अब, दै वै आपु बिचार॥70॥

शब्दार्थ—अंधोर=शोरगुल। हेराना=खोजना। छूछी=खाली। नेगिन्ह=संपत्ति का प्रबन्धक। बारू=द्वार। घोंघी=लबादे की तरह

ओढा कंबल, वोरा आदि। सेवारू=सेवड़ा, जैन साधुओं का एक भेद। हेरी=पुकार। सींधरी=एक मछली। केका=नील, कुमुदिनी। बैरी= कुई का फल। ताता=तप्त। मुद्रा=योगियों का कुन्डल।

व्याख्या—वहां पर शोरगुल सुनकर सबको पता चल गया और सब कौलावती के हार को खोजने लगे। उसकी सखियां जहां-तहां उस हार के बारे में पूछने लगी और जोगी अपनी-अपनी खाली झोली झाड़-झाड़कर दिखाने लगे। कौलावती के कहने पर संपत्ति के प्रबन्धक को बुलाया गया ताकि साधुओं में कौन चोर है इस पर विचार किया जा सके। सब राज कर्मचारी द्वार को घेरकर खड़े हो गये। उन्होंने लबादा पहनने वाले फकीरों तथा साधुओं को घेर लिया। उनसे एक-एक की तलाशी ली जाने लगी, तो उनकी झोली में से सीपी, मछली, नीली कुमुदिनी, कुंई का फल आदि सामग्री निकली। साधु और चोर में किस प्रकार विचार किया जा रहा है यह कौतुक सारा संसार देख रहा है। आज कंचन को तप्त करके कसा जा रहा है वह पीला गर्म होने पर लाल हो गया है। जोगी सहज से बोले कि मुद्रा और मुकुट को हम न्योछावर कर सकते हैं। अब अपने-अपने विचारों को छोड़कर हमें इसी पंथ पर आना है।

नेगी ठाढ़ भए तेहि बारा, एक-एक कर लेहि (क) बिचारा।
कंथा झारि ढूंढ़ि कै झोली, गहि भुज काढ़ि देहु भल बोली॥
चलत दिगंबर कोउ न पूछा, गहे न कोऊ देखि कै छूछा।
देखि दिगंबर सब पछिताने, जोगि पंथ तब भये अचानें॥
काहे लागि समेटी झोली, तापी कस न लाए कै होली।
काहें के हम कंथा सीया, काहे लागि हम धंधा कीआ॥
भा भरि जनम कांध कर भारा, आजु सो गींवें फेर फंसियारा।
भा गिव कंथा काल अब, औ जम झोला कांख।
मारन अहमा आइ के, अपने सीगन्ह झाख॥71॥

शब्दार्थ—नेगी=सपत्ति का प्रबन्धक। बारा=द्वार। कंथा=फकीरों की गुदड़ी। दिगम्बर=विना वस्त्र के। गहे=पकड़ा। अचानें=अचाहने, सहसा। तापी=तपस्वी। होली=जला दी। गीव=गर्दन। झाख=जंगली हिरन।

व्याख्या—राजकीय प्रबन्धक तब द्वार पर जाकर खड़ा हो गया और

एक-एक फकीर और साधू को भली-भांति देखने लगा। उनकी कंथा उतरवाकर झड़वाया गया तथा उनकी झोली के सामान की तलाशी ली गई और उनको भली बोली बोलकर उनकी बांह पकडकर वहा से निकाल दिया गया। दिगम्बर साधुओं को चलते हुए किसी ने नही पूछा, खाली देखकर किसी ने उन्हे नही पकडा। दिगम्बर साधुओ को देखकर सब पछताने लगे और जोगियो का पंथ सहसा अचाहने लायक हो गया। वे स्वय भी झोली के समान को समेटते हुए पछताने लगे और आपस मे कहने लगे कि हम कैसे तपस्वी है हमने क्यों न इसमें आग लगा दी। किस वास्ते हमने यह कंथा सीकर पहना है और किस लिए हमने तपस्वी बनने का धन्धा किया है। हमने जन्मभर कधे पर बोझ ढोया है। आज हमारी गर्दन भी फंस गई। अब यह कंथा हमारे गले का काल बन गया है और काख मे दबी झोली यमराज के तुल्य हो गई है। यह तो ऐसा ही हुआ जैसे जंगली हिरन अपने सीगों के कारण झाड़ में जाकर उलझ जाता है।

विशेष—इसमें अनुप्रास तथा दृष्टांत अलंकार हैं।

चित्रावली विरह खंड

छित्रावलि चित भएऊ उदासा, पिउ न गए वै अवधि की आसा।
विरह समुंद अति अगम अपारा, बाज अधार बूड़ मंझधारा॥
चहुं दिसि हेरहुं हितु कोउ नाहीं, बूड़त काह उंचावै बाही।
निसि दिन बरै अगिन की ज्वाला, दुरगा मंदिल भयो है बाला॥
बूझै न लूम सगर लहु बाढ़ा, पंथी गयो लाइ हिय डाढ़ा।
आंगी सुरति रहै चखु माहीं, ज्यों जल महं दीपक परछाहीं॥
झलमल जोति होइ उजियारा, पानी पौन बुझाव न पारा।
बिरह अगिन उर महं बरै, एहि तन जानै सोइ।
सुलगै काठ चिलूत ज्यों, धुंआ न परगट होइ॥72॥

शब्दार्थ—पिउ=प्रिय। अवधि=निश्चित समय। अगम=अगम्य। बाज=शिकारी चिड़िया। हेरहु=देखना। काह=क्यों। उंचावै=उठाना। लूम=पूंछ। डाढा=जलन। सुरति=सूरति।

व्याख्या—कवि चित्रावली के विरह का वर्णन करते हुए कहता है कि

चित्रावली अपने चित्त मे उदास हो गई क्योंकि प्रिय का एक निश्चित अवधि की आशा दिलाकर नही गये हैं। विरह रूपी समुद्र अति अगम्य और अपार है। उसमें डूबती बाज रूपी चित्रावली मंझधार मे अधार ढूंढती है। चारों ओर वह देखती है और उसका कोई भी प्रेमी या हित चाहने वाला नहीं है। उसमे डूबते उतरते वह अपनी बाह को ऊपर उचकाती है। वह बाला स्वय दुर्गा मदिर बन गई है जिसमे रात-दिन अग्नि की ज्वाला जलती रहती है, सागर उसमें चाहे जितना अपना लहू (पानी) बढ़ दे। फिर भी वह (विरह की पूंछ बुझती नही है। उस पंथ पर चलने वाला पंथी अपने हृदय मे जलन लेकर ही जाता है। जोगी की सूरत नेत्रों मे ऐसे ही बसी रहती है जैसे जल मे दीपक की परछाईं रहती है। उस दीपक का झलझलाता प्रकाश वहां उजाला फैलाता रहता है और पानी तथा हवा उसे बुझा नही पाते। विरह रूपी अग्नि हृदय में जल रही है (यह शरीर उसको पहचानता है ठीक ऐसे ही विलूत की लकड़ी में आग सुलगती रहती है पर उसमें से धुंआ नही उठता।

विशेष—इसमे अनुप्रास उपमा तथा दृष्टांत अलंकार है।

एक दिन कहसि कि ऐ रंगमाती, करिया भयो रूप रंगराती।
रूप रंग सब लैगा जोगी, लोग कुटुंब जानैं यह रोगी॥
जोगी गयो छाड़ि तजि माया, मोर कि धुईं भइ बस काया।
जोगी करत कहा दुहुं फेरी, आसन हरी छार की ढेरी॥
विरह पवन जो करैं झंकोरा, बिथुरे छार न कोऊ बटोरा।
जोबन गज अपसर मद कीन्हे, अब न रहै अंधियारी दीन्हे॥
निसि बासर तन कानन गाहा, जाकी साल हिये तेहि चाहा।
जोबन सखी मतंग गज, तौ लहुं लाग गोहार।
जौलहु अपसर होइ कै, सीस न डारेसि छार॥73॥

शब्दार्थ—रंगमाती=अदंत, वेदांत वाले। मस=मसि, स्याई। छार=क्षार, राख। बिथुरे=फैलना। प्रयसर=मृगछाला। अंधियारी=रास्ता मार्ग। मतग=मदमस्त। गोहार=पकड़ना। जो लहु=जब तक। अपसर =प्रस्थान।

व्याख्या—एक दिन कहा कि ऐ वेदांत वाले तुमने रूप रंग लेकर क्या कर लिया। यदि जोगी ही सब रूप रंग ले लेंगे तो कुटुम्ब या गृहस्थी के

लोग उन्हे रोगी मानेंगे (क्योंकि जोग में रूप रंग को नष्ट कर दिया जाता है।) सारी माया छोडकर ही जोगी बना जाता है। प्रातः को धूनी मे काया को जलाकर राख कर दिया। जोगी दोनों समय फेरी (समाधि लगाकर क्या करता था। (और एक दिन) उसके आसन पर राख की ढेरी पड़ी रह गई। उसकी जलती हुई विरहाग्नि में जब वायु का झोंका लगता है तो वह और तेजी से जल के राख हो जाता है। वियोगी की राख को कोई नहीं समेटता। यौवन रूपी हाथी पर मृगछाला का मद चढ गया हो अर्थात् युवावस्था मे ही वह जोगी बन गया है, क्योकि उसके लिए अब कोई और मार्ग नही बचा है। रात-दिन शरीर से वह जंगल में ही रहना चाहता है क्योकि यहा पर तो उसकी याद ही हृदय को सताती रहती है। मदमस्त हाथी ही यौवन की सखी के समान है और तब भी लोग उसे पकड़ना चाहते हैं। जब तक (यौवन) प्रस्थान नही कर जाता और लोग सिर पर राख नही डालने लगते तब तक लोगों की इच्छा मरती ही नही।

सुनि रंगमती कहा सुनु बारी, जोबन मैंगल मद दिन चारी।
अपसर होइ देइ नहि कोई, जौ तिय आपु महाउत होइ॥
अंकुस सकुच गहे कर नारी, दै आंखिन्ह घूंघट अंधियारी।
औ कुलकानि महादिढ़ अंदू, निसि दिन राखं मेलि के फंदू॥
जौ हठि कै अरि पाँव निकारा, हटक बुद्धि बरछा गढ़दारा॥
एह संसार रीति अस अहई, जो जेहि लाग दुःख जियसहई॥
जो तजि ठाउं सकै नहि जाई, आपुहि तहां मिलै सो आई।
आजु बदन तोर कौंलसम, ओरें रंग सुभाउ।
सब तन लागै मधुप पुनि, मकु कोउ चाह सुनाउ॥74॥

शब्दार्थ—रंगमती=वेदाती। बारी=किशोरी बाला। मैंगल=मस्त। अपसर=पलायन। महाउत=महावत। कुलकानि=कुल की रीति। महादिढ=महादृढ। अंदू=हाथी के पैर में बांधने का एक मंत्र। गड़दारा =मतवाले हाथी के साथ भाला लेकर चलने वाला महावत। सहई= सहन करना। मकु=चाहे।

व्याख्या—किशोरी बाला ने कहा हे वेदाती सुन यौवन (हाथी) की मद-मस्ती के दिन चार दिन के होते हैं। इनको कोई नही चाहता कि ये (दिन) पलायन करें। इस मदमस्त हाथी को काबू मे रखने के लिए स्त्री को स्वयं

ही महावत बनना पड़ता है। कोई भी स्त्री अंकुश को अपने हाथ मे सकुचा कर ही लेती है, क्योंकि आखों पर घूंघट डालते ही उसके सामने अंधकार छा जाता है। जो अपनी कुल रीतियों पर बड़ी दृढ़ होकर अंदू को बांध देती है और रात दिन उस फंदे को कसे रखती है वही सफल होती है। जो वह शत्रु (हाथी) अपना पाव निकालना चाहे तो गढ़वार की भांति तत्काल ही अपनी समझ के अनुसार हटक देती है। इस संसार की ऐसी ही रीति चली आई है। जिसको जैसा दुख लग जाये उसको वैसा ही दुख सहन करना पड़ता है। यदि कोई स्थान परिवर्तन कर ले, तब भी वह उस दुख से बच नही सकता है, क्योंकि जिसे जो मिलना है वह अपने आप ही उसे उसी स्थान पर जाकर मिल लेता है। आज तेरा मुखड़ा, रंग और स्वभाव कौंलावती के समान लग रहा है। इस पर चित्रावली ने कहा आज मेरे शरीर में भौंरों का गुंजार गूंज रहा है, शायद कोई मेरी इच्छानुसार समाचार सुनाए।

विशेष—(1) यहां पर यौवन रूपी हाथी की मद-मस्ती तथा उसे काबू में रखने के तरीकों पर प्रकाश डाला गया है।

(2) इसमें अनुप्रास, सांगरूपक तथा उपमा अलंकार है।

एहि महं सखी एक हितकारी, आई हंसति भई रतनारी।
कहिसि कुंअरि सुनु बचन सुहाए, गए बिदेस नपुंसक आए।
बबन अउन हिय हुलसत्त अहहीं, जानहु बचन कछुक सुभ करहीं।
सुनतहि चली धाई बरनारी, गिरी रही पै सखिन्ह संवारी।।
जोगी आइ मनावत माथा, बरस पाइ भुइ लायेउ माथा।
कहिन कि हम पुहुमी सब धाए, चित्र सरूप चीन्ह अब आए।।
सुनि रहसी चियावलि हीया, चित्तहि जानु फेरि रंग दीया।
हिय हुलास बिहंसि अधर, औ कपोल रंग होइ।
पुनि उपजै उर धकधकी, होइ न औरं कोइ।।75।।

शब्दार्थ—रतनारी=लाल। नपुसक=भृत्य, हरकारे। धाई=तेजी से चली। भुइ=भूमि। पुहमी=भूमि। चीन्हि=पहचान।

व्याख्या—कवि कहता है कि तभी वहां पर एक कल्याण चाहने वाली सखी आई और वह (चित्रावली की ओर देखकर) हसते-हंसते लाल हो गई। उसने जो समाचार सुनाया उससे चित्रावली बड़ी प्रसन्न हुई। उसने कहा

विदेश से सभी भृत्य लौट आये हैं। यह सुनकर चित्रावली का हृदय प्रसन्न हो गया तथा मुख पर लालिमा छा गई, तब उसकी सखी ने जो कुछ भी उसे मालूम हुआ वह सब शुभ समाचार चित्रावली को दिए। यह सुनते ही वह श्रेष्ठ नारी तेजी से चली। वह उत्तेजना और कमजोरी के कारण गिरने लगी तो उसे सखियों ने सभाल लिया। जोगी (चित्रावली) के आने पर सबने शीश झुकाकर उसका अभिवादन किया। उसके दर्शन करके भृत्यों ने अपना शीश भूमि की ओर झुका लिया। वह कहने लगे कि हम पृथ्वी पर सभी ओर गये। चित्र मे अंकित स्वरूप को हम लोग अच्छी तरह पहचान आए है। इस रहस्यपूर्ण बात को सुनकर चित्रावली का हृदय हुल्लसित हो उठा और वह प्रसन्नता उसके शरीर के अगों से प्रकट होने लगी। उस समय ऐसा लगा मानो किसी ने चित्र पर दुबारा रग फेर दिया हो। उसका हृदय प्रसन्न हो गया। अधरों पर मुस्कराहट फैल गई और गालो पर लालिमा फैल गई। दूसरे ही क्षण उसके हृदय की धड़कन बढ़ गई कि कही यह और कोई न हो।

विशेष – (1) इसमे सचारी भाव तथा अनुभावों का वर्णन हुआ है।

(2) इसमे अनुप्रास तथा उत्प्रेक्षा अलकार है।

पूछिसि कौन रूप सो देखा, केहि दिन कौन भाँति केहि लेखा।
जोगिनि रहसि रहसि जस जानी, आदि अंत सहु कथा बखानी॥
सुनि चित्रावलि हिय संतोखा, निहचै जानि गयो जिय धोखा।
कहिसि कि हौं तुम्ह ऊपर वारी, मोरे दुख बहु भए दुखारी॥
अब सुख करहु बैठि यहि ठाईं, करिहौं सेव जगत जब ताईं।
मैं सब इच्छ तुम्हारे पुराई, तुम जग इच्छा पुरवहु जाई।
सेयक सेव तजौ जनि कोई, सेवा ठाकुर आपन होई॥
मान सेव सोइ कीजिए, जासो पति पहिचानु।
ठाकुर आपन जो भयो, सब जग आपन जानु॥76॥

शब्दार्थ—रहसि=रहस्य। संतोखा=सतोष। निहचै=निश्चय ही। ठाईं=स्थान। ताईं=तक। पुराई=पूरी करूंगी।

व्याख्या—चित्रावली ने अपने भृत्यों से पूछा कि उन्होने कौन-से रूप को देखा है किस दिन, किस प्रकार किसे देखा अर्थात् विस्तार मे समाचार की सच्चाई जानने के लिए बात पूछने लगी। जोगी (चित्रावली) ने बातों ही

बातों में सारे रहस्य को आरम्भ से अंत तक की कथा सुनने के बाद जान लिया। यह बात सुनकर चित्रावली के हृदय को संतोष हुआ कि निश्चय ही हृदय ने धोखा नहीं खाया है। वह कहने लगी कि मैं तुम पर स्वयं को न्यौछावर करती हूं। मेरे दुख के कारण तुम सभी दुखी हुए। अब तुम इसी स्थान पर बैठकर सब सुख उठाओ और जब तक (जीवित रहो) संसार की सेवा करो। मैं तुम्हारी सारी इच्छा पूरी करूंगी। सेवक और सेव्य (स्वामी) का भाव छोड़ दो तो स्वामी की सेवा अपने आप हो जाएगी। वही सेवा मानकर करनी चाहिए जिससे कि स्वामी की पहचान हो सके और जब स्वामी (ठाकुर) अपने हो जाते हैं, तब सारा संसार ही अपना समझो।

विशेष—(1) सूफ़ियों के अनुसार मानव की पूर्णता जीवन का परम लक्ष्य है। प्रसिद्ध सूफ़ी इब्न अरबी के अनुसार पूर्ण मानव ही ईश्वर की एक-मात्र पूर्ण अभिव्यक्ति है और जगत की अन्य वस्तुएं केवल उसके गुणों को ही व्यक्त करती हैं, सृष्टि का चरमोत्कर्ष जिस प्रकार मानव कहा जाता है उसी प्रकार पूर्ण मानव उसका भी चरमोत्कर्ष कहा जा सकता है। प्रत्येक मानव में परिपूर्णता बीज रूप स्वभावता निहित रहती है। इसी कारण उसमें परमेश्वर के मध्य कोई सेवक-सेव्य संबंध नहीं है और न कोई उपा-सक एवं उपास्य का ही भाव काम करता है। पूर्ण मानवत्व की उपलब्धि प्रेम मूलक है।

(2) इसमें अनुप्रास, पुनरुक्ति, यमक अलंकार है।

अभिषेक खंड

चलवहिं चलत देस नियराया, वन बीहर सब लाग सुहाया।
देसी धाइ कहिसि बुलाई, आवे राय जनावहु जाई॥
आज्ञा पाइ उठाइसि धाऊ, आयो जहं धरनीधर राऊ॥
कहिसि राऊ गढ करहु बधावा, कुंवर सुजान कुसल सों आवा।
सुनतहि नाउं राउ रहसाना, जनहुं मृतक तन प्रान समाना॥
रानी सैन बोलि सुनि पाई, घर घर बाजै लागु बधाई।
फिरि-फिरि पूछै कुसल कुसाता, कैसी कहा जहाँ लगु जाता।

राजा संग आगे चले, राउत राना झारि।
उठे धाइ सब नाउ सुनि, बामन बनियां बारि ॥77॥

शब्दार्थ—निमरावा=पाम आना। वीहर=वीहड़। राम=राजा। रहसाना=रहसना, प्रसन्न होना। झारि=समूह।

व्याख्या—राजकुमार सुजान चित्रावली से विवाह करने के उपारान्त सागर गढ़ आया और वहा से कौलावर्ती को विदा करवाकर अपने राज्य के लिए रवाना हुआ। रास्ते की अनेक विघ्न-बाधाओ को पार कर वह जगन्नाथपुरी पहुँचा। वहां से चलते-चलते अपने राज्य के निकट पहुंचा। उसे रास्ते के सभी बन और वीहड़ अच्छे लग रहे थे। उसने पुरोहित केशी पांडे को बुलाया और उससे कहा कि तुम आगे जाकर सारा समाचार राजा को दो। आज्ञा पाकर वह शीघ्र ही चला और राजा धरनीधर के पास आ पहुँचा उसने राजा से आकर कहा अब आप बधाई स्वीकार करें, क्योंकि राजकुंअर कुशलता-पूर्वक वापस लौट कर आ रहा है। कुंअर नाम सुनते ही राजा बहुत प्रसन्न हुए। उन्हे ऐसा प्रतीत हुआ मानो मृतक में पुनः प्राण डाल दिये गए हों। उनकी रानी कुंअर के वियोग मे रोती-रोती अंधी हो गई थी। कुंअर के लौटने का समाचार पाकर उसके नेत्रों की ज्योति पुनः लौट आई। सारे नगर के घर-घर में आनन्द के कारण बाजे बजने लगे और लोग परस्पर बधाई देने लगे। राजा बार-बार केशी पाण्डेय से सुजान की कुशलता का समाचार पूछने लगे और केशी को जहां तक पता था वह उन्हें बताता रहा। राजा के चलने पर सब राव और राजाओं के झुंड-के-झुंड आगे-आगे चलने लगे। ब्राह्मण, बनिया, स्त्रियों, जिसने भी सुजान के आने का समाचार सुना वह भी उसकी आगवानी के लिए उठ-उठकर तेजी से चलने लगीं।

विशेष—(1) राजा के वापस लौटने पर राजधानी में जो उसका स्वागत किया जाता है उसकी ओर ही कवि ने यहां पर सकेत किया है।

(2) इसमें अनुप्रास का नाद-सौदर्य है।

देखि सुजान पिता असवारा, उतरि पियादे होइ पगु धारा॥
धरनीधर पुनि उतरि के भेंटा, बिछुरन दु.ख सबै धरि मेंटा॥
सुत कर बदन हेरि भा छोहा, घरी घरी हिय उठै मरोहा।
हिय गहबरि मुख बात न आऊ, फिरि फिरि गहै पिता कर पाऊ॥

फिरि फिरि राउ गज अंकवारी, लोग कुटुंब नेउछावरि सारी।
पुनि दोऊ जना भए असवांरा, पूंछत चले कुसल बेवहारा ।।
जौ लहुं कुंअर मंदिल नहिं आवा, हाथ-हाथ सों छूट न पावा ।।
कुंअर परे लइ मातु पगु, भरि लोचन दोउ नीर।
मातु भया चरांइ पुनि, उतरा अस्तन छीर ।।78।।

शब्दार्थ—असवारा=घोड़े पर सवार। पियादे=प्यादे, पैदल सिपाही। हेरि=देखकर। छोहा=प्रेम। गहवरि=भर आया। अंकवारी=आलिगन। नेउछावरि=न्यौछावर। जना=लोग। वेवहार=व्यवहार। मंदिल =मंदिर। चरांइ=चर्राना। छीर=क्षीर।

व्याख्या—सुजान ने पिता को घोड़े पर सवार देखा। राजकुंअर को देखते है घुड़सवार सिपाही उतरकर पैदल-ही-पैदल पंक्तिवद्ध होकर चलने लगे। राजा धरनीधर ने भी घोड़े से उतर कर उससे भेंट की। आपस में मिलने पर बिछड़ने का दुःख सबका मिट गया। बेटे का मुख देखकर सब का प्रेम उमड आया। घड़ी-घड़ी उनके हृदय में उद्गार उठने लगे। राजा ने उसे वार-वार आलिगनवद्ध किया। परिजनों तथा कुटुम्बियों ने अपने आपको उस पर न्यौछावर कर दिया। फिर दोनों जने राजा और कुंअर घोड़े पर सवार हुए और वे सभी लोगों की कुशलता पूछते हुए चलने लगे। जब कुंअर लौटकर पुनः घर नही आ गया तब तक उनके हाथ से हाथ नहीं छूटे। घर पर आकर कुंअर ने माता के चरणों का स्पर्श किया और उसके नेत्रों मे पानी भर आया। माता का प्रेम पुनः चर्राया तो उसके स्तनों में दूध उतर आया।

विशेष—इसमें अनुप्रास और पुनरुक्ति अलंकार है।

माता लै सुत कंठ लगावा, चूमि बदन कर आंखिन लावा।
कहिसि कि धनि दिन धनी यह घरी, पूतहिं भेटिउ अंक में भरी ।।
मानिक मोती भरि भरि थारा, नेवछावरि साजै परिवारा।
चित्रावलि लै मंदिल उतारी, औ पुनि संग कौलावति बारी ।।
सासु चरन लागीं दोउ आई, रानी गहि दुहुं अंक में लाई।
फिरि फिर आंचर डारै रानी, चंद सूर अपने घर जानी ।।
लोग कुटुंब परिवार सवाई, लै लै आए राज बधाई।

राजै छत्र उतारि कै, धरा कुंअर के सीस।
टीका काढ़ेउ राजकर, औ पुनि दीन्ह असीस ॥79॥

शब्दार्थ—कर अरविन लावा=हाथों को सिर के ऊपर फेरकर आंखों से लगाना। धनि=धन्य। घरी=घड़ी। मानिक=माणक। मदिल=मंदिर। आचर डारे=आचल डालना, प्रेम दर्शाना। सवाई=सवाया, बढ़ चढ़कर।

व्याख्या—माता ने अपने पुत्र को चरणों से उठाकर अपने गले लगाया। उसके मुख को चूमकर हाथों से वलइयां लेकर उन्हे अपनी आखो पर लगाया। वह कहने लगी कि यह दिन भी धन्य है और यह घड़ी भी धन्य है, जो पुत्र को गोद में लेकर उससे भेंट कर सकी हूं। सारे परिवार ने माणिक मोती आदि थाल भर-भर कर ले लिए और उस पर न्योछावर कर दिए। चित्रावली मंदिर (घर) पर ही (डोली से) उतारा गया और फिर कौलावती को भी। दोनो ने आकर अपनी सास के चरण स्पर्श किये। रानी ने दोनों को उठाकर अपने अंक से लगा लिया। बार-बार रानी उसके ऊपर अपना आंचल डालकर अपना स्नेह प्रदर्शित करने लगी। चंद (कौलावती) सूर्य (चित्रावली) दोनों लगा कि वे अपने घर आ गई। परिजन, कुटुम्बीजन तथा परिवार के लोग सवाया (बढ़-चढ़कर) भेंट लेकर राजा को बधाई देने पहुंचे। तब राजा ने अपने सिर से मुकुट उतार कर राजकुंअर के सिर पर रख दिया। राजा ने अपने हाथ से उसे टीका किया और फ़िर उसे आशीर्वाद दिया।

विशेष—इसमें अनुप्रास तथा पुनरुक्ति अलंकार है।

कुंअरहि राज पाट बैसाई, बैसे नृप बिधना लौ लाई॥
राउत राना आइ जोहारे, दे पहिरावरि सब प्रतिपारे।
मंदिर मंदिर बजेउ बधावा, घर आंगन सब भयउ सुहावा।
चित्रावलि कौलावति बारी, बिलसहि आपहि आपनि पारी।
निसि बासर आनंद सुख होई करका करै न कोई॥
देख तिया सब अचक रहाई, जनहुं हुओ एक जननि की जाई।
धन माता धन पिता सबाई, मानुख कोखि अपछरा आई॥
पान फूल सुख भोग लै, चंदन बास बसाहि।
सुख सर कुरलहि हंस ज्यों, निसि दिन केलि कराहि ॥80॥

शब्दार्थ—वैसाई=बैठता, लौ ध्यान। जोहारे=अभिवादन करना। प्रतिपारे=प्रतिपाल। सुहावा=सुहाने लगा। विलसाहे=आनन्द करना। पारी=वारी से। तिया=स्त्री। मानुख=मनुष्य। कुरलहिं=कलखकरना।

व्याख्या—कवि कहता है कि जब कुंअर ने राज-पाट संभाल लिया तो राजा धरनीधर ने परमात्मा में अपना ध्यान लगाया। राव और राणा आ-आकर उसका अभिवादन करने लगे और सब प्रतिपाल वारी-वारी से पहरा देने लगे। घर-घर मे आनन्द के वाजे वजने लगे तथा घर और आंगन सभी सुख से सुशोभित हो गए। चित्रावली और कौलावती अपनी-अपनी वारी पर आनंदित होने लगी। वे दिन-रात सुख और आनन्द उठाने लगी और दुःख की कोई भी चर्चा नहीं करती थी। उन स्त्रियों को देखकर सब अचकचा गये। ऐसा प्रतीत होता मानो एक जननी ने ही उन्हें जन्म दिया हो। उनकी माता धन्य है और उनसे भी वढ़कर उनके पिता धन्य हे। उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानो मनुष्य की कोख से अप्सरा ने जन्म लिया हो। वे लोग पान फूल का सेवन करती हुई आनन्द से सुख का योग करती थी। वे चंदन आदि सुगंधित पदार्थ मे लिप्त रहती थी जिस प्रकार हंस तालाव में सुख से कलरव करता हुआ केलि करता है उसी प्रकार वे भी रात-दिन सुखपूर्वक केलि करती हुई अपना जीवन व्यतीत करने लगी।

विशेष—इसमें अनुप्रास, उत्प्रेक्षा तथा उपमा अलकार है।

कथा मान कवि गायेउ नई, गुरु परसाद समापत भई।
जे रे सुना ते हिरदै राखी, औ अति चाउ आन सो भाखी॥
जो जेहि पंथ दुःख जिअ सहई, सो पुनि अंत सुक्ख निधिलइई।
मनहिं कहेउ ते अति दुख देखा, अब जिउ मानहिं सुख कर लेखा॥
कवितन्ह मरन कथा क गाई, मोहि मरत हिय लागु छोहाई।
औ जे प्रेम अमी रस पीया, मरै न मारे जुग-जुग जीया॥
एक जियन एक मरन संसारा, मरि-मरि जियइं ताहि को मारा
ज्ञान ध्यान मद्धिम सबै, जप तप संजम नेम।
मान सो उत्तम जगत जन, जो प्रतिपारै प्रेम॥8॥

शब्दार्थ—परसाद=प्रसाद। समापत=समाप्त। सहई=सहन करना। छोहाई=कृपा करना। अभी=अमृत। मद्धिम=बीच का। संजम=संयम, यम। नेम=नियम। प्रतिपारै=निबहे।

व्याख्या—कवि उसमान का कहना है उसने इसे (चित्रावली सुजान की कथा) नई कथा मानकर ही गाया है। यह कथा गुरु की कृपा से समाप्त हुई है। इस कथा को जिसने भी सुना उसने अपने हृदय में ही रखा है। और जिसे कथा कहने का चाव है उसने दूसरों को सुनाया है। ईश्वर तक पहुँचने के जो जिस पथ पर चलता है उसे बहुत से कष्ट सहन करने पड़ते हैं किन्तु अन्त में उसे सुख का सागर मिल जाता है। प्रत्येक (मन) कहता कि उसने (संसार में रहकर) बहुत दुःख देखा है किन्तु (ईश्वर आराधना के मार्ग पर चलने के बाद) वह कहता है कि उसने बहुत सुख देखा है। यह बात अपने आपसे स्वीकार करता है। कवि गणों ने प्रायः मरे हुए (ऐतिहासिक पुरुषों) की कथा गाई है। इस कथा ने मेरे मरते हुए हृदय कृपा की है अर्थात् उसे जीवित किया है। मैंने उस प्रेम (भक्ति) के अमृत रस का पान किया है जिसे पान करने के बाद न कोई किसी के मारे मरता है और न स्वयं मरता है। वह तो युग-युग तक जीवित रहता है। इस संसार में जन्म और मृत्यु अनिवार्य है। मर-मरकर जो जन्म लेने का कारण है इस कथा के माध्यम से उसी कारण को नष्ट किया गया है। इस कथा में ज्ञान, ध्यान, जप, तप, संयम, नियम आदि सभी तत्वों का समावेश हो गया है, (या सभी तत्व मिलेंगे) इस संसार में उसी को उत्तम व्यक्ति मानना चाहिए जो प्रेम पंथ (सूफी मार्ग) का निर्वाह करता है।

विशेष—(1) सभी सूफी काव्यों के रचयिताओं ने इस ओर यदा-कदा संकेत किया है कि उन्होंने एक सुन्दर आध्यात्मिक जीवन तथा उसके नैतिक स्तर पर लक्षित होने वाली कतिपय बातों की झांकी किसी न किसी रूप में प्रस्तुत की है। चित्रावली के कवि उसमान ने भी इस काव्य के अन्त में ऐसा ही भाव प्रस्तुत किया है।

(2) इसमें अनुप्रास, पुनरुक्ति अलंकार है।

चित्र दर्शन खंड

वे भूले तेहि कौतुक जाई, इहां कुंअर जागा अंगिराई।
नैन उघारि देखि चितसारी, रहा अचक उठि बैठ संभारी॥
देखा मंदिर एक बहुभांती, चित्र संवारे पांतिन्ह पांती।
कनक खंभ औ कनक केवारा, लागे रतन करहिं उंजियारा॥
ऊपर छात अनुप संवारे, करि कटाव सब कंचन ढारे।
कीन्ह उरेह सूर ससि जोती, और नखत सब मानिक मोती॥
हेठ अपूरब डासन डासा, जहं-तहं आउ सुगंध की वासा॥
भयो कुंअर चित अचक एक, मनहीं मांहि गुनाउ।
काकर लोन मंदिर यह, ओ मोहि को लै आउ॥1॥

शब्दार्थ—अंगिराई=अंगडाई। उघारि=खोलकर। चितसारी=चित्रसारी। अचक=आश्चर्यचकित। संवारे=बने हुए हैं या चित्रित हैं। पांतिन्ह=पंक्तिबद्ध। कनक=सोना। छात=छत। अनूप=अनोखी। उरेह=निर्माण। अचक=अचंभा। गुनाउ=शोच। काकर किसका।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश 'उसमान कृत चित्रावली' के 'चित्र दर्शन खण्ड' से उद्धृत किया गया है। राजकुमार 'सुजान' जब देवगढ़ी पर निश्चित सो गया, तब देव ने उसे देखकर उसकी सुरक्षा करने का निश्चय कर लिया। लेकिन इसी समय देव का एक मित्र आकर उससे 'रूपनगर' चलकर 'चित्रसेन' की दुहिता 'चित्रावली' की वर्षगांठ का उत्सव देखने के लिए चलने का आग्रह करने लगा। अन्त मे दोनों मित्रों ने यह परामर्श किया कि इस राजकुमार को प्रसुप्तावस्था में ही अपने साथ लिये चलते हैं और प्रातःकाल होने के पूर्व इसे इसी प्रकार प्रसुप्तावस्था में लेकर यहां लौट आयेंगे। इसी योजना के अनुसार देव एवं उसका मित्र राजकुमार 'सुजान' को प्रसुप्तावस्था में अपने साथ लेकर 'रूपनगर' पहुच गये। वहां राजकुमार को 'चित्रावली' की चित्रसारी में सुलाकर दोनो मित्र 'चित्रावली' की वर्षगांठ का उत्सव देखने चले गये।

व्याख्या—वे अर्थात् देव और उसका मित्र उत्सव के कौतिक देखने में मदमस्त हो गये तथा इधर राजकुमार अगड़ाई लेकर जाग उठा। उसने आंखें खोलकर चित्रसारी को देखा और सभलकर उठ बैठा और आश्चर्यचकित हो गया। उसने एक मन्दिर देखा जहां अनेक पक्तियों में चित्रों की रचना की गई थी। वहा सोने के खम्भ और सोने के ही किवाड थे तथा उनमे लगे रत्न प्रकाश फैला रहे थे। ऊपर एक अनोखी छत बनाई गई थी, जिसमे कटाव कर सोना ढाला गया था। वहां सूर्य एवं चन्द्र की ज्योति को चित्रित किया गया था तथा सभी नक्षत्रों को माणिक्य और मोतियो से दर्शाया गया था। यहा जहां-तहां से सुगन्धि आ रही थी। इस अपूर्व स्थान को देखकर कुंअर का चित अवाक् हो गया तथा वह मन ही मन सोचने लगा कि यह लावण्यमयी स्थान किसका है तथा मुझे यहा कौन लेकर आया है।

विशेष—उत्तर भारत के सूफी प्रेमाख्यानों में चित्र दर्शन के माध्यम से प्रेमोद्भव केवल 'चित्रावली' मे ही चित्रित किया गया है।

बहुरि कुंअर जो पाछे देखा, अपुरब रूप चित्र एक पेखा।
कानि सजीउ जीउ भरमाना, भयो ठाढ़ उठि कुंअर सुजाना॥
देखि रूप मुख परचै खरा, बिधि एक चुरइल कै अपछरा।
किए सिंगार संग नहि कोई, घरें भेष भावन है सोई॥
जग न होई मानुष अस रूपा, को पावै अस रूप सरूपा।
निहचै अहौं सरग पर आवा, सुरकन्या भौ दिष्टि मेरावा॥
निहचै एक सुरपति अपछरा, देखत मोर चित्त जिन हरा।

हौं तो मंडप देव के, सोवत अहा सुभाउं।
होइ परसन कोउ देवता, लै आवा एहि ठाउं॥2॥

शब्दार्थ—अपुरब=अपूर्व। पेखा=देखा। सजीउ=सजीव। भरमान=भ्रमित। परचै=परिचय। विधि=विधाता। अपछरा=अप्सरा। भावन=लुभावना। सरग=स्वर्ग।

व्याख्या—तत्पश्चात् कुअर ने जैसे ही पीछे की ओर देखा, उसे एक, अपूर्व रूप का चित्र दिखाई पड़ा। चित्र को सजीव समझकर राजकुअर सुजान का जीव भ्रमित हो गया तथा वह उठकर खड़ा हो गया। उसके मुख के

सौन्दर्य को देखकर राजकुमार का उससे परिचय हुआ। वह सोचने लगा कि हे विधाता यह कोई अप्सरा है या कोई चुड़ैल ! इसने शृंगार किया हुआ है तथा इसके साथ कोई नहीं है। इसने जो वेष धारण कर रखा है, वह अत्यधिक लुभावना है। इस रूप-स्वरूप को कौन प्राप्त करेगा ? मैं निश्चित ही स्वर्ग में आ गया हूं तथा मुझे सुरकन्या का दर्शन हुआ है। निश्चित ही यह देवलोक की कोई अप्सरा है, क्योंकि इसको देखने से ही इसने मेरे चित्त को हर लिया है। मैं तो देव के मंडप में सोया हुआ था। कोई देवता मुझसे प्रसन्न होकर यहां ले आया है।

विशेष—चित्र में खण्ड सौन्दर्य को देखकर साधक के हृदय में पूर्ण सौंदर्य की सत्ता का ज्ञान होता है और वह खण्ड सौन्दर्य को ही सत्य समझकर उसे आत्मसात् करने का प्रयास करता है।

भयो भाग्य मम दाहिन आजू, जेहि विधि दीन्ह आनि यह साजू।
कै वहि जन्म पुन्य कछु कीन्हा, तेहि परसाद दरस इन्ह दीन्हा॥
कै बेनी सिर करवट सारा, कै कासी तन तप महं जारा।
कै मथुरा बसि हरि जस गावा, ताहि पुन्य यह दरसन पावा॥
कै काहू की इंछा पूरी, बल बौसाउ कीन्ह दुख दूरी।
कै सुदिष्ट अपने बिधि देखा, आनि देख वह रूप सुरेखा॥
सुनत अहा कविलास सोहावा, (क) सो विधि मोहि आन देखरावा।
मन रहसहि चितो चितहि, रहा मौन होइ भूप।
रसना भरम न बोलई, लोयन भूले रूप॥3॥

शब्दार्थ—दरस=दर्शन। इंछा पूरी=इच्छा पूर्ण है। कविलास=कैलाश। बौसाउ=व्यवसाय। रसना=जिह्वा। लोयन=नेत्र।

व्याख्या—राजकुंअर कहने लगा कि आज मेरा भाग्य दाहिने आया है। जिससे कि विधाता ने आज मुझे यह सौभाग्य प्रदान किया है। अथवा पूर्व जन्म में मैंने कोई पुण्य किया है कि जिसके प्रसाद स्वरूप मुझे आज यह दर्शन प्राप्त हुआ है। अथवा मैंने काशी मे करवट ली है या मैंने काशी मे तप कर शरीर को तप में जला दिया है। अथवा मैंने मथुरा मे रहकर हरियश का गुणगान किया है। उसी पुण्य के फलस्वरूप मुझे आज यह दर्शन प्राप्त हुआ है। अथवा मैंने किसी की इच्छा को पूर्ण किया है, उसने अपने बल और

व्यवसाय से मेरे दु:खों का हरण किया है। अथवा मैंने अपनी सुदृष्टि से साक्षात् ही विधाता को देखा है, जिससे कि मैंने इस स्वरूप की रेखाओं का दिग्दर्शन किया है। मैंने सुना था कि कैलाश अत्यन्त सुहावना है। आज विधाता ने मुझे उसे यहां लाकर प्रत्यक्ष ही दिखा दिया। राजकुंअर मन ही मन प्रसन्न होने लगा, लेकिन उसका मन चिन्ता ग्रस्त है। वह मौन है तथा उसकी जिह्वा भ्रम के कारण बोल नही पाती तथा उसकी आंखें उस रूप सौन्दर्य मे भ्रमित हो गई है।

छिन एक गुनि मन महं बहु भावा, पुनि ढांढस कै आगें आवा।
नियरे होई जो बदन निहारा, रहे निहारि मीन जिमि तारा॥
तव जानेसि यह चित्र अनूपा, हरयो चित्र लखि बदन सरूपा।
नैन लगाय रहेउ मुख बोरा, चित्र चांद मा कुंअर चकोरा॥
सुधि बिसरी बुधि रही न होये, गा बौराइ प्रेम मद पीये।
कबहूं सीस पाइ तर धरही, कबहुं ठाढ़ होई बिनती करई॥
कबहूं चाहैं अचल गहा, हाथ न आव अचक मन रहा।
कबहूं परै अचेत भुइं, कबहूं होय सचेत।
रूप अपार हिएं समुझि, मुख जोवै करि हेय॥4॥

शब्दार्थ—छिन=छण। ढांढस=साहस। बौराइ=मदमस्त होना। पगला जाना। भुइं=पृथ्वी। अपार=असीम। अद्वितीय।

व्याख्या—एक ही क्षण के अन्तर्गत चित्र के गुण राजकुंवर के मन में भाव बनकर प्रकट होने लगे। वह पुन: साहस कर आगे बढ़ा। उसने नजदीक जाकर उस चित्र के मुख को देखा। वह उसे उसी प्रकार देख रहा था, जैसे कि मछली तालाब को देखती है। जैसे ही उसे अनूप चित्र की जानकारी हुई, राजकुमार चित्रसौंदर्य को देखकर वेसुध हो गया। राजकुमार के नेत्र चित्र सौंदर्य मे समाविष्ट हो गये। उस चित्र रूपी चन्द्रमा को देखकर कुंअर के नेत्र चकोर के समान एकनिष्ठ हो गये। वह वेसुध हो गया और उसका हृदय एवं बुद्धि विनिष्ट हो गये। वह प्रेममद पीकर मदमस्त हो गया। वह कभी उसके पैरो में अपना सिर रखता था तथा कभी खड़े होकर उसकी विनती करता था वह कभी उसका आंचल पकड़ना चाहता था, लेकिन उसके

हाथ में कुछ नहीं आता था। वह मन ही मन आश्चर्यचकित हो रहा था। वह पृथ्वी पर कभी अचेत होकर गिर पड़ता था तथा उसे कभी चेत आ जाता था। उस रूप को हृदय में अद्वितीय एवं असीम समझकर वह उसके प्रेम के निमित्त उसके मुख की ओर देख रहा था।

विशेष—1. सूफी प्रेमाख्यानों के साधक जब प्रथम बार सौन्दर्य का दर्शन करते हैं तब वे बेसुध होते दिखाये गये हैं। इसका एकमात्र कारण यह है कि वे अपरिपक्व होने के कारण उस सौन्दर्य को आत्मसात् कर लेने के लिये अभी सक्षम नहीं बने हैं।

निरषत जोति नैन जो पाई, परी डीठ आला पर जाई।
देखा आहि लिखै कर साजू, जाते होइ चित्र कर काजू॥
सांवर असन पीन औ हरा, जो रंग चाहिय सो सब धरा।
कहेसि विचारि बूझि मन मानीं, कालिह आजु अस होइ कि नाहीं॥
आपन चित्र लिखौं ऐहि ठाऊ, मुकुरहि जोति-जोति कछु पाऊं।
आनपनि जोति सूर उजियारा, सूर कि जोति चन्द मनियारा॥
हिएं विचारि चित्र तब लिखा, वहिक चरन तर आपन सिखा।
साजि सो मूरति अपनी, ले सब रंग वहिकेर!
कै सुजान सो जानई, कै सुजान यह फेर॥5॥

शब्दार्थ—निरषत=निरीक्षण। साजू=समान। मूरति=मूर्ति।

व्याख्या—उस ज्योति का निरीक्षण करते-करते राजकुंअर की दृष्टि एक आले पर चली गई। वहां उसे चित्र बनाने के निमित्त रखी गई सम्पूर्ण सामग्री दिखाई दी। वहां इच्छानुरूप काला, लाल, पीला और हरा रंग रखा हुआ था। वह मन में विचार कर कहने लगा कि कल आज जैसा सुहावना हो या नहीं, कौन जानता है। अतः मैं इस स्थान पर अपना चित्र निर्मित कर दूं। फलस्वरूप मुझे इस दर्पण से कुछ ज्योति प्राप्त होती रहेगी। अपनी ज्योति सूर्य की है तथा सूर्य की ज्योति से ही चन्द्रमा प्रकाशित हुआ है। इस प्रकार हृदय में विचारकर उसने अपना एक चित्र निर्मित कर दिया तथा उस चित्र के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। राजकुमार ने वहां से सब रंग लेकर अपनी मूर्ति निर्मित कर दी। इस भेद को या तो 'सुजान' ही जानता है अथवा वह व्यक्ति जानता है जो सुज्ञानी है।

चित्र लिखा पूजी पुनि घरी, निद्रा आइ कवर चखु भरी।
कुंअरक चाहत पलक न लावा, बरकस बैरिन नींद सो आवा।।
इहै नींद जासौं धन खोवा, इहै नींद जो करै बिछोवा।
इहै नींद मगु चलै न देई, इहै नींद सरबस हरि लेई।।
इहै नींद जोंहि नैन समानी, पलकन्ह भीतर दृष्टि समानी।
जो जग माहं नींद बस होई, रहे बीच मग सरबस खोई।।
जो यहि नींद आपु बस कीन्हे, इहै नींद तेहि नौ निधि दीन्हे।

मान गवाए सोई सबु, जो सम्पति हुति साथ।
अजहूं जागु न घर बसे, मकुरे है कछु हाथ।।6।।

शब्दार्थ—चखु=नेत्र। अजहूं=आज भी। मुकर=अज्ञानी।

व्याख्या—राजकुंवर ने चित्र निर्मित करने के बाद इस क्षण की आराधना की तथा इसी समय उसकी आंखों मे निद्रा भर गई। कुंवर एक क्षण के लिए भी आंखें बन्द नही करना चाहता था लेकिन बैरिन नींद ने उसे बरबस सुला दिया। इसी नींद से धन खो जाता है, लोगों का बिछोह हो जाता है, मार्ग अवरुद्ध हो जाता है तथा सर्वस्व हरण हो जाता है। यही नींद जब दृष्टि मे समाविष्ट हो जाती है, तब पलकों के अन्दर दृष्टि समाविष्ट हो जाती है। इस संसार मे जो नींद के वशीभूत हो जाता है वह सर्वस्व खोकर भी बीच मार्ग मे ही पड़ा रहता है। जिन्होंने इस नींद को अपने वशीभूत कर लिया है। उन्हे यही नींद नौ निधियों और नौ सिद्धियों की प्रदाता सिद्ध होती है। जो सम्पत्ति के साथ जुड़े हुए है वह अपना सर्वस्व मान गंवा देते हैं।

कवि का कथन है कि तू अब भी अज्ञानी बना हुआ है जो निद्रा को त्याग कर अपना घर नही बसाता। इससे अतिरिक्त मनुष्य के हाथ मे कुछ नही है।

देखन्ह कौतुक अति जिय भाया, चित्रिनि दरस अमर भइ काया।
होत भोर अदित परगासा, उठी सभा औ नांच उदासा।।
चित्रावलि कहं निद्रा आई, ले पलंग पर सखिन सोआई।
औ जहं तहं सब सोवन लागीं, सगरी रैनि अही सुख जागीं।
देखन्ह कहा होत है बारा, चित्रसारि जनु कोऊ उघारा।।

चलहु कुंअर लै चलहि सवेरा, मग कोइ आइ मढ़ी मंह हेरा।
एहि न पाउ औ तुरै जो पावा, जानक कुंअर जन्तु कोउ खावा ॥
जन पुरजन माता पिता, जह लहु हित सुनि पाउ।
मरिहहिं छाती फाटि सब, तब कछु हाथ न आउ ॥7॥

शब्दार्थ—देवतन्ह=देवताओं को। चित्रिनि=चित्रावली। अमर=अमरत्व। सगरी=समस्त। पुरजन=नगर के लोग।

व्याख्या—देवताओ अर्थात् देव एवं उसके मित्र को 'चित्रावली' की वर्षगांठ का उत्सव अत्यधिक अच्छा लगा। चित्रिनि अर्थात् 'चित्रावली' का दर्शन कर उनकी काया अमर हो गई। भोर होने और सूर्योदय से पूर्व ही सभा समाप्त हो गई है और नृत्यादि बन्द हो गये। 'चित्रावली' को निद्रा आ गई और उसे उसकी सखियो ने पलंग पर सुला दिया। 'चित्रावली' की सखियां, जो सारी रात्रि सुख में जागी थी, जहां-तहां सोने लगी। देवताओं ने सोचा कि विलम्ब हो रहा है कहीं ऐसा न हो कि कोई चित्रसारी को खोलकर कुंवर को देख लें। अतः अच्छा यही है कि हम कुवर को प्रातःकाल से पूर्व ही यहां से ले चलें। सम्भव है कि कोई उसे मढी पर खोजने के लिए आए। मढ़ी पर न तो उन्हें कुवर ही मिलेगा और न ही उसका घोड़ा। इससे लोगों को यह अनुमान होगा कि कुंवर को किसी जन्तु ने खा लिया है। इससे देश के सभी निवासियों, कुंवर के माता-पिता और जहा तक इसके हितैषी हैं सभी को यह जानकर अत्यधिक दुःख होगा। उनकी छाती इस दुःख से फठ जायेगी और वह मर जायेंगे। इस अवस्था मे इसका सारा अपयश हमारे ऊपर आयेगा।

विशेष—चित्रिनि से तात्पर्य 'चित्रावली' से है। उत्तर भारत के हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानो मे चित्रावली ही ऐसी नायिका है जिसे चित्रणी बताया गया है। सूफी प्रेमाख्यानो की अन्य नायिकाएं पद्मिनी कोटि की है।

पुनि दोउ एक संग चित्रसारी, आइ उघारेन्हि पौरि के वारी।
सोवत कुंअर आन तहं पावा, लीन्ह उठाइ बार नहिं लावा।
निमिष मांह लै मठी उतारा, गए छांड़ि सोवत दुःख मारा।
सूरज किरन जब कुंअरही लागी, करवट लेत उठा तब जागी।
देखै कहा चहूं दिसि हेरी, भई आनि रचना विधि केरी।

ना वह (क) मन्दिर नाहिं कबिलासू, ना वह चित्र न वह सुख बासू ।।
सपन जान चित उठा मरोहू, और करेज पानि भा लोहू ।
पुनि जो निहारे आपु तन, चिन्ह आह सो संग ।
बस्तर औ कर पर वही, लिखत लाग जो रंग ।।8।।

शब्दार्थ—पौरि=दरवाजा । लाहू=खून । करेज=कलेजा । वस्तर=वस्त्र । मरोहू=मरोड ।

व्याख्या—अतः दोनों (देव एव उसका मित्र) एक साथ चित्रसारी पर गये और उन्होंने चित्रसारी के दरवाजे खोल लिये । उन्हें वहां कुंवर सोता हुआ दृष्टिगोचर हुआ इसलिए कुंवर को उठाने मे उन्हें एक क्षण भी नहीं लगा । एक क्षण के ही अन्तर्गत उन्होंने कुंवर को मढी में लाकर उतार दिया और दुखी कुंवर को होता हुआ छोड़कर चले गये । कुंवर को जब सूर्य की गरम किरणों का ताप लगा तब करवट लेकर वह जाग उठा । वह चारों दिशाओं में देख रहा है कि विधाता की यह कैसी रचना है । न तो यहा वह मन्दिर है और न ही वह कैलाश, न वह चित्त है और न ही वह सुख का निवास है । इस घटना को स्वप्नवत् समझकर उसके हृदय में मरोड उठने लगी है तथा उसके हृदय का रक्त पानी में परिवर्तित हो गया । उसने पुनः अपने शरीर एवं वस्त्रो पर लगे हुए रंगो के निशानों को साक्षात् देखा ।

षन एक कुंअर अचक मन रहा, कौतुक सपना जाइ न कहा ।
पुनि जो बिरह लहरि तन आई, थांमिन (ख) सकेउ गिरेउ मुरझाई ।।
दोउ नैनन जनु समुन्द आपारा, उमंड़ि चले राखै को पारा ।
फारै झंगा औ लोटे परा, बंधुन कोऊ हाथ को धरा ।।
भरि गै खेह सीस औ देहा, लेयक नाहिं जो झारै खेहा ।
संग न कोउ हितू पियारा, को उठाइ बैठाइ संभारा ।।
षिन चेतै षिन होइ बेसं बारा, धरी धुरी सिर भुइं दह मारा ।
बिरह दहनि कोउ किमि कहै, रसना कहि जारि जाइ ।
सोइ हिय माँहि संभारै, जेहि तन लागै आइ ।।9।।

शब्दार्थ—अचक=आश्चर्यचकित । झंगा=पहिनने का वस्त्र । खेह=मिट्टी । हितू=हितैषी । दहिन=जलन । रसना=जिह्वा ।

व्याख्या—एक क्षण तक कुंवर अवाक् रहा तथा उससे स्वप्न का कौतुक वर्णित नही हो पा रहा था। इसके पश्चात् उसके शरीर में विरह की लहर ने संचरण किया, जिसे संभालने में वह असमर्थ रहा। अत: वह मुरझा-कर गिर पड़ा। उसके दोनो नेत्रों से आंसू समुद्र की भांति उमड़ रहे थे। वह कपड़े फाडता था और पृथ्वी पर लेटा हुआ था। इस समय उसका कोई साथी नहीं था। उसके सिर और शरीर में मिट्टी भर गई थी। वहां कोई सेवक भी नही था जो उसके शरीर से मिट्टी हटा दे। उसके साथ कोई हितैषी भी नहीं था जो उसे संभालकर बैठा दे। उसे एक क्षण मे चेतना और एक ही क्षण में अचेतना आ जाती है। वह घड़ी-घड़ी अपने सिर को पृथ्वी में देकर मारता था। विरहाग्नि को कोई कैसे वर्णित कर सकता है और जिह्वा द्वारा उसका वर्णन होना भी असम्भव है। इस विरहाग्नि को वही संभाल सकता है, जिसके हृदय में इसकी पीर उत्पन्न हुई हो।

विशेष—सूफी प्रेमाख्यानो में सौन्दर्य ही विरह का मूल कारण बनता है। सौन्दर्य का प्रथम साक्षात्कार साधक के हृदय मे संकल्प एवं विकल्प, आस्था एवं अनास्था का प्रतीक बनता है। सूफी कवि उसे कभी मूर्छा और कभी चेतनता कहते है। प्रथम साक्षात्कार के समय समस्त सूफी प्रेमाख्यानों में सौन्दर्य दृष्टाओ को मूर्छित दिखाया गया है।

कटक जो आइ नगर नियराना, देखिन्ह संग न कुंअर सुजाना।
वह औ कहं वह ओ कहं पूंछा, कटक जानु बिनु जिउ तन छूंछा॥
सब मिलि कहा कुंअर जो नाहीं, राज पास काह लै जाही।
पूछत उतर देव हम काहा, छूंछ लगाइ रहब मुंह चाहा।
जेहि बिनु तब जाइहि मुंह गोवा, कसन अवहिं जो खोजिअ खोवा।
सोवत जानु सकं सुनि जागे, आपु आपु कहं ढूंढ़न लागे॥
जल-जल थल-थल मेरु पहारा, एक-एक तर सौ सौ बारा।

स्याम रैन बिनु पंथ पुनि, अगुवा संग न कोइ।
दूरि दूरि सब धावहिं, नियर जाहि नहि कोइ ॥10॥

शब्दार्थ—काह=किसको। गोवा=वाचालता।

व्याख्या—उधर कटक जैसे ही नगर के नजदीक पहुंचा तो लोगों ने देखा

कि हमारे साथ राजकुवर 'सुजान' नही है। वह परस्पर एक-दूसरे से कुंवर के सम्बन्ध मे पूछने लगे। कुवर के बिना यह कटक उसी प्रकार है जैसे कि प्राणो के बिना शरीर। सबने मिलकर सोचा कि यदि हमारे साथ कुंवर नही है तब हम राजा के पास किसको लेकर जायेंगे। अगर राजा हमसे पूछेगा तो हम उसको क्या उत्तर देंगे ? अगर हम उसे ढूढ लायेंगे तभी हम मुंह दिखाने योग्य होगे। जिसके बिना समस्त वाचालता समाप्त हो जाती है। हम उसे पहले ही क्यो न ढूढ लें। वह सब उसी प्रकार सचेत हो गये जैसे कि कोई सोते से जाग जाता हो तथा सभी कुवर को अलग-अलग ढूढने लगे। उन्होने जल, थल, पहाड तथा वृक्षो की एक-एक डाली पर कुवर को खोजा। काली रात्रि, अत्यन्त विकट पथ तथा किसी अगुआ का अभाव अनेक कष्टप्रद प्रतीत हो रहा था। कुंवर को खोजने के लिए सब दूर-दूर तक गये लेकिन किसी ने भी कुंवर को नजदीक के स्थानो पर नही खोजा।

खोजत खोजि कटक सब हारा, बीती रैनि भयो भिनुसारा।
सूरज उदै पंथ तब सूझा, भयो दिवस पर आपन बूझा॥
वाजी चरन खोज पुनि पाए, खोजत खोज मढी मंह आए।
देखहि कुंअर परा बिकरारा, हाथ पांव सिर कछु न संभारा॥
अभ उसास लेइ औ रोवा, देखत सैन प्रान जनु खोवा।
खेह भारि ले बैसे कोरा, रोवै कतक देखि मुख ओरा॥
पूछे बातन उतर न देई, घिन घिन ऊभ सांस पै लेई।

अरुन बदन पिराइगा, रुहिर सूख गा गात।
रहा झांपि लोयन दोऊ, कहै न पूछे बात ॥11॥

शब्दार्थ—भिनुसारा=प्रात:काल। अरुण=लाल। पिराइ=पीला। रुहिर=रुधिर।

व्याख्या—सारा कटक कुंवर को खोज-खोजकर हार गया। सारी रात्रि व्यतीत हो गई और प्रात:काल हो गया। सूर्य के उदित होने से पथ दृष्टिगोचर होने लगा तथा दिन मे सभी कुछ दिखाई देने लगा। कुछ लोग कुवर को खोजते-खोजते मढी पर आ पहुचे। वहा वह क्या देखते हैं कि कुंवर बेचैन होकर पडा हुआ है। उसे अपने हाथ, पाव और सिर की भी चेतना

नहीं है। वह ऊभ-ऊभ कर स्वांस ले रहा है और निरन्तर रो रहा है। उसके नेत्रों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उसके प्राण निकल गये है। कुंवर के शरीर से मिट्टी झाडकर लोगों ने उसे संभाला। उसके मुख को देखकर सारा कटक रो रहा था। वह किसी प्रश्न का उत्तर नही देता था और क्षण-क्षण मे ऊभ ऊभ कर स्वांस लेता था। उसका अरुण मुख पीला पड़ गया तथा उसके शरीर मे रक्त नही रह गया था। वह अपने दोनों नेत्रों को बन्द किए हुए था तथा पूछने पर किसी बात का उत्तर नही देता था।

कोऊ कहै मृगी एहि आई, होइ अचेत परा मुरछाई।
कोउ कहा डसा सांप एहि मठि, सूरज उदै लहरि है चढ़ी।।
कोउ कहे अहा राति का भूखा, तांवरि आइ रुहिर तन सूखा।
कोउ कहै रैनि रहा एकसरा, कै दानौ कै चुरइलि छरा।।
इहा धरी विलब मल नाहीं, बेगहि होहु नगर लै जाहीं।
तत्षन राज सुखासन आना, लै पौढ़ाएं कुंअर सुजाना।।
नाउ सुखासन लै दुखवाहा, बिरह कजरा दून कै डाहा।
जाइ सुखासन आतुभा बाजु, गीत औ नाद।
चला पाहु सब आवै, कटक भरा बिसमाद।।12।।

शब्दार्थ—मृगी=मिरगी, एक बीमारी जिसमे व्यक्ति बेहोश हो जाता है। तावरि=उसी कारण से। रुहिर=रुधिर अर्थात् खून। दानौ=दानव। विसमाद=दुख।

व्याख्या— कोई कहता कि कुंवर को मिरगी आ गई है, जिसके कारण अचेत होकर यह पृथ्वी पर गिरकर मूच्छित हो गया है। कोई कहता कि इस मढी पर उसे किसी साप ने डस लिया है तथा उसके विष की लहर सूर्योदय के साथ उसके शरीर को चढ रही है। कोई कहता था कि यह रात भर भूखा रहा है इसलिए इसके शरीर का रक्त सूख गया है। कोई कहता था कि यह रात भर अकेला रहा है अतः इसे किसी दानव या चुड़ैल ने छल लिया है। इसे यहा देर तक रखना श्रेयस्कर नही है, इसे शीघ्र ही अपने नगर को ले चलो। उसी क्षण सुखासन लाया गया और कुंवर को उस पर लिटा दिया गया। कुंवर की शैय्या का नाम वैसे तो सुखासन है, किन्तु कुंवर के लिए

यह दुखासन के समान है। कुंवर की विरह अग्नि उसे इस सुखासन पर दूनी जला रही है। जो सुखासन सर्वदा बाजे, गीतों और नादों से आगे बढ़ता था, वही वह आज विषाद से भरा हुआ कटक के पीछे-पीछे चला आ रहा था।

केऊ कहा जाइ जहं राजा, कुंवर आव कछु ओरै साजा।
संग न सुनिय गीत औ दाना, सिगरी कटक देखि बिसमाना॥
सुनि औगुन राजा उठि धावा, व्याकुल होइ मुंह पाव न लावा।
रानी सुन सिर परी बिजागी, सुनतहि जरी कोष की आगी॥
आई धाइ कुंवर जहां आवा, रोइ सुखासन लेइ कंठ लावा।
देख षीन तन सुख पियराना, राजा रानी तर्जाहि पराना॥
कंठ लगार्वाहि पूंर्छाहि बाता, उतर न देइ बिरह मद माता।

पुनि ते पछा वोलि कै, जे सग हुते सयान।
जहवा कुंवर बिहुरि मिला, तिन्ह सब कीन्ह बखान॥13॥

शब्दार्थ-- केऊ = किसी ने। बिसमाना = विस्मित या दुखी। बखान = वर्णन।

व्याख्या—किसी ने जाकर राजा से कह दिया कि आज कुवर कुछ अजीब ही स्थिति मे लौट रहा है। उसके साथ गाजे बाजे नहीं हैं, बल्कि विषाद ही विषाद दिखाई दे रहा है। इस बात को सुनकर राजा, उसके साथी और परिवारीजन उसे देखने आये और उन्होंने कटक को देखकर अत्यधिक दु:ख का अनुभव किया। इस अपशकुन को देखकर राजा उठकर चला। इस व्याकुलता से वह पृथ्वी पर पैर नही लगाता था। रानी इस समाचार को जानकर व्याकुल होकर गिर पड़ी और उसकी कोख जलने लगी। वह उस स्थान पर चलकर आई, जहा कुवर को सुखासन पर लिटाकर लाया गया था। उसने कुवर को कंठ से लगाया। कुवर के क्षीण शरीर और पीले मुख को देखकर राजा और रानी के प्राण निकलने लगे हैं। वह कुंवर को कठ से लगाते थे और उससे तरह-तरह के प्रश्न करते थे। लेकिन विरह में मदमस्त कुंवर कोई उत्तर नही देता था। राजा ने पुनः उन सयाने लोगों से पूछा जो कुवर के साथ थे। उन्होंने कुवर किस प्रकार खोया और पुनः किस प्रकार मिला आदि से अंत की समस्त कहानी को सुना दी।

राजमंदिर मंह कुंवर उतारा, जानहु आनि उनगिन मंह डारा ॥
कल न परै पल अति बिकरारा, हाथ पांव सिर दै दै मारा।
राजे ततखन जन दौराए, बैद सयान गुनी लै आए॥
गहहिं नाड़िका बूझहिं पीरा. नारि मांह निरदोष सरीरा।
ससि सूरज दोऊ निरदोषी, अपुने-अपुने घर संतोषी॥
अब नाड़िका मांह नहिं पीरा, प्रगट पियर मुख षीन सरीरा।
कहि न आव हम हिये बिचारा, ई जस बिरह घाउ कर मारा॥
पीर सोई जो नहिं कछु, औषद मूरि उपाय।
एहि कर हितु तो होई कोई, सो पूछै फुसिलाय ॥14॥

शब्दार्थ—आनि = जाकर। अगनि = अग्नि। जन = आदमी। ई = ऐसा। औषद = औषधि। हितु = हितैषी।

व्याख्या—राजकुंवर को जैसे ही राजमदिर में उतारा गया वैसे ही ऐसा लगा मानो कि अग्नि में ही डाल दिया गया हो। राजकुंवर को चैन नहीं पड़ता था। वह पल-पल मे व्याकुल हो रहा था तथा हाथ, पाव और सिर को पृथ्वी पर दे-देकर मार रहा था। राजा ने उसी समय व्यक्तियों को भेजकर वैद्य, सयाने और अन्य गुणियों को बुलवाया। वैद्य नाडी देखते है और पीड़ा के सम्बन्ध में पूछते हैं तथा बाद में कहते है कि नाडी से शरीर निर्दोष दिखाई देता है। सूर्य एवं चन्द्र दोनों ही नाडिया निर्दोप है तथा अपने-अपने स्थान पर सन्तोष-जनक स्थिति में है। नाडी मे अब कोई पीडा नही है लेकिन प्रगट में उसका मुख पीला और शरीर क्षीण दिखाई दे रहा है। हमने अपने हृदय से जो विचार किया है हम उसे कहने मे असमर्थ है। हमें ऐसा लगता कि इसे विरह रूपी घाव लगा है। राजकुंवर के हृदय मे जो पीडा है। उसकी कोई औषधि या जड़ी-बूटी नही है। इसका एकमात्र उपाय यही है कि राजकुंवर से उसका कोई हितैषी बहलाकर इसका कारण जानने का प्रयास करे।

उठि अकुलाई मात दुख भरी, कुंवर पास आई एक सरी।
सीस लाइ कै बैठी कोरा, पूछै बाल देखि मुख ओरा।
नैन उघारू पूत कहु पीरा, केहि कारन भा षीन सरीरा।
काहे पीत भयो मुख राता, कहहु बात बलिहारी माता॥

(क) तही एक दिनमनि कुलकेरा, नैन मूंदि कर करहिं अंधेरा।
हम सब घट तुई जीव सनेही, कसकुंभिलाइ देसि दुख देही ॥
पूत पीर कछु कस जिउ तोरा, नैन कए जगत अंजोरा।
तोसे पीर कि औषद, जो एहि जग मंह होइ।
अर्थ द्रव्य जिउ दइ कै, वेणि मंगावो सोई ॥15॥

शब्दार्थ—अकुलाई=व्याकुल। कोरा=दीवाल के साथ। दिनमनि=सूर्य। अजोरा=उजाला। घट=शरीर। जीव=प्राण।

व्याख्या—राजकुवर 'सुजान' की माता ने दुख से अत्यधिक व्याकुल होकर अकेली कुंवर के पास आई। दीवाल में अपना सिर और शरीर लगाकर कुंवर की ओर देख रही थी। कह रही कि हे पुत्र! तू अपने नेत्रों को खोल तथा बता कि किस कारण से तेरा शरीर क्षीण हो गया है? तेरा मुख पीला क्यों पड़ गया है? यह माता तेरी बलिहारी जाती है, तू सारी बातें कह दे। तू ही इस कुल का सूर्य है। तू नेत्र वन्द कर कुल मे अधेरा फैला रहा है। हम सभी शरीर हैं और तू हमारा प्राण है। तू इस प्रकार मूछित होकर हमे क्यों दुःख दे रहा है? हे पुत्र! तू वता कि तेरे जी में क्या पीडा है। तथा नेत्र खोलकर समस्त ससार को प्रकाश प्रदान कर। तेरी पीडा की जो भी ओषधि इस संसार में हो हम उसे अर्थ द्रव्य आदि देकर जल्दी ही मगालें।

विशेष—सूफी प्रेमाख्यानों मे विरह दग्ध नायक की नाडी देखने के लिए वैद्य आदि बुलाये जाते है और वे यह वताते है कि निर्दोष है किंतु इसमें विरह के लक्षण विद्यमान हैं।

कहु जो उपजी बिथा सरीरा, करौं सोहि जेहि नेवरइ पीरा।
जो है मढ़ी देवकर माऊ, लै पूजा सो देव मनाऊं।
जो काहू के दरसन भूला, मांगौ होइ दुनों कर फूला।
और जो मन कछु छीछा होई, कहु सो बेगि लै पुरवौं सोई।
दुहु जग मांह तुही एक आसा, आस तोरि (क) का करसि निरासा।
को काटै इह दुख धिनराती, अवहीं मरब फाटि मैं छाती ॥
सुनि कै कुंवर मातु कै बोला, अभि सांस लीन मुख खोला।
माता पीर सो ऊपजी, ताहि न मूरि उपाइ।
लोयन अटकै तहां पै, मन न सकै जहं जाइ ॥16॥

शब्दार्थ—उपजी=उत्पन्न हुई है। विथा=व्यथा। नेरवइ=निवारण। पुरवौं=पूर्ण।

व्याख्या—राजकुंवर सुजान ने की माता ने आगे कहा कि "हे पुत्र ! तू यह बता कि तेरे शरीर मे कौन-सी व्यथा उत्पन्न हुई है जिससे कि उस व्यथा के निवारण का उपाय किया जाए। अगर मढी पर तुझे देव का कुछ प्रभाव हुआ है तो मैं पूजा करके देव की आराधना कर उसे प्रसन्न करू। अगर तू किसीके दर्शनों से भूला हुआ है तो मै उसे मागकर प्रसन्न हू। इसके अतिक्ति भी तेरे मन मे कोई अन्य इच्छा हो तो तू उसे स्पष्ट बता दे जिससे की मैं तेरी इच्छा को जल्दी ही पूर्ण कर दूं। मेरे लिए तू ही इहलोक और परलोक की आशा है। अब तू मेरी आशा को तोडकर मुझे निराश क्यों कर रहा है। अब दिन-रात मैं मृत्यु दु ख को कैसे सहन करू। मैं अभी छाती फाड़कर मर जाती हूं। माता के इस प्रकार के वचनों को सुनकर कुंवर ने ऊब कर स्वांस ली और मुख खोलकर बोला कि 'हे माता मेरे हृदय में जो पीर उत्पन्न हुई है उसकी कोई औपधि नही है। मेरे नेत्र वहा पर अटके हुए हैं, जहां मन नहीं जा सकता।

विशेष—सौन्दर्य एवं विरह अनुभवगम्य है, उनको मन और वाणी से अभिव्यक्त नही किया जा सकता।

कहि कै कुंवर मौन भै रहा, लोयन दुहु गिरे जल बहा।
बहुत पूंछहि रानी जब हारी, कहिन बात नाहि पलक उघारी॥
एहि महं विरह लहरि पुनि आई, (ख) थाभि न सका परा मुरछाई।
धाड़ मेलि तब रानी रोई, सुनत लोग धावा सब कोई।
राजा रोवैं डरि सिर पागा, जन परिजन सब रोवइ लागा।
राज मंदिर कर सुनत अंदोरा, घर-घर परा नगर मह रोरा॥
जो जैसहि तैसहि उठ धावा, हाथ-हाथ लै कुंवर उठावा।
कोई मेलै पानी-पानी मुख, कोऊ मूंदै नाक।
मेटे कैसेहु नहि मिटै, माथ लिखा जो आंक॥17॥

शब्दार्थ—लोयन=लोचन। पागा=पगडी। अदोरा=शोक। रोर=रुदन।

व्याख्या—इस प्रकार के वचन कहकर राजकुंवर 'सुजान' चुप हो गया। इस अवस्था मे उसके दोनों नेत्रों से जल गिर रहा था। रानी जब पूछ-पूछ

कर हार गई लेकिन कुंवर ने न तो कुछ बताया और न ही अपनी पलकें खोलीं। इसी समय कुंवर के शरीर में विरह की लहर ने पुनः संचरण किया और उसे ठीक प्रकार से न संभाल पाने के कारण वह पुनः मूच्छित हो गया। रानी इस दृश्य को देखकर धाड़ मार-मार रोने लगी तथा इन आवाज को सुनकर सभी लोग वहां आकर एकत्रित हो गये। राजा सिर की पगड़ी को नीचे फेंककर रो रहा था। इससे अपने और पराये सभी नगर के लोग रोने लगे। राजमन्दिर के इस शोक को सुनकर समस्त नगर में रुदन छा गया। जो जैसे बैठा था वैसे ही उठकर चल दिया तथा अपने-अपने हाथों से राज-कुंवर को उठाने लगे। कोई कुंवर के मुख में पानी डालता था और कोई उसकी नाक मूदता था। वास्तव में भाग्य में लिखे अंकों को कोई किसी भी प्रकार नहीं मिटा सकता।

विशेष—राजकुंवर के भाग्य के अंक पहले ही महादेव तथा ज्योतिषियों द्वारा स्पष्ट किए जा चुके हैं कि इस कुंवर के हृदय में विरह की पीर उत्पन्न होगी तथा वह योग का मार्ग ग्रहण करेगा और देश-विदेश का भ्रमण कर कष्टों को सहन करेगा।

विद्याधर गुरु पंडित महा, तेहिं कुल सुमति पूत एक अहा।
नाउ सुबुद्धि सकल गुन जाना, पढ़ा पाठ संग कुंअर सुजाना।
विद्या जानु जहां लगि गुनि, नाटक चेटक आखर धनी।
मानत हेत कुंअर तेहि सेती, कहत सुनत जिय बातें जेती।
सुनि कै बिथा कुंअर पहं आवा, कुंअर अचेत आइ तहं पावा।
नारी देखि विचारेसि पीरा, दोष न पाइस कुंअर सरीरा।
बदन पियर लोचन न उघारा, निहचै कहेसि बिरह कर मारा।

प्रेम मंत्र बोला सुबुधि, श्रवनन्ह लागि पुकारि।
सोवत जागा कुंअर पुनि, देखिसि पलक उघारि ॥18॥

शब्दार्थ—हेत=प्रेम। अचेत=बेसुध।

व्याख्या—विद्याधर नाम का गुरु महान पंडित था। उसका एक बुद्धिमान पुत्र था जिसका नाम 'सुबुद्धि' था। वह संसार के समस्त गुणों का ज्ञाता था। उसने कुंवर के साथ ही विद्या ग्रहण की थी। उसने जहां तक विद्याओं

को पढा था, वह उन सभी को जानता था। उसे नाटक, केटक और अक्षरों का अच्छा ज्ञान था। वह कुंवर से प्रेम मानता था तथा कुंवर से जितनी भी बातें होती थी कहता और सुनता रहता था। कुवर की पीड़ा सुनकर वह भी कुवर के पास आया तो उसने देखा कि कुवर बेसुध पड़ा हुआ है। उसने नाड़ी देखकर कुवर की पीड़ा का अनुमान लगा लिया। कुवर का बदन पीला पड़ा हुआ है और वह नेत्र नहीं खोलता। इससे उसे निश्चित हो गया कि निश्चय ही कुवर विरह-पीड़ा में व्यथित है। 'सुबद्धि' राजकुंवर के कानों के नजदीक जाकर, जोर-जोर से 'प्रिय' शब्द कहने लगा, इससे कुंवर सोते से जाग गया और वह नेत्र खोलकर देखने लगा :

तब एकसर मैं पूछेसि बाता, कहहु कहां कासों मन राता।
कौन रूप तुम देखा जाई, देखत जाहि परे मुरझाई ॥
मैं तो हितू जान सब होई, कौन बात तुम मोसों गोई।
औ मैं गुन आकरषन पढ़ा, स्वर्ग बसै सोऊ कर चढ़ा ॥
नाउं ठाउं जाकर जौं होई, करि उपाउ पुनि आनउं सोई।
जो तुम्ह काज आज नहिं आवौं, बुधि बिद्या सब कुलहिं लजावौं।
प्रेम पहार स्वर्ग ते ऊंचा, बिनु रेंघे कोउ तहं न पहुंचा।

कहु सो बात अब जीउ की, बेगहि करौं उपाइ।
ना तो बौरे कुंअर जिउ, सब मरिहैं बौराइ ॥19॥

शब्दार्थ—एकसर=अकेले में। रात=अनुरक्त। हितू=हितैसी। गोई=छिपाना। रेंघे=आश्रय रहित, चढे बिना।

व्याख्या—तब सुबुद्धि ने अकेले में राजकुंवर से पूछा कि "मुझे यह बताओ कि आपका मन किस पर अनुरक्त हुआ है। तुमने वह कौन-सा रूप देखा है, जिसे देखते ही तुम मुरझा गये हो? इस बात को सभी लोग जानते है। मैं तुम्हारा हितैषी हूं, वह कौन-सी बात है, जिसे तुमने मुझसे छुपा रखा है। मैंने आकर्षण के सभी गुणों का अध्ययन किया है। में स्वर्ग निवासी को भी वहाँ चढकर अपने हाथों से ला सकता हूं। अगर मैं आज उसका नाम या स्थान हो तो मै उपाय कर उसे ला सकता हूं अगर मैं आज तुम्हारे काम नही आया तो इससे मेरी बुद्धि, विधा कुल लज्जित होंगे। प्रेम का पहाड़ स्वर्ग से ऊंचा है।

कहा कहौं कछु कही न जाई, हिय सौरंत बुद्धि जाइ हेराई।
कहत न बनै जो कछु मै देखा, गूंगक सपन भयो मोर लेखा।
नाउं न जानौं पूछौ काही, पटतर नाहि देखावौ जाही।
देस न जानौं केहि दिसि आही, पंथ न जानौं पूछौं काही।।
मन चहुं दिसि धावै बैरागा, फिरि आवै बोहित ज्यौं कागा।
करहु उपाय करै जो पारहु, नाहि तो कहा मुए कहं मारहु।।
गहिरे सिंधु जाइ जिव खोवा, अब मैं हाथ आपु सो धोवा।।
मोहि जियत नहि सूझइ, वह वह रूप मिलाउ।
मुए कबहुं सुर मौन मंह, हाथ आउ तौ आउ।।21।।

शब्दार्थ—सौरंत=विचार। हेराई=भ्रमित। पटतर=वस्त्र। बैरागा =उचटा हुआ या वैराग्यवान। बोहित=नाव। मुए=मरें। मारहु=मरते हो। सिंधु=समुद्र।

व्याख्या—राजकुमार कहने लगा कि "मैं क्या कहूं, मुझसे कुछ कहा नहीं जाता। हृदय में उसका विचार आते ही बुद्धि भ्रमित हो जाती है। मैंने जो कुछ देखा वह कहने में नहीं आता, मेरा स्वप्न गूगे के समान हो गया है। मैं उसका नाम नहीं जानता अतः किससे पूछूं। मेरे पास उसका कोई वस्त्र नही जो किसी को जाकर दिखाऊं। जब मैं उसका देश नहीं जानता, फिर किस दिशा मे जाऊं। जब मैं पथ नही जानता फिर मैं किस पथ पर जाऊं। मेरा वैराग्यवान (उचटा हुआ मन) चारों दिशाओं में जाता है, किंतु जैसे कि नाव का कौवा सभी ओर जल देखकर पुनः नाव पर आ जाता है उसी प्रकार मेरा मन भी निराश होकर फिर वहीं आ जाता है। तुम जो भी सम्भव उपाय कर सकते हो वह करो अन्यथा मुझ मरे को क्यों पुनः मारते हो। मैंने गहरे समुद्र मे जाकर अपना प्राण खो दिया हैं। अतः अब मैंने अपने प्राणों से हाथ धो लिया है। मुझे तो अब जीवन दूर-दूर तक दिखाई नही देता अगर वह स्वरूप कभी पुनः मिले तो मरकर स्वर्ग लोकमें ही मिल सकता है। अतः वह वहा मिल जाये तो मिल जाये अन्यथा नहीं।

विशेष—'जैसे उड जहाज को पंछी पुनि जहाज पर आवै।' सूर की पंक्तियों से कवि का भावसाम्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

जबहं कुंवर यह बात सुनाई, सुबुद्धि बुद्धि सब गई हेराई।
परेउ जाइ मन तेहि अवगाहा, तीर न देखि पाव नहि थाहा।।

कछु विचार हिए नाहिं आवै, कुंवर पीर जेहि औषध जावै।
कहेसि कुंवर यह पंथ दुहेला, निराधार खेलै तिन्ह खेला॥
कहेसि उपाइ एक मति मोरी, मूंदिय और बाट चहुं ओरी।
जहवां सोइ सपन अस दीसा, सोही ठांव हनहुं पुनि सीसा॥
मकु बिधि सोवत कर्म लगावै, बहुरि सोई सपना सो पावै।
लेहु कुंअर उपदेस यह, चेतहु चेत संभारि।
आन पंथ नहिं दूसरा, दीख न हिएं विचारि॥22॥

शब्दार्थ—अवगाहा=अथाह, गहरे सागर। थाह=गहराई। दुहेला=दुस्तर अर्थात कठिन। मकु=सम्भव है। मूंदिय=बन्द है। बाट=मार्ग।

व्याख्या—राजकुमार 'सुजान' ने जब यह बात सुनाई तो इसे सुनकर 'सुबुद्धि' की समस्त बुद्धि भ्रमित हो गई। उसका मन गहरे सागर में गिर गया, जहा वह तट और गहराई को भी नहीं देख पाता था। उसने अपने मन में पर्याप्त विचार किया, किंतु उसकी समझ में कुछ नही आया। राजकुंवर की पीड़ा किस औषधि से दी जाए उसकी समझ में नहीं आ रहा था। उसने राजकुंवर से कहा कि हे राजकुमार यह पथ दुस्तर अथवा कठिन है जो इस खेल को निराधार बनकर खेलते हैं वही इसे खेल सकते हैं। अन्य मार्गों के बन्द होने के कारण मेरी बुद्धि से इसका एक उपाय सूझ पडता है कि 'जिस स्थान पर निद्रा मे इस प्रकार स्वप्न देखा गया, उसी स्थान पर जाकर पुनः अपने शीश को समर्पित करना चाहिए। सम्भव है कि विधाता सोये हुए कर्मों को पुनः जगा दे तथा पुनः उस स्वप्न की पुनरावृत्ति कर दे। अतः राजकुमार तुम मेरा यह उपदेश ग्रहण करो और अपनी चेतना को सभालो। मैने हृदय मे पूर्ण रूप से विचार करके देख लिया है कि इसके अतिरिक्त हमारे पास कोई दूसरा रास्ता नही है।

विशेष—1. शीश समर्पित करने का तात्पर्य व्यक्तित्व एवं अपने अहं का विसर्जन है। सुबुद्धि राजकुमार को यह समझाना चाहता है कि प्रेम का खेल निराधार अर्थात् निःस्वार्थ भाव से ही खेला जा सकता है तथा हमें खेल में सफलता अर्जित करने के लिए अपने शीश को समर्पित करना पडता है अर्थात अपने अह एव व्यक्तित्व को समाप्त करना पडता है। इस अर्थ मे सूफी कवियो की समस्त प्रेम-साधना वस्तुतः व्यक्तित्व विसर्जन का एक ही सहज उपाय है।

परिशिष्ट

सूफी साहित्य

व्युत्पत्ति—सूफी शब्द की व्युत्पत्ति विषयक धारणाओं में पर्याप्त मत-भेद हैं। कुछ लोगों की धारणा है कि यह शब्द सूफा से बना है जिसका अर्थ पवित्रता होता है और इसी कारण सूफी वस्तुतः उन्हें ही कहना चाहिए जो मनसा, वाचा, एवं कर्मणा पवित्र कहे जा सकते हैं। एक दूसरे मत के अनुसार सूफी शब्द यहां निष्कपट भाव के लिए व्यवहृत हुआ है, इसलिए सूफी ऐसे व्यक्ति को कहना चाहिए जो परमात्मा के प्रति निश्छल भाव रखता है और इसी के साथ सारे प्राणियों के साथ भी शुद्ध बर्ताव करता है। ऐसे व्यक्तियों के प्रति परमात्मा स्वयं भी स्नेह प्रदर्शित करता है। एक तीसरे मत के अनुसार सूफी शब्द को सोफिया से निकला हुआ मानते हैं, जिसका अर्थ ज्ञान होता है। यदि इसके आधार पर विचार किया जाय तो सूफियों को हम ज्ञानी या परमज्ञानी तक समझ सकते हैं। यही प्रश्न यह उठता है कि इन तीनों मतों में से किसी का भी प्रतिपादन करते समय यह बतलाया नहीं जाता कि केवल पवित्र, निश्छल अथवा ज्ञानी के अर्थ में व्यवहृत किये जाने योग्य सूफी शब्दों को एक वर्ग विशेष के व्यक्तियों के लिए ही क्यों चुना जाता है। ऐसे शब्दों का प्रयोग उन सभी लोगों के लिए क्यों नहीं किया जाता, जिनमें उक्त सभी गुण हों।

सूफी शब्द को कुछ अन्य लोगों का कहना है कि यह शब्द सफ से निकला है जिसका अर्थ सबसे आगे की पंक्ति अथवा 'प्रथम श्रेणी' लिया जाता है और इसके अनुसार सूफी केवल उन व्यक्तियों को कहा जा सकता है जो कयामत के दिन ईश्वर के प्रिय पात्र होने के कारण सबसे आगे खड़े किये जायेंगे, और जिनमें इस बात की ओर संकेत करने के लिए कुछ विशेषता भी होनी चाहिए।

एक अन्य वर्ग के विद्वान सूफी शब्द को सुफा से बना हुआ मानते हैं जिसका अर्थ चबूतरा होता है जो विशेषतः अरब देश की किसी मस्जिद के प्रांगण में बने हुए उस ऊंचे स्थल को सूचित करता है जहां पर हजरत

मुहम्मद के प्रिय सहचर प्रायः बैठा करते थे। उन लोगों का अधिक समय परमात्मा चिंतन में ही बीतता था और सूफियों का यह नाम उन्हीं के स्वभाव-सादृश्य के कारण दिया गया था।

एक तीसरा वर्ग है कि सूफी शब्द वास्तव में सूफ से बना है जिसका अर्थ ऊन हुआ करता है और यह पहले-पहल उन्हीं व्यक्तियों के लिए प्रयोग में आता था, जो अपने पहनावे के लिए मोटे ऊनी वस्त्रों का व्यवहार किया करते थे। ये लोग अत्यन्त ही सीधा-सादा जीवन व्यतीत करते हुए केवल आध्यात्मिक साधनाओं में लगे रहते थे।

सूफियों का स्वभाव

आधुनिक विद्वान विशेषकर पाश्चात्य देशों के कुछ लेखक तथा बहुत-से मुस्लिम आलिम भी आजकल की उक्त अन्तिम मत को ही अधिक मानते हैं। इसके लिए अनेक कारण हो सकते हैं। सूफ एवं सूफी शब्दों के बीच सीधा शब्द साम्य दीखता है। सूफ अर्थात ऊन को अधिकतर प्रयोग में लाने वालों के लिए सूफी शब्द का प्रयोग अनुचित नहीं कहा जा सकता। कारण, उनका पहनावा अत्यन्त साधारण होने के साथ-साथ एक विशेष ढंग का बना होता था और इसी कारण सबका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते रहे। इसके अतिरिक्त इनके स्वभाव की एक अन्य बात यह भी प्रसिद्ध है कि ये लोग वस्त्रों के साथ-साथ व्यवहार में अपना सादा जीवन तथा स्वेच्छा से दारिद्रय का भी प्रदर्शन किया करते थे। ये लोग धन-वैभव और गृह-परिवार आदि के प्रति उदासीनता का भाव रखते हुए केवल परमात्मा की उपलब्धि को ही अपने जीवन का ध्येय समझते थे और उसी के ध्यान एवं चिंतन में लीन रहकर अपने जीवन का यापन करते थे। इनके जीवन का सर्वोच्च आदर्श था परमात्मा के साथ निर्बाध-मिलन तथा उसके प्रति सच्चे अनुराग में ही अपना सारा समय व्यतीत करना।

सूफियों की सादगी केवल बाहरी वेशभूषा तक ही सीमित नहीं थी बल्कि उनकी भीतरी मनोवृत्ति भी इसी प्रकार की थी। अबुल हसन नूरी के अनुसार ऐसे निर्धन दिखाई पड़ने वाले लोग निष्काम भी हुआ करते थे। सूफियों का यह दृढ़ विश्वास था कि जिन वाणियों को हजरत मोहम्मद ने परमेश्वर के यहां प्राप्त किया है वे दो रूपों में प्रकट हुईं। एक तो वे थी जिनका

संग्रह कुरान शरीफ में किया गया और इसी कारण इन्हें इल्म-ए-सकीना अर्थात ग्रंथ मे निहित तथा दूसरे रूप को इल्म-ए-सीना अर्थात हृदय-निहित ज्ञान, जो रसूल के हृदय पर अंकित थी। सूफियों के अनुसार पहली विद्या मुस्लिमों के लिए थी तथा दूसरी केवल चुने हुए परमेश्वर के प्रिय पात्रों के लिए अभिप्रेत रही। इसी कारण यह गुप्त सकी और सर्व-साधारण के मध्य प्रचलित न हो सकी। सूफी लोग इन बातों को हजरत मोहम्मद की कतिपय उक्तियो मे ढूंढने का प्रयास करते रहे क्योंकि वे इस गुप्त ज्ञान को या हृदय-निहित ज्ञान को सर्वसाधारण मे फैला देना चाहते थे।

अस्तु, सूफ (ऊन) के वस्त्र पहनने वाले सभी लोगों को सूफी नहीं माना गया बल्कि यह शब्द उन लोगों के लिए प्रयोग में लाया गया जो हजरत मोहम्मद के अनुयायी तथा मुसलमान थे, जो उनके सहचर अथवा उत्तराधिकारी खलीफाओ की सदाचार वृत्ति को अपने जीवन का आदर्श भी स्वीकार करते थे। ऐसे लोगों का झुकाव कुरान शरीफ के शब्दों में अन्ध-विश्वास रखने की ओर नहीं था और वे संयत एवं वैराग्यपूर्ण जीवन तथा गम्भीर ईश्वर के आधार पर अह्ल-अल-हक अर्थात पूर्णतः ईश्वरानुगामी कहे जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि इस्लाम धर्म के अनुयायी उन्हें निश्चय ही अपने से भिन्न समझा करते थे। समय पाकर ऐसे लोगों का विशिष्ट सम्प्रदाय बन गया और उसके भिन्न-भिन्न अनुयायियो पर देशकालानुसार अन्य अनेक विचारधाराओ का प्रभाव पडने लगा। सूफी मत की कई बातों का मूल उत्पन्न प्राचीन शामी परम्पराओं मे ढूंढा जा सकता है यह दूसरी बात है कि इन्हे सूफी शब्द से अभिहित हजरत मोहम्मद साहब के पश्चात ही किया गया।

निष्कर्ष यह है कि सूफी शब्द का प्रचलन सात्विक आचरण वाले उन मुस्लिम संत या फकीरो के लिए रूढ हो गया जो ऊनी वस्त्र पहनते थे तथा संसार से विरक्त होकर अपने प्रियतम ईश्वर के प्रेम मद मे मस्त और आनन्दमग्न रहा करते थे। ऐसे ही लोगों के द्वारा लिखे गये काव्य ग्रंथों के लिए सूफी शब्द भी रूढ हो गया। प्रस्तुत रूप मे लोक कथा प्रधान कथानक पर आधारित तथा अप्रस्तुत रूप में धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले काव्य ग्रथों के लिए सूफी प्रेमाख्यानक काव्य शब्द रूढ हो गया।

सूफी मत का उद्गम और विकास

हजरत मोहम्मद (सं० 628—688) का देहावसान हो जाने के पश्चात

उनके उत्तराधिकारी खलीफाओं का युग आया। उन्होने इस्लाम धर्म का दूर-दूर तक प्रचार किया। उनके प्रयत्नों से वह अरब देश से लेकर क्रमशः शाम, फिलिस्तीन, मिस्र, ईरान, स्पेन तथा तुर्किस्तान आदि देशों में बहुत शीघ्र फैल गया। इस विस्तार के कारण इस्लामी राज्य की राजधानी शाम देश के दमिश्क नगर में स्थापित की गई और पुनः वहां से उठाकर उसे फिलिस्तीन के बगदाद में स्थापित किया गया। पहले के चार-चार खलीफा अर्थात अबूबकर, उमर तथा उस्मान तथा अली अधिकतर धर्मपरायण व्यक्ति रहे और अपने इस्लामी राज्य के सीमा विस्तार तथा उसके शासन सम्बन्धी झंझटों के होते हुए भी वे क्रमशः अपनी शुद्ध हृदयता, कर्त्तव्यशीलता, त्याग और धैर्य के लिए विख्यात रहते आए। इनके पश्चात शासक गण धार्मिक प्रचार की अपेक्षा राज्य विस्तार तथा शासनाधिकार की ओर ही अधिक प्रवृत्त होते गये। फलतः रसूल तथा उक्त प्रथम चार खलीफाओं के जीवन का आदर्श लुप्त होता गया और धैर्य की बाह्य बातों का समावेश होने लगा तथा अन्य देशों के सांस्कृतिक और सामाजिक प्रभाव भी बढ़ते गये। कुरान शरीफ एवं हदीस के आधार पर अनेक भाष्यों और विवृत्तियों की रचना होने लगी तथा काजियों द्वारा निर्णय भी कराया जाने लगा। इससे धर्म में साम्प्रादिक भावनाओं के साथ अन्ध-विश्वासों का महत्त्व बढ़ गया।

सूफी मत को इस्लाम धर्म का प्रधान अंग कहा जाता है किंतु इस दिशा में ध्यातव्य रहे कि सूफी मत इस्लाम धर्म की शरीयत (कर्म कांड) की प्रतिक्रिया का फल है। अनेक सूफियों ने यद्यपि स्वयं को हजरत मोहम्मद साहब द्वारा प्रतिपादित धर्म से स्वयं को पृथक माना है, किन्तु उन पर उक्त धर्म प्रभाव दिखाई पड़ता है। सूफी मत पर इस्लाम की गुह्य विद्या, आर्यों का अद्वैतवाद एवं विशिष्टाद्वैतावाद नव अफलातूनी मत तथा विचार स्वातंत्र्य स्पष्ट है। वस्तुतः सूफी मत जीवन का एक क्रियात्मक धर्म एवं धिम्म है। इसमें किसी प्रकार की कट्टरता नहीं है। सूफी उदार एवं कोमल प्रकृति के थे। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए कहा जाता है कि सूफी मत का बीज वपन आदम में, अंकुर नूह में, कली इब्राहीम में, विकास मूसा में, परिपाक मसीह में तथा फलागम मोहम्मद में हुआ।

सूफी मत का आदि स्रोत शामी जातियों की आदिम प्रवृत्तियों में मिलता है। सूफीमत का आधार रति भाव था। इसका आरम्भ मे शामी जातियों ने विरोध किया। इसी आधार पर सूफियों को मसीह का शिष्य

भी नहीं माना जाता है क्योंकि मसीह का मूलमंत्र विराग है। मूसा और मोहम्मद साहब ने संयत भोग का विधान किया। मूसा ने प्रवृत्ति मार्ग पर बल देकर लौकिक प्रेम का समर्थन किया। सूफी इश्क मिजाजी को इश्क हकी की पहली सीढ़ी मानते है। सूफियो के इलहाम और हाल की दशा का मूल भी शामी जातियों में पाया जाता है। कुछ शामी रति-दान मे घृणा करने के कारण नबी संतान कहलाए। कभी-कभी वे देवता के वश मे होकर जो कुछ बोलते थे, वह इलहाम कहलाया और उनकी दशा हाल। सूफियों में परिपरस्ती तथा समाधि-पूजा भी शामियों से आई है। सूफियों मे मूर्ति चुम्बन की परिपाटी भी सूफियों मे बोसे तथा वस्ल के रूप मे प्रचलित हुई। यहा तक की सूफियों के प्रमुख तत्त्व प्रेम का स्रोत भी शामियों के गुह्य मंडली थी जिसमें सुरा-सेवन होता रहता था। इसी आधार पर सूफियों के पूर्व पुरुषों को नबी कहा जाता है, जो सहज जीव'' के उपासक थे तथा आत्म-शुद्धि के लिए अनेक प्रकार के उपायों का आश्रय लेकर प्रेम का राग अलापते थे। इन्ही की भावना सूफी मत में पल्लवित तथा पुष्पित हुई।

यहोवा के कारण नबियों की प्रतिष्ठा क्षीण हो गई। यहोवा के उपासकों की कट्टरता और सकीर्णता के कारण मादक भाव (हाल) को काफी क्षति पहुंची किन्तु बाद में यही भाव उनमें कवाली के रूप में मान्य हुआ। यहोवा ने रतिक्रिया से दूर रहने की काफी चेष्टा की कि यहोवा के मंदिरों में देव-दासी और देव-दासियों के रूप में प्रेम का यह स्रोत फूट पड़ा। सूफियों की इश्क हकीकी और इश्क मिजाजी में यही भावना मिलती है। सुलेमान के गीतों मे भी प्रेम की इसी दशा के दर्शन होते है। दुल्हा और दुल्हिन के रूप मे परमात्मा तथा आत्मा के गीतो को गाया गया और इस प्रकार से लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। यही पद्धति सूफियों के यहा भी है। यसप्रियाह ने अहं ब्रह्मोस्मि की घोषणा करके अद्वैत की प्रतिष्ठा की। उसके गान में करुणा, वेदना और कामुकता का सम्मिश्रण है। मसीह के आविर्भाव से शामी जातियों में विराग की प्रवृत्ति जागी, किन्तु धीरे-धीरे उसके उपासकों में प्रणय-भावना प्रचलित हो गई। मसीह मत जब यूनान पहुंचा तब इस पर अफलातून के दर्शन का प्रभाव पडा और बाद मे प्लेटिनस के द्वारा उस पर भारतीय दर्शन का प्रभाव भी पड़ा। प्लेटिनस ने पृथ्वी से लेकर नक्षत्र मडल तक व्याप्त अलौकिक सत्ता के आलोक का वर्णन अद्भुत रीति से किया है। सूफियों की अध्यात्म भावना पर इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है। सूफियों की साधना पद्धति मे जो

आनन्द तत्त्व आया है वह प्रजा और प्रेम का प्रसाद है। परशुराम चतुर्वेदी ने सूफी शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम शेख आबू हाशिम के लिए किया है। धीरे-धीरे नितांत वैयक्तिक साधना में रत रहने वाले व्यक्तियों का यह मत संसार में फैलता गया। इस मत के अनेक अनुयायी बन गए। अधिकांश लोग इन साधनों के सात्विक जीवन की आचरण सम्बन्धी विशेषताओं से प्रभावित हुए और नवी शताब्दी तक इस मत में दर्शन तथा अध्यात्म का पुट देकर इस्लाम से भिन्न इसका प्रचार एवं प्रसार किया गया। भारत में आने वाले आल हुज्विरी प्रथम सूफी संत थे।

सूफीमत का भारत-प्रवेश

प्राचीनकाल से ही भारत तथा अरबों के घनिष्ठ सम्बन्ध रहे है। भारतीय व्यापारी मिस्र से व्यापार करते थे। यद्यपि सूफी सत सातवी-आठवी शताब्दी से ही भारत आने लगे थे, किन्तु इनका मुसलमानो के आक्रमणों के साथ व्यापक स्तर पर प्रवेश हुआ। मुस्लिम शासको ने अपनी विजय के साथ-साथ अपने धर्म का प्रचार भी अभीष्ट समझा, लेकिन हिन्दू जनता पर बल-पूर्वक धर्म परिवर्तन का उतना प्रभाव नही पड़ा जितना इन उदार शान्त सूफी संतो का पड़ा। सूफियों के मधुर व्यवहार का व्यापक प्रभाव पड़ा तथा शीघ्र ही जनता में अत्यन्त लोकप्रिय हो गये। इसीलिए ताराचन्द ने अपनी पुस्तक 'इन्फलुएन्स ऑफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर' में लिखा है कि सूफी साधक जिस ऊनी वस्त्र को धारण करते थे वह भारतीय जैन धर्म के परिग्रह सिद्धान्त का ही प्रभाव है। इस आदान-प्रदान से साहित्यिक क्षेत्र भी अछूता नही रहा। अनेक भारतीय ग्रन्थों का अरबी भाषा मे अनुवाद हुआ, नौशेरवां के शासन काल मे पंचतन्त्र, महाभारत की अनेक कहानियों का अनुवाद होकर पश्चिमी देशो मे प्रचलित हुआ। इस प्रकार सूफी धर्म के विकास के साथ भारतीय दर्शन का भी व्यापक प्रचार हुआ।

भारत मे सूफियो का सम्पर्क बौद्धो, सिद्धों, नाथपंथियो, जैनियों तथा शाक्तों से हुआ। फलतः भारतीय धर्मों तथा दर्शनो का सूफियो पर व्यापक प्रभाव पड़ा। अनेक भारतीय सिद्धान्तों को सूफियों ने यथावत रूप मे ग्रहण किया। सूफियों मे माला फेरना, बौद्धों से अहिंसा जैनों से ग्रहण की। इन सूफियों ने भारतीय जीवन दर्शन को अत्यन्त निकट से अनुभव किया। यही कारण है कि बौद्ध जातकों में चमत्कार, शकुन, शाप, यन्त्र-तन्त्र, योगिनी, दिशाशूल आदि जो चमत्कार प्रधान तत्त्व मिलते है उनको सूफियों ने यथा-वत वत ग्रहण कर लिया। इन्ही आधारों पर विलियम जौन्स ने सूफियों को बौद्धधर्मी तथा सूफीमत को वेदान्त का इस्लामी संस्करण कहा है। अनेक सूफी काव्यग्रथों के नामकरण भी जैन एवं बौद्ध नारियों के अनुकरण पाये

जाते हैं।

भारत में सूफी मत का प्रचार सूफी अल्हुजिरी के आगमन काल से 12वीं शताब्दी से होता है। इसके अनन्तर विविध सम्प्रदायों के रूप में सूफी मत का भारत मे प्रचार हुआ। आइने अकबरी में सूफियों के 14 सम्प्रदायों का उल्लेख है, जिनमें प्रसिद्ध हैं—कादरी सम्प्रदाय, सुहरावर्दी सम्प्रदाय, नक्शबदी सम्प्रदाय तथा चिश्ती सम्प्रदाय। इनमें चिश्ती सम्प्रदाय सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ। ख्वाजा अबू इसहाक शामी चिश्ती हजरत अली से नवी पीढी में माने जाते हैं और वे ही इसके सर्वप्रथम प्रचारक समझे जाते है। वे एशिया माइनर से चलकर खुरासान के चिश्त नगर में निवास करते थे, जिस कारण इन्हे चिश्ती कहा जाता था। इनके उत्तराधिकारी अबू अहमद अबदाल की मृत्यु स० 1023 मे हुई थी और उन्हीं की सातवी पीढ़ी में प्रसिद्ध ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी (सं० 1199-1293) हुए थे, जिन्होने इस संप्रदाय द्वारा सूफीमत का प्रचार सर्वप्रथम भारतवर्ष में किया था। इन्होने तातारों के आक्रमण से प्रभावित होकर एक भ्रमणशील फकीर का जीवन स्वीकार कर लिया था। इन्होंने कई प्रसिद्ध सूफी पीरों के व्यक्तिगत संपर्क में रहकर आध्यात्मिक ज्ञान में वृद्धि की और अन्त में अजमेर में ढाई दिन के झोपड़े में आकर रहने लगे। यही इनकी मृत्यु भी हुई। इसे चिश्तियो का मक्का कहा जाता है। इस संप्रदाय मे कुतुबुद्दीन, काकी फरीदुद्दीन, शकर गज के नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह सम्प्रदाय आगे चलकर अनेक शाखाओं मे विभक्त हो गया। काकी को सम्राट अल्तमश को दीक्षित करने का गौरव प्राप्त हुआ। संगीत इनके प्रचार का मुख्य साधन था। सुहरावर्दी सप्रदाय का प्रचार कार्य भारत मे बहाउद्दीन जाकरिया ने किया। यह सम्प्रदाय भी अनेक शाखाओं में विभक्त हो गया। नक्शबदी सम्प्रदाय का प्रचार 17वी शताब्दी में अहमद फारूखी ने किया। इस सम्प्रदाय की मान्यता हजरत मुहम्मद के समान थी। इनके सुधारों से सूफियों के संगीत विधान नृत्य एव साष्टांग दण्डवत आदि कर्म बंद हो गये। मुगल साम्राज्य के साथ इस मत का भी ह्रास हो गया।

सूफी काव्य परम्परा

हिन्दी साहित्य में सूफी काव्यों के आरम्भ के समय के सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। सूफी कवि जायसी ने अपने पद्मावत मे अपने पूर्ववर्ती कुछ प्रेम काव्यों का उल्लेख किया है।

विक्रम धंसा प्रेम के वारा। सपनावति कह गयउ पतारा।
मधू पाछ मुगुधावति लागी। गगनपूर होइगा बैरागी॥
राजकुंवर कचनपुर गयऊ। मृगावति कह जोगी भयऊ।

साध कुंवर खंडावत जोगू । मधुमालति कर कीन्ह वियोगू ।
प्रेमावति कह सुरसरि साधा । ऊषा लागी अनिरुध बर बाधा ॥

उक्त पद्य के अनुसार जायसी से पूर्व—स्वप्नावती, मुग्धावती, मृगावती, मधुमालती और प्रेमावती नामक सूफी रचनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है किन्तु उलब्ध सूफी प्रेमाख्यानों में कालक्रमानुसार सर्वप्रथम रचना 'चन्दायन' ही समझी जाती है। इसका रचनाकाल सन 1377 या 1379 ई० (सं० 1434-1436) जान पड़ता है। तब से अर्थात चौदहवीं शताब्दी से लेकर आज तक छः सौ वर्षों के समय तक सूफी काव्यों की रचना होती रही है। शेख कुतुबन ने मृगावती की रचना की। इस ग्रंथ के 17 वर्ष बाद मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत लिखा। मंझन की रचना मधुमालती है। इस काव्य में प्रेम सम्बन्ध का निर्वाह परियों द्वारा करवाया गया है। उसमान की चित्रावली में घटना विस्तार पर अपेक्षाकृत अधिक बल दिया गया है। इसी समय का रचित जलालुद्दीन के ग्रंथ जमाल पच्चीसी है। यह अत्यन्त साधारण काव्य रचना है। उसमान के समकालीन कवि शेख नबी ने ज्ञानदीप नाम की रचना लिखी। इस पर शामी प्रभाव है। हिन्दवी या दक्खिनी हिन्दी के साहित्य के इतिहास में अनेक प्रेमाख्यान काव्यों का पता चलता है। गवासी, वजही, तबई और हाशमी ने अनेक मसनवियां लिखीं। मुकीमी नुसरती और गुलाम अली की भी रचनाएं मिलती हैं। इन रचनाओं का प्रभाव उत्तरी भारत के सूफियों पर भी पड़ा। उदाहरणार्थ अनुराग बांसुरी की रचना करते समय नूर मुहम्मद ने मुल्ला वजही के ग्रंथ 'सब रस' का अनुकरण किया। कासिम शाह ने 'हंस जवाहर' नामक ग्रंथ में गवासी के सैफुलमुलक का अनुकरण किया। शेख निसार ने हाशमी के युसुफ जुलेखा को अपनी कथावस्तु का आधार बनाया है। परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है कि 'उन्नीसवीं शती से लेकर बीसवीं शती की अवधि तक इस प्रकार की सारी उमगें प्रायः ठंडी पड़ती सी प्रतीत होती हैं। इस अन्तिम युग की अन्तिम रचनाओं में न तो कहीं जायसी की प्रतिभा है, न मंझन व उसमान की सहृदयता है न जान की योग्यता है न नबी का पांडित्य है न नूर मुहम्मद की कट्टरता है। इस स्तेमे के सूफी कवियों की यदि कोई विशेषता है तो यह कदाचित इस बात से भिन्न नहीं है कि उन्होंने अपनी रचनायें न्यूनाधिक व्यक्तिगत रुचि व आग्रह के कारण प्रस्तुत की हैं तथा व्यर्थ के आडम्बर से बचाया है।' इस काल में प्रतापगढ़ के ख्वाजा अहमद ने सन 1905 में नूरजहां, शेख रहीम ने सन 1915 में भाषा प्रेम रस तथा कवि नसीर ने सन् 1917 में प्रेम दर्पण नामक काव्य रचे।

सूफी प्रेम काव्यों की सामान्य प्रवृत्तियां :

प्रेम व्यंजना—सूफी काव्यों का मूल स्वर प्रेम है। इन कवियों ने लौकिक प्रेम कहानियों के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यजना की है। इन कवियों का उद्देश्य कोरी प्रेम कहानी कहना न होकर प्रम तत्व का निरूपण करना तथा उसका महत्त्व निर्धारित करना है। जहां उन्होंने प्रबन्ध सगठन आदि का ख्याल रखा वहां अपने उद्देश्य की अनुकूलता के लिए कहानी की घटनाओं में अपेक्षित परिवर्तन तथा परिवर्द्धन किया। सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों मे प्रेमपात्र के सौन्दर्य को किसी ऐसे प्रकाश या ज्योतिपुञ्ज के रूप मे चित्रित किया है। इन काव्यों की प्रेमिकाएं तथा प्रेमी पक्ष पर आने वाली बाधाओं तथा विकट से विकट विघ्नों को तृणावत समझते हुए सिद्धि पथ पर बढ़ते हैं। इन काव्यों की कहानियां प्राय: एक ही सांचे मे ढली हुई हैं। उनमें मौलिकता के स्थान पर यात्रिकता अधिक है। मुख्य कथा को बल देने के लिए अन्त:कथाओं का भी उपयोग हुआ है। प्रेमी ओर प्रेमिकाओं के मार्ग में बीहड़ वन, भयंकर तूफान, विषैले सांप, सुदीर्घ अजगर, विशालकाय हाथी, बलशाही गरुड़, मनुष्यभक्षी राक्षस, यंत्र-मंत्र तथा जादू-टोना जानने वाले मानवों के द्वारा बाधाएं उपस्थित की गई हैं। इन सबके माध्यम से प्रेम की परीक्षा और दृढ़ता का परिचय मिलता है।

इन काव्यों मे वस्तु एवं घटना वर्णन में जो प्रवाह तथा गति अपेक्षित है उसका सर्वथा अभाव है। इन काव्यों के कथावस्तु के निर्वाह एवं वस्तु वर्णन में समान प्रबन्ध रूढियों का प्रयोग हुआ है। इनमें समुद्र, तूफान वन-वनान्तर, मकान, फुलवारियों आदि समान है। नगरों के वर्णन में सरोवरों, वाटिका, महल, चित्रशाला तथा घाटों का विस्तार से वर्णन हुआ है। जहा वस्तु परिगणन की शैली अपनाई गई है, वहा पर नीरवता का समावेश हो गया है।

इन काव्यों में क्रम-योजना समान है। सर्वप्रथम मंगलाचरण मे ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता का वर्णन, तत्पश्चात हजरत मुहम्मद, उनके सहयोगी, शाहेवक्त, अपना तथा अपने पीर का परिचय और कही-कही सम्प्रदाय का उल्लेख, रचना निर्माण काल आदि का भी उल्लेख हुआ है। कथा में नायक या नायिका के देश, कुल, आचार आदि का उल्लेख रागोत्पत्ति के लिए कर दिया जाता है। नायक और नायिका के देश दूरवर्ती होते है। नायक नायिका की प्राप्ति के लिए सर्वस्व त्याग कर आधी-तूफान का सामना करता है। कथा में गति लाने के लिए काव्य-रूढियो का प्रयोग हुआ है—चित्रदर्शन, स्वप्न द्वारा अथवा शुक सारिका आदि द्वारा नायिका रूप देख या सुनकर उसे आसक्त होना, पशु-पक्षियों की वातचीत से घटना का सकेत पाना.

मन्दिर, चित्रशाला, उपवन, किसी गुप्त स्थान पर प्रेमी युगल का मिलना आदि। कही-कही ईरानी काव्य रूढियो का उपयोग भी हुआ है जैसे प्रेम व्यापार मे देवों का तथा परियो का सहयोग, उड़ने वाली राजकुमारियों द्वारा राजकुमारियों के प्रेमी को गिरफ्तार करवा लेना आदि। नायक को अन्य सुन्दरियों के प्रलोभन द्वारा आकर्षण एवं मोहपाश में डाला जाता है, किन्तु वह उसमें खरा उतरता है। सूफी विरह दशा का विस्तृत वर्णन करते समय प्रेम तत्व का भी निरूपण करते चलते है। कथा के बीच मे प्रति-नायक या प्रतिनायिकाओ की सृष्टि कर ली जाती है।

सूफियो के काव्य मे प्रेम का प्रतिपादन हुआ है। इसके दो पक्ष है—मिलने से पूर्व उत्कंठा का तथा मिलन पर बेहोशी और उसके बाद विरह का वर्णन किया गया है यही कारण है कि उन्होने प्रेमी और प्रेमिकाओं के वियोग और उसकी अवधि में झेले जाने वाले कष्टों तथा अन्त करने के लिए किए गये विविध प्रयत्नों के वर्णन में अधिक ध्यान दिया है। कारण, प्रेम का रूप विरह मे निखरना है। क्योंकि विरह में क्रियाशीलता बनी रहती है जबकि मिलन मे एक प्रकार से जडता आ जाती है। विरह अवस्था का वर्णन करते समय उन्होने बारहमासे के वर्णन को विशेष महत्त्व दिया है। फारसी साहित्य की प्रचलित रूढियों के वर्णन में अतिरंजिता तथा ऊहात्मकता आ गई है।

सूफी प्रेम काव्य के रचयिताओं ने अपने प्रेम काव्यो में नायक नायिकाओ के जीवन में उन अशों को ग्रहण किया है जिनसे प्रेम के विविध प्रसगो तथा व्यापारों की अभिव्यक्ति संभव थी। प्रबन्ध काव्योचित जीवन के विविध दृश्य इन काव्यो में नही है। इन काव्यों की नायिकाओं का चरित्र भी एक विशेष साचे मे ढला हुआ लगता है। उनमें जीवन के घात-प्रतिघातों का अभाव है। नायक का स्वरूप भी प्रायः निश्चित सा है। इन काव्यो के नायक सामंती वातावरण के हैं फिर भी उनमे वीरता की कमी है। इनके जीवन के एक पक्ष अर्थात प्रेम, प्रेम पात्र की प्राप्ति को ही उभारा गया है।

इन काव्यों मे लोक जीवन का चित्रण समष्टि को उभारने के लिए किया गया है। इसी से सर्वसाधारण का अन्धविश्वास, मनौतिया, यंत्रतंत्र का प्रयोग, जादू-टोना, डायनों की करतूतें, विभिन्न लोकोत्सव, लोक व्यवहार, तीर्थ-व्रत, सास्कृतिक वातावरण आदि का बडी सफलता के साथ अंकन किया गया है। इन कथारूढियों के द्वारा तत्कालीन सामाजिक जीवन के विविध पक्षो को आसानी से समझा जा सकता है।

सूफी कवियों ने हिन्दू संस्कृति एवं धर्म के सामान्य ज्ञान के आधार पर

हिन्दू घरानों की प्रेम कहानी के साथ उसकी संस्कृति को भी उजागर करने का प्रयत्न किया है। इसी से इन काव्यों में हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों का रहन सहन, आचार-विचार का भी वर्णन मिलता है। षट्ऋतुओं तथा बारहमासा का वर्णन भारतीय पद्धति पर हुआ है। इसके साथ ही प्रसंगानुसार इन्होंने भारतीय ज्योतिष, रसायनशास्त्र तथा आयुर्वेद के ज्ञान का भी परिचय दिया है। सूफी काव्यों में प्रेम कहानियों की मूल प्रेरणा के सम्बन्ध में परशुराम चतुर्वेदी का मत दृष्टव्य है—इन कवियों ने अपनी रचनाओं में इनकी ओर कभी कोई संकेत नहीं किया और न इनके कथानकों से लेकर उनके क्रम-विकास तक भी कोई ऐसा प्रसंग छेड़ा, जिससे उनका कोई साम्प्रदायिक अर्थ लगाया जा सके। यह आवश्यक है कि जहा तक घटनाओं की क्रम योजना का प्रश्न है उसे इस प्रकार निभाया गया है—जिससे सूफी प्रेम साधन का भी मेल बैठ जाए। ऐसी बातें अधिक से अधिक केवल दृष्टान्त रूप में ही पाई जाती हैं, जिस कारण उनमे साम्प्रदायिक आग्रह का रहना भी अनिवार्य नहीं है। इसके सिवाय इन प्रेमाख्यानकों के नायक-नायिका, उनके दैनिक व्यापार, वातावरण तथा उनके सिद्धात व संस्कृति में कोई परिवर्तन नही लाया जाता और न कहीं पर यह चेष्टा की जाती है कि कथा प्रवाह के किसी अश में किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष के महापुरुषों द्वारा कोई मोड ला दिया जाए।" इसके साथ यह भी सत्य है कि इन काव्यों में प्रसंगानुकूल इस्लाम धर्म की चर्चा भी हुई है।

इन काव्यों में श्रृंगार रस के साथ-साथ वीर रस का भी वर्णन हुआ है। श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का गम्भीरता से चित्रण किया गया है। अन्य रसों का वर्णन कम हुआ है।

सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों का मुख्य उद्देश्य लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम को प्राप्त करना है। इसलिए उन्होंने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अनेक सांकेतिक विधान तथा प्रतीकों की योजना की है। जायसी ने 'तन चित उर मन राजा कीन्हा' कह कर अपने काव्य की प्रतीकात्मकता की ओर संकेत किया है। उसमान ने नायक-नायिका के निवास स्थल को रूपनगर की संज्ञा दी है। सुजान ईश्वर अंश जीवात्मा का प्रतीक है।

सूफी कवियों मे लौकिक स्तर पर नायक-नायिका साधारण राजकुमार एवं राजकुमारी प्रतीत होते है किन्तु इससे अन्य अर्थ भी ध्वनित होता है। पद्मावती का रूप-सौंदर्य अलौकिक सत्ता के सौंदर्य की ओर इंगित करता है तो चित्रावली में सुजान का कष्ट झेलना सूफी साधक की कठिनाईयों की ओर संकेत कर

सूफी प्रेमा[illegible] काव्यों में नायक महत्त्व

पथिक है, समस्त मानवीय गुणों से युक्त है। अतः सभी कठिनाईयों पर सफलता पाना उसका ध्येय है। इसमे प्रायः सभी नायक खरे उतरते हैं। इसी से नायक-नायिकाओ का वर्णन अतिरंजित हो गया है।

सूफी कवियों ने अपने काव्यों की भाषा जन भाषा रखी है। इनकी भाषा अवधी है। किन्तु इस पर भी प्रांतीयता की छाप है। भाषा मधुर, सरल तथा माधुर्य गुण से युक्त है। इसमे दोहा चौपाई पद्धति का प्रयोग किया गया है। इन काव्यो मे अवधी भाषा के साथ-साथ हिन्दी फारसी, अरबी एव संस्कृत शब्दो का प्रयोग भी मिलता है। उसमान की भाषा भोजपुरी, नूर मोहम्मद की भाषा पर ब्रज आदि का प्रभाव देखा जा सकता है। सूफी कवियों ने भाषा को एकरूपता देने का प्रयत्न किया है।

सूफी कवियो ने भाषा को सजाने के लिए अलकारों का प्रयोग भी किया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक जैसे सामान्य अलंकार प्रायः सभी काव्यों में प्राप्त होते है। फारसी प्रभाव के कारण कहीं-कही उपमा योजना मे हास्यास्पदता भी आ गई है। जैसे

विरह सरागिन्ह भूजै मांसू। गिर गिर परै रक्त के आंसू।
दिया कढि जनु लीन्हसि हाथा। रुधिर भरी अंगुरी तेहि साथा॥

हिन्दी साहित्य में स्थान :

सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों का हिन्दी साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान है। समन्वय की दृष्टि से इन काव्यों में रासो तथा जैन चरित्र काव्यों की सामान्य विशेषताए मिलती हैं। इनके कथानको में ऐतिहासिक कल्पनाओं के साथ-साथ धार्मिक सहिष्णुता भी मिलती है।

सूफियो ने सर्वप्रथम राजकुमार तथा राजकुमारियो के साधारण व्यक्तित्व का वर्णन किया, इससे नायक-नायिका की भारतीय परम्परा शिथिल हुई और उसका विस्तार ही हुआ।

भारतीय धर्म साधना में सेवक सेव्य भावना के कारण जहां भक्त भगवान के सामने दीन बना रहता था वहां सूफी साधकों ने उसे ईश्वर के निकट पहुंचा दिया। वीरगाथा काल की नारी जहा एक भोग्या मात्र थी वहां इन कवियो ने उसे नूर का प्रतीक मानकर उसे सृष्टि का मूल स्रोत सिद्ध करने का प्रयत्न किया।

लोक पक्ष का सजीव चित्रण करने के साथ-साथ लोकप्रचलित जन भाषा, मुहावरों लोकोक्तियों अन्धविश्वासों, रूढियों का स्वाभाविक चित्रण कर इन कवियो ने लोक जीवन को सजीवता प्रदान की है। इन कवियों के द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए किया गया प्रयास सदैव स्मरणीय रहेगा।